ओ३म्

योग और स्वास्थ्य

लेखक

आचार्य भद्रसेन

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006
दूरभाष- 55360255, 23977216
E-mail : ajayarya@vsnl.com
Web. : www.vedicbooks.com
संस्करण : 2004
मूल्य : 50.00 रुपये
मुद्रक : स्पीडो ग्राफिक्स, दिल्ली-110051

YOG AUR SWASTHYA *by* Acharya Bhadrsen

समर्पण

यह पुस्तक मैं अपने परम-पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी कुवलयानन्दजी महाराज के कर कमलों में सादर समर्पित करता हूँ, जिनके चरणों में मैंने लगातार चार वर्षों तक रहकर योग के अमूल्य रत्नों को प्राप्त किया है।

पूज्य गुरुदेव ! यह पुस्तक आपकी ही कृपा का फल है। अतः आपके दिये प्रसाद को आपकी ही सेवा में सादर समर्पित करता हूँ। यद्यपि आपके ही प्रसाद को आपकी सेवा में भेंट करना उचित प्रतीत नहीं होता, किन्तु इस सेवक के पास आपके प्रसाद के अतिरिक्त और है ही क्या जिसे आपकी सेवा में समर्पित कर सके। अतः अपने दिये प्रसाद को ही भेंट रूप में स्वीकार कीजिये और यदि अपनी इस प्रसाद रूपी भेंट में कोई त्रुटि हो तो उसे मेरी ही त्रुटि समझ, क्षमा कीजिये।

आपका विनीत शिष्य

भद्रसेन

पूज्य गुरुवर्य स्वामी कुवलयानन्द महाराज का आशीर्वाद

Pandit Bhadrasenji was a student in the Kaivalyadhama for four years, namely, from 1928 to 1932. He is intensely interested in Yoga, and while in the Ashrama, he took full advantage of the opportunities available there. I am happy to see that Pandit Bhadrasenji is putting his Yogic knowledge to the best use; the service of humanity. With his self-lessness, good grounding in Yogic culture, wide sympathies for humanity and also with his sincerity of purpose, the Panditji is capable of doing a lot of good to our society; and I sincerely wish that he gets opportunities for serving our country through Yoga. I wish him success in every direction.

KUVALAYANANDA,
Director, Kaivalayadham, Lonavla (Bombay)

हिन्दी अनुवाद

पंडित भद्रसेनजी कैवल्यधाम में ४ वर्ष तक १९२८ से १९३२ ई० तक विद्यार्थी की हैसियत से रहे हैं। इन्हें योगाभ्यास में विशेष प्रेम व रुचि रही है, और इस आश्रम में रहकर इन्होंने सब प्रकार से लाभ उठाया है। मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि पंडित भद्रसेनजी अपने योग-ज्ञान से लोकसेवा का कार्य बड़ी तल्लीनता व श्रद्धा से कर रहे हैं। पंडितजी जैसे निःस्वार्थी और परोपकारी व्यक्ति ही हमारे समाज की वास्तविक सेवा कर सकते हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि पंडित भद्रसेन जी योगाभ्यास के द्वारा हमारी जाति तथा देश की भली प्रकार सेवा कर सकेंगे। उनके जीवन का यह महान उद्देश्य सफल हो, इसके लिए मैं परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

कुवलयानन्द (अध्यक्ष)
कैवल्यधाम, लोणावला, (बम्बई)

आचार्य्य भद्रसेन,
संचालक—यौगिक व्यायाम संघ, अजमेर

निवेदन

"योग और स्वास्थ्य" का नवीन संस्करण प्रकाशित करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। साथ ही इस बात का हमें हार्दिक दुःख है कि ग्रन्थ के लेखक पूज्य आचार्य भद्रसेनजी हमारे मध्य नहीं रहे श्रद्धेय आचार्यजी ने चालीस वर्ष पूर्व अजमेर में "यौगिक व्यायाम संघ" की स्थापना की थी, जहाँ आकर अजमेर के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत से अनेकों महानुभावों ने योग के आसन, प्राणायाम तथा यौगिक क्रियाओं को सीखकर आशातीत लाभ उठाया। अनेकों सज्जन जो कि अपने जीवन से निराश हो गए थे एवं अनेकों व्यधियों से ग्रस्त थे "यौगिक व्यायाम संघ" में आकर अपने रोगों से मुक्त होकर नया जीवन प्राप्त किया। सज्जन जो कि अपने जीवन प्राप्त किया। ऐसे ही अनेकों सज्जनों ने पूज्य आचार्यजी को आग्रह किया कि योग के आसन, प्राणायाम तथा अन्य क्रियाओं आदि के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक पुस्तक लिखें। पूज्य आचार्यजी ने उनके आग्रह को शिरोधार्य कर "योग और स्वास्थय" की रचना की। प्रथम संस्करण हाथोंहाथ समाप्त हो गया। भारत के प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं तथा योग प्रेमी सज्जनों ने पुस्तक की मुक्त कंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की उसके बाद हर संस्करण में पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए कई अत्यन्त उपयोगी विषयों का समावेश किया गया। योग प्रेमी सज्जनों ने इस ग्रन्थ के द्वारा स्वास्थ्य लाभ कर हमारे उत्साह को बढ़ाया इसके लिए हम उनके आभारी हैं। पुस्तक के चतुर्थ संस्करण में पाठकों के लाभार्थ अनेक रोगों की यौगिक चिकित्सा का भी वर्णन बढ़ा दिया गया था। प्राकृतिक चिकित्सा के उपवास आदि मुख्य-मुख्य अंगों के करने की सरल विधि आदि कई अत्यन्त उपयोगी विषय भी बढ़ा दिये गए हैं। पुस्तक का नवीन संस्करण आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है योग प्रेमी पाठक पूर्व की भाँति सहयोग देकर हमें उत्साहित करेंगे।

—डॉ० वीररत्न आर्य

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

योग ही रोग का नाशक है ९-५७

(१) योग और उसका उद्देश्य, (२) स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही सांसारिक सुख समृद्धि का मुख्य साधन है, (३) जीवन-संग्राम, (४) स्वस्थ शरीर कौन सा, (५) शारीरिक उन्नति के मुख्य साधन, (६) आदर्श दिनचर्या, (७) सदाचार के विशेष नियम, (८) व्यायाम में ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें, (९) सब व्यायामों में यौगिक व्यायाम ही सर्वोत्कृष्ठ है, (१०) यौगिक व्यायाम की इतर-व्यायामों से विशेषताएँ।

द्वितीय अध्याय

योगासनो के करने की विधि तथा उनके लाभ ५८-८६

(१) बकासन, (२) धनुरासन नं० २, (३) पादांगुष्ठासन, (४) धनुरासन नं. ५, (५) कन्दपीड़ासन, (६) सर्वांगासन नं.१, (७) भुजंगासन, (८) हलासन नं. १, (९) सम्प्रसारण भूनम्नासन, (१०) हलासन नं. २, (११) उष्ट्रासन (१२) धनुरासन नं. १, (१३) मयूरासन, (१४) गर्भासन, (१५) नासाग्रस्पर्शान, (१६) पश्चिमोत्तानासन नं. १, (१७) मस्तक पादांगुष्ठासन, (१८) पूर्णशलभासन, (१९) सर्वांगासन नं. ४, (२०) शीर्षपादासन, (२१) हस्तपादांगुष्ठठासन, (२२) सुप्तगर्भासन, (२३) अर्द्धशलभासन, (२४) चक्रासन नं. १, (२५) कुक्कुटासन, (२२६) वृक्षासन नं. १ (२७) कर्णपीड़ासन, (२८) हलासन नं. ३, (२९) मत्स्यासन, (३०) भुजंगासन नं. ३, (३१) नाभ्यासन, (३२) हृदयस्तम्भासन, (३३) अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, (३६) सर्वांगासन नं. ३, (३७) उत्तानपादासन, (३८) धनुरासन, (३९) वृश्चिकासन नं.१ (४०) चक्रासन नं. २ (४१) शीर्षासन, (४२) सुप्तवज्रासन, (४३) वृश्चिकासन नं. २, (४४) पवनमुक्तासन, (४५) धनुरासन नं. ३, (४६) धनुरासन नं. ४ (४७) धनुरासन नं. ५, (४८) धनुरासन नं. ६, (४९) त्रिकोणासन, (५०) सिद्धासन, (५१) पद्मासन, (५२) आकर्ण-धनुरासन, (५३) सर्वांगासन नं. २, (५४) सर्वांगासन नं. ३, (५५) भुजंगासन नं. २, (५६) कूर्मासन, (५७) ताड़ासन सम्पूर्ण।

मुद्रायें ८७-८९

(१) विपरीतकरणी मुद्रा नं. (२) विपरीतकरणी मुद्रा नं. २, (३) योग मुद्रा नं. १, (४) योग मुद्रा नं. २. (५) नौली, (६) बस्ती।

बन्ध ९०-९१

(१) उड्डियान बन्ध, बैठ कर, (२) उड्डियान बन्ध, खड़े होकर।

क्रियाएँ ९२-९८

(१) वस्त्र नेती, (२) वस्त्र धौती, (३) जल नेती, (४) जल धौती, (५) नौली, (६) बस्ती।

स्त्रियाँ और यौगिक व्यायाम ९९-१०७

यौगिक व्यायाम करने वालों के लिए उपयोगी नियम १०७-१०९

वृद्धावस्था दूर करने के अमोघ उपाय — ११०-११३

तृतीय अध्याय

प्राणायाम — ११४-१४७

प्राणायाम के लाभ। प्राणायाम से वीर्य रक्षा कैसे होती है? ब्रह्मचर्य का विशेष वर्णन। प्राणायाम से आयु की वृद्धि किस प्रकार होती है? प्राणायाम से मानसिक शक्तियों का विकास कैसे होता है? प्राणायाम में होनेवाली गलतियाँ तथा उनसे बचने के उपाय।

प्राणायाम विधि — १४७-१५२

(१) शरीर में वीर्य को सुरक्षित रखने वाला तथा शीघ्र पतन आदि वीर्य दोषो को दूर करने वाला अत्यन्त उपयोगी "वीर्य रक्षक" प्राणायाम, (२) पाचन यंत्रों को बलवान बनाने तथा कुण्डलिनी जागृति करने का सर्वोत्तम प्राणायाम, (३) छाती, हाथ तथा पेट को बलवान करने वाला प्राणायाम, (४) शारीरिक दोषों को दूर करने, क्षुधा बढ़ाने तथा नाड़ी शुद्धि करने वाला "उज्जायी" प्राणायाम, (५) शारीरिक उष्णता को दूर कर सुन्दर तथा पुष्ट बनाने वाला और दाँतों के रोगों को दूर करनेवाला "शीतली" प्राणायाम, (६) शारीरिक शक्ति को विकसित तथा स्थिर रखनेवाला "शक्ति स्थापक" प्राणायाम, (७) शरीर मे शुद्ध रक्त का संचार कर शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग बनानेवाला "लोमविलोम" प्राणायाम, (८) शरीर में स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न करने और वात व्याधि कृमि रोग आदि को दूर कर जठराग्नि को तेज करने वाला "सूर्य भेदी" प्राणायाम, (९) वात, पित्त, कफ दोषों को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला तथा कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने वाला "भस्त्रिका" प्राणायाम।

चतुर्थ अध्याय

यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा — १५३-१६६

(क) प्राक्कथन, (ख) यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का परस्पर सम्बन्ध, (ग) प्राकृतिक चिकित्सा, (घ) प्राकृतिक चिकित्सा का संक्षिप्त वर्णन, प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी कुछ भूलें, प्राकृतिक चिकित्सा विधि।

विविध रोगों की यौगिक चिकित्सा — १६६-१९३

(१) जुकाम, (२) खांसी, (३) अतिसार या संग्रहणी, (४) सिर दर्द, (५) निद्रा न आना, (६) मूर्छा, (७) बद्धकोष्ठता, (८) श्वास, (दमा), (९) रक्तविकार, (१०) गठिया, (११) नेत्रों की कमजोरी, (१२) अपचन (बदहजमी), (१३) पेट दर्द, (१४) अर्श (बवासीर), (१५) मस्तिष्क की निर्बलता, (१६) मृगी, (१७) उन्माद (पागलपन) (१८) दाह (जलन), (१९) वीर्य विकार, (२०) स्नायविक रोग, (२१) हृदय की धड़कन, (२२) मधुमेह, (२३) तपेदिक।

शरीर को स्वस्थ तथा बलवान बनाने के अचूक उपाय — १९३-१९४

आचार्य भद्रसेन जी का संक्षिप्त परिचय — १९५-१९८

प्रथम अध्याय

योग ही रोग का नाशक है

योग और उसका उद्देश्य

योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की एकाग्रता[१] द्वारा आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना और आत्म-साक्षात्[२] द्वारा परम-आत्मा तक पहुँचना है। किन्तु जो मन, बुद्धि तथा आत्मा का निवास-स्थान है, जो भगवान् का साक्षात् मन्दिर है, वह हमारा शरीर यदि बलवान् और स्वस्थ नहीं तो न ही हम अपनी शक्तियों का विकास कर सकते हैं, और न ही अपने आत्म-स्वरूप का साक्षात् कर परम-आत्मा परमेश्वर का दर्शन। आर्यों की धर्म-पुस्तक वेद में भक्त भगवान् से प्रार्थना करते हैं : **'स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसः'** हे प्रभो ! हम सुदृढ़ तथा बलवान् अंगों से तेरी स्तुति करनेवाले हों। अध्यात्म-विद्या की मुख्य पुस्तक उपनिषद् भी बिना शारीरिक बल के आत्म-दर्शन असम्भव ही बतलाती है। जैसाकि उपनिषदों में कहा है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

अर्थात्—यह आत्मा बलहीन, कमजोर मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। अतः योग जहाँ आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति का उपाय बतलाता है, वहाँ शारीरिक उन्नति का भी सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय हमारे सामने रखता है।

स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही सांसारिक सुख-समृद्धि का मुख्य साधन है

मनुष्य-जीवन का उद्देश्य अपने को सुखमय तथा शक्ति-सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति भी तभी हो सकती है जबकि हमारे शरीर नीरोग तथा सबल हों। इस शरीर की महत्ता का विद्वज्जनों ने इन शब्दों में गुणानुवाद गाया है—

---

१. **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**। यो० द०।२. तदा **द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**। यो०द०॥

आयतनं सर्वं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
प्रेयः किमन्यत् शरीरमजरामरं विहायैकम् ।।

अर्थात्—जो शरीर सम्पूर्ण विद्याओं तथा शुभ गुणों का आधार है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्ति का मूल कारण है, उस शरीर की सदा अजर अर्थात् युवावस्था और अमर अर्थात् चिरायु अवस्था से अधिक प्रिय वस्तु संसार में मनुष्यों के लिए और क्या होगी !

आज प्रभु की इस अमूल्य देन की दयनीय दशा को देखकर बहुत दुःख होता है। आज सभ्य संसार इस शरीर की अनेक प्रकार की आधि-व्याधियों से आक्रान्त हो रहा है। सम्भवतः कोई ऐसा सौभाग्यशाली पुरुष होगा कि जिसको किसी-न-किसी प्रकार की आधि तथा व्याधियों ने न घेर रखा हो। जठराग्नि की कमजोरी (अपचन), बद्धकोष्ठता (कब्ज), रक्त-दोष, सिर-दर्द, जुकाम, स्वप्नदोष, प्रमेह (धातुक्षीणता) आदि बीमारियाँ तो सर्वसाधारण बनती जा रही हैं। आज सभ्य जगत् का प्रत्येक पुरुष उपर्युक्त किसी-न-किसी व्याधि से अवश्य आक्रान्त है। यदि कोई सौभाग्यवश शारीरिक व्याधि से मुक्त है, तो उसे मानसिक व्याधि ने सता रखा है। इसलिए आज हमारे शरीरों में तथा मनों में न बल है, न उत्साह, न पावित्र्य है और न प्रसन्नता। जीवन की छोटी-से-छोटी घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ भी हमारे निर्बल तथा निस्तेज शरीर तथा मन को विक्षुब्ध और अशान्त बना देती हैं। हमारे स्वाभाविक आनन्द को भी नष्ट कर हमें शोक-सागर में डुबा देती हैं। संसार का कोई ही शायद सौभाग्यशाली मनुष्य होगा कि जिसको किसी-न-किसी शोक या चिन्ता ने न सता रखा हो। इन सब आधि-व्याधियों का मुख्य कारण हमारी शारीरिक तथा मानसिक निर्बलता और अस्वस्थता ही है और उसमें भी विशेषकर शारीरिक निर्बलता। जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ और बलवान् नहीं, वह कभी भी मानसिक चिन्ताओं तथा शारीरिक व्याधियों से मुक्त नहीं हो सकता। उसके पास सांसारिक सुख-भोग की सब सामग्री होते हुए भी न तो वह उसे स्वेच्छापूर्वक भोग सकता है और न ही उसके द्वारा सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है। उसे कोई-न-कोई मानसिक चिन्ता या शारीरिक बीमारी अवश्य घेरे रहती है। कमजोर शरीरवाले के मन में न तो किसी भी कार्य को करने का उत्साह होता है और न उमंग। उसका जीवन स्वाभाविक शांति तथा आनन्द से शून्य, सदा नीरस और शुष्क ही बना रहता

है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने सुखी जीवन के जो लक्षण बताए हैं, आज हममें से शायद ही कोई सौभाग्यशाली होगा, जिसमें ये सारे के सारे लक्षण, सर्वात्मना विद्यमान हों। महर्षि चरक अपने चरक ग्रन्थ में सुखी जीवन के लक्षण बताते हुए लिखते हैं—

"जिस मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रोग नहीं सताते, जो विशेषकर यौवनावस्था में सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों से रहित है, जिसका बल, वीर्य, यश, पौरुष और पराक्रम उसकी सामर्थ्य तथा इच्छा के अनुरूप है, जिसका शरीर नाना प्रकार की विद्याओं, कला-कौशल आदि विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ है, जिसकी इन्द्रियाँ स्वस्थ, बलवान् और इन्द्रियजन्य भोगों के भोगने में समर्थ हैं, जिसके शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं, उसका जीवन ही वास्तव में सुखी जीवन है।" अतः जिसके शरीर में उपर्युक्त गुण विद्यमान नहीं हैं, वह कभी सुखी जीवन नहीं कहला सकता। ऐसे नीरस तथा उत्साहहीन जीवन से न तो इहलोक ही सुधर सकता है और न ही परलोक। अतः इस लोक और परलोक को शांत तथा सुखमय बनाने का यदि कोई मुख्य साधन है तो वह है शारीरिक आरोग्यता। इसीलिए शरीर-शास्त्र के आचार्यों ने कहा है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥

अर्थात्—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जोकि मानव-जीवनरूपी कल्पवृक्ष के चार मधुर फल हैं, उनका यदि कोई श्रेष्ठ तथा मुख्य साधन है तो वह शारीरिक आरोग्यता ही है, क्योंकि यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान् है तो हम अपने पुरुषार्थ से धन भी कमा सकते हैं, उस धन द्वारा सांसारिक सुखों का उपभोग भी कर सकते हैं, और परोपकार, देश, जाति तथा धर्म की सेवा तथा आत्मचिन्तन और प्रभु-भक्ति आदि शुभ कार्य भी कर सकते हैं। इसीलिए महापुरुषों ने कहा है—

"शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्"

अर्थात्—अपने जीवन को धार्मिक तथा सुखमय बनाने का सबसे प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने शरीर-स्वास्थ्य पर बहुत बल दिया है। महर्षि चरक तो यहाँ तक लिखते हैं—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अर्थात्—मनुष्य को अन्य सब काम छोड़कर पहले अपने शरीर की सम्भाल करनी चाहिए, क्योंकि अन्य सब धन, सम्पत्ति आदि पदार्थों तथा सुख-साधनों के होने पर भी शरीर-स्वास्थ्य के बिना वह सब नहीं के समान हैं। इसीलिए आर्यों की प्राचीन पुस्तक वेद में मनुष्य के लिए आदेश है—

स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज।

(अथर्व० ११ । १ । २२)

हे मनुष्य ! तू अपने शरीर-रूपी क्षेत्र में रोग-रहित होकर रह।

संसार में जितने महापुरुष हुए हैं, उन्होंने भी शारीरिक बल पर बहुत जोर दिया है। आधुनिक युग के महापुरुष महर्षि दयानन्द युवकों को शारीरिक उन्नति का उपदेश देते हुए कहते हैं—बलवान् मनुष्य सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। निर्बल मनुष्य का जीवन सार-रहित, रोगों का घर और नरक-धाम बना रहता है। अतः अपने शरीर को बलवान् बनाने के लिए खान-पान के समान व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए।

(श्रीमद्दयानन्दप्रकाश)

जीवन-संग्राम

यह जीवन एक संग्राम-भूमि है जिसमें हमें प्रतिदिन सैकड़ों विरोधी शक्तियों से युद्ध करना पड़ता है। अतः इस जीवन-संग्राम में वही विजयी हो सकता है जो बल और शक्ति से पूर्ण है। आर्यों की धर्म-पुस्तक वेद में लिखा है—**विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्!** मैं सब प्रकार के बलों का स्वामी बनकर सब दिशाओं में विजय प्राप्त करूँ। आज संसार शक्ति का उपासक है, अर्थात् जिसके पास शक्ति और बल है, संसार के प्राणी उसका ही गर्व से नाम लेते हैं, तथा प्रतिष्ठा करते हैं। शक्ति-सम्पन्न और बलवान् मनुष्य को सताना तो दूर रहा, उसकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। इसके विपरीत कमजोर मनुष्य को हर कोई सताता तथा पीड़ा पहुँचाता है। पंजाबी में एक कहावत है—

'दुनियाँ मनदी है जोराँ नूँ। लख लानत है कमजोराँ नूँ॥'

अर्थात्—संसार ताकत को ही मानता है, इसलिए जो लोग ताकत और शक्ति से हीन हैं, उन्हें लाख बार धिक्कार है! अतः यदि हम अपने जीवन को सुखमय तथा शक्ति-सम्पन्न बनाना चाहते हैं, और संसार में प्रतिष्ठा और

सम्मान से जीना चाहते हैं, और इस अमूल्य मानव-जीवन को यूँ ही न खोकर उसके द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाना होगा। शरीर के स्वस्थ और बलवान् बन जाने पर, मन अपने-आप ही थोड़े-से साधन द्वारा बलवान् तथा दिव्य शक्तियों का केन्द्र बन जाएगा। क्योंकि, शरीर और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के सूक्ष्म तत्त्वों से ही मन बनता है। अतः जैसा हमारा शरीर होगा वैसा ही मन होगा।

शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाने के लिए शरीरशास्त्रियों ने अनेक स्वाभाविक तथा सरल उपायों का आविष्कार किया है। किन्तु मनुष्य उन सरल तथा स्वाभाविक उपायों को छोड़कर कृत्रिम उपायों की ओर ही अधिक अग्रसर हो रहे हैं। यही कारण है कि हम जितना भी कृत्रिम उपायों द्वारा शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने का यत्न करते हैं, उतना ही हमारे शरीर निर्वीर्य, निस्तेज, निर्बल तथा रोगग्रस्त बनते जाते हैं।

"मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की"

वाली कहावत हम पर ही चरितार्थ होती है। शरीर के निर्बल तथा रोगग्रस्त होने के ही कारण आज हम पूर्णायु को न प्राप्त कर अल्पायु में ही काल के ग्रास बन रहे हैं। हमारे पूर्वज महर्षियों ने स्पष्ट कहा है—**"शतायुर्वै पुरुषः"** अर्थात्—मनुष्य निश्चय से सौ वर्ष की आयुवाला है। इतना ही नहीं, मनु तो यहाँ तक लिखता है—

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥

अर्थात्—सतयुग में मनुष्य सर्वथा नीरोग तथा सब प्रकार से पूर्णकाम थे तथा उनकी आयु ४०० वर्ष की थी। त्रेता में ३०० वर्ष थी, द्वापर में २०० वर्ष थी तथा कलियुग में १०० वर्ष की ही रह गई है। किन्तु आज दुर्भाग्य से हमारी औसत आयु तो केवल २५ वर्ष की ही है। भीष्म पितामह जैसे महापुरुषों का दो-दो सौ वर्ष तक जीना आज हमारे लिए एक असम्भव घटना हो गई है। गुरु द्रोणाचार्य के लिए तो महाभारत में यहाँ तक लिखा है—

आकर्णपलितः श्यामो वयसा अशीति पंचकः।
संख्ये पर्यंचरद् द्रोणो वृद्धः षोडषवर्षवत्॥

अर्थात्—४०० वर्ष का वृद्ध द्रोण महाभारत-युद्ध में १६ वर्ष के

युवक के समान युद्ध कर रहा था। अत: दीर्घायु प्राप्त करने के लिए भी अपने शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाना हमारे लिए परम आवश्यक है। किन्तु हम हैं कि अपने शरीर की कुछ परवाह ही नहीं करते! आज अन्य सब कामों के लिए हमारे पास समय है, यदि नहीं तो केवल शरीर को स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनाने के लिए और उसकी देखभाल करने के लिए। खेद से लिखना पड़ता है कि जिस बात पर हमारा ध्यान सबसे पहले जाना चाहिए, प्रथम तो उस पर हमारा ध्यान जाता ही नहीं और यदि जाता भी है तो तब जब शरीर को नाना प्रकार के रोग और निर्बलताएँ आकर घेर लेती हैं; शरीर निस्तेज तथा निर्बल बन जाता है; शरीर की सब मशीन ही अपना काम करना छोड़ देती है। किन्तु उस समय भी हम शरीर को स्वस्थ और नीरोग बनाने के लिए आकर्षक लेबलोंवाली दवाओं के खाने और इंजेक्शन लगवाने आदि कृत्रिम साधनों की ओर ही अग्रसर होते हैं। स्वाभाविक साधनों की ओर तो हमारा ध्यान ही नहीं जाता। फिर हमारा शरीर तन्दुरुस्त हो तो कैसे हो?

हमारे इस शरीर को कृत्रिम साधनों से स्वस्थ बनाने की प्रवृत्ति ने ही नाना प्रकार की दवाइयों का आविष्कार किया है। आज जिस प्रकार नाम के धर्म-गुरुओं ने धर्म को अपनी कमाई का साधन बना रखा है, उसी प्रकार डॉक्टरों ने भी स्वास्थ्य को अपनी कमाई का साधन बना लिया है। जिस प्रकार हमारे धर्म के ठेकेदार पण्डा-पुजारियों तथा मौलवी-पादरियों ने जीवन को महान्, पवित्र तथा उच्च बनाने के नियम तो न बताए, केवल स्वर्ग और बहिश्त देने का ठेका देना प्रारम्भ कर दिया, उसी प्रकार डॉक्टरों, वैद्यों तथा हकीमों ने भी हमें स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाए रखने के नियमों को न बताकर केवल स्वास्थ्य का व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया है, और नाना प्रकार की स्वास्थ्य-घातक ओषधियों और इंजेक्शनों का आविष्कार कर जनता से पैसे ऐंठना शुरू कर दिया है। हम भी ऐसे भोले हैं कि इन चमकीले लेबलों की दवाइयों द्वारा अपने स्वास्थ्य का नाश और पैसे की लूट अपनी आँखों से देखते हुए भी नहीं चेते, और अपने अमूल्य स्वास्थ्य-धन को खो बैठे। इंजेक्शनों आदि के द्वारा शरीर में अस्थायी अर्थात् क्षणिक स्फूर्ति और चेतना को ही हमने अपने शरीर का स्वास्थ्य समझ लिया। वास्तव में स्वास्थ्य क्या है—यह आपको अगले प्रकरण से मालूम होगा।

स्वस्थ शरीर कौन-सा

आज बहुत कम ऐसे सौभाग्यशाली मनुष्य होंगे जो शरीर से पूर्ण स्वस्थ हों। कई लोग तो वास्तव में स्वस्थ न होते हुए भी भूल से अपने को स्वस्थ समझ लेते हैं। किन्तु वास्तव में शरीर-विज्ञान के आचार्यों ने जो स्वस्थ तथा नीरोग मनुष्य के लक्षण बताए हैं, उनके अनुसार ढूँढने से शायद ही कोई सौभाग्यशाली स्वस्थ व नीरोग मिल सके। आयुर्वेद आरोग्यता के निम्न लक्षण बतलाता है—

अन्नाभिलाषा भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च,
सृष्ट-विट-मूत्र - वातत्वं शरीरस्य च लाघवम्।
सुप्रसन्नेंद्रियत्वं च सुख-स्वप्न-प्रबोधनम्,
बल-वर्ण-आयुषां लाभः सौमनस्य समाग्निना,
विद्यादारोग्य-लिंगानि विपरीते विपर्ययम्॥

अर्थात्—भोजन ग्रहण करने की स्वाभाविक रुचि और अभिलाषा का होना, खाए हुए भोजन का सुखपूर्वक भली प्रकार से पच जाना, मल-मूत्र और अपान वायु का विसर्जन नियमपूर्वक भली प्रकार सरलता से हो जाना, शरीर का हमेशा हल्का व फुर्तीला रहना, इन्द्रियों में सदा प्रसन्नता तथा कार्यक्षमता का होना, निद्रा और जागरण दोनों का बिना किसी कष्ट के सुखपूर्वक होना, सोने और जागने में सुख और शांति का अनुभव होना, शरीर में बल, पराक्रम और आरोग्यता का होना, मुखादि अंगों का तेजस्वी तथा सुन्दर वर्णयुक्त होना—ये स्वस्थ तथा दीर्घ जीवन के लक्षण हैं।

अब पाठक स्वयं विचार करें कि क्या आरोग्यता के इन लक्षणों के अनुसार हम पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हैं? क्या हमारे अन्दर आरोग्यता के उपर्युक्त सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं? यदि नहीं तो अपने को पूर्ण स्वस्थ और नीरोग समझ लेना, स्वयं को धोखा देना है। अतः हमें अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

शारीरिक उन्नति के मुख्य साधन

अब हम शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने के कुछ संक्षिप्त तथा सरल उपाय पाठकों के सम्मुख रखेंगे। आशा है पाठक इन साधनों को

आचरण में लाकर अपने शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाने का अवश्य प्रयत्न करेंगे।

यदि संक्षेप से कहा जाय तो शारीरिकोन्नति के मुख्य तीन ही साधन हैं, **'आहार', व्यवहार'** तथा '**आचार**'।

आहार

आहार अर्थात् भोजन के सम्बन्ध में मुख्यतया पाँच बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जोकि निम्न प्रकार हैं—

(१) क्या ? (२) कितना ? (३) क्यों ?
(४) कब ? और (५) कैसे ?

अर्थात्—(१) हम क्या खाएँ ? (२) कितना खाएँ ? (३) क्यों खाएँ ? (४) कब खाएँ ? और (५) कैसे खाएँ ?

हम क्या खाएँ ?—भोजन के सम्बन्ध में सबसे पहले ध्यान देने योग्य जो बात है वह है—हम क्या खाएँ ? इसका संक्षेप से यदि कोई उत्तर हो सकता है तो यही कि हम वही खाएँ जोकि हमारे शरीर के लिए उपयोगी तथा लाभप्रद हो, जिसको खाकर हमारे शरीर की सब धातुएँ बलवान् तथा नीरोग बनकर शरीर में बल, वीर्य तथा आरोग्यता की वृद्धि हो। भोजन में ऐसे पदार्थों का समावेश करना चाहिए जो आरोग्यप्रद, पौष्टिक, सुपच तथा सात्त्विक हों, विशेषकर जो सज्जन अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को पवित्र और बलवान् बनाना चाहते हैं, जिन्हें स्वास्थ्य, सौन्दर्य और निरन्तर यौवन की अभिलाषा है, जो शरीर के सकल सेलों अर्थात् परमाणुओं को विकारों और विषैले कीटाणुओं से सुरक्षित रखना चाहते हैं, जो ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा अपनी आयु को दीर्घ तथा पूर्ण आयु बनाकर जीवन को सुखमय देखना चाहते हैं, जो योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि के द्वारा अपने जीवन को सर्वांग रूप से आदर्श बनाना चाहते हैं, उन्हें तो कम-से-कम सात्त्विक और पौष्टिक तथा सुपच आहार का ही सेवन करना चाहिए। सड़े, गले, बासे, चटपटे अर्थात् अधिक मिर्च-मसालोंवाले तथा मादक पदार्थों का हमारे भोजन से सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए। आयुर्वेद के ग्रंथों में कहा है—

आहिताग्निः सदा पथ्यानंतरग्नौ जुहोति यः।
भजन्ते नामयाः केचिन्०।

अर्थात्—"जो सच्चा याज्ञक बनकर अपनी जठराग्नि-रूपी यज्ञाग्नि में सदा हितकर पदार्थों की ही हवि प्रदान करता है, उसे किसी प्रकार के भी रोग नहीं सताते।"

अत: उपर्युक्त प्रकार के दूषित तथा मिथ्या आहार का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। दुग्ध, घृत, दही, ताजे फल, मेवे, ताजे तथा हरे शाक और उत्तम अन्न आदि पदार्थों का ही हमें सेवन करना चाहिए। ये पदार्थ शरीर में रस, रक्त, वीर्य आदि सब धातुओं की वृद्धि कर उन्हें पुष्ट तथा नीरोग बनाते हैं। शरीर की जीवन-शक्ति को स्थिर रखते हैं और धातुओं की विषमता को दूर करते हैं। यह दूषित और प्रतिकूल आहार ही है जोकि शरीर के निर्बल और बीमार होने का मुख्य कारण है। वास्तव में शरीर की सब धातुओं में समता को लाने और विषमता को दूर रखने के लिए ऐसे ही पदार्थों का सेवन करना चाहिए, जो शरीर की सब धातुओं को नीरोग और स्वस्थ बनानेवाले हों। इसके सम्बन्ध में चरक के निम्न शब्दों पर हमेशा ध्यान देना चाहिए—

त्यागाद् विषम-हेतूनां समानां चोपसेवनात्।
विषमा नानुबध्नन्ति जायन्ते धातवः समाः ॥

अर्थात्—"धातुओं में विषमता को उत्पन्न करनेवाले पदार्थों को सदा त्याग देने से और समता लानेवाले पदार्थों के सेवन करने से शरीर में सब धातुएँ सम अर्थात् स्वस्थ और नीरोग बन जाती हैं और धातुओं की विषम अवस्थाएँ कष्ट नहीं देतीं।" अत: हमें सदा ऐसे पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए जिनमें पौष्टिक तत्त्वों की प्रचुर मात्रा हो। क्योंकि, शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाए रखने के लिए पौष्टिक तत्त्वों का होना परमावश्यक है। भोजन में पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक तत्त्वों के होने से युवा-अवस्था बनी रहती है। बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। ये पौष्टिक तत्त्व, जिन्हें कि पाश्चात्य डॉक्टर "Vitamins" के नाम से पुकारते हैं, डॉक्टरों ने इन्हें ५ श्रेणियों में विभक्त किया है–A, B, C, D, और E.

पौष्टिक तत्त्व 'ए' (Vitamin A)

यह पौष्टिक तत्त्व दूध, घी, मक्खन, चावल, बथुआ, चौलाई, मेथी, करमकल्ला, मूली, शलजम, टमाटर, केला, पपीता, आम और गाजर में प्रचुर

मात्रा में पाया जाता है। यह पौष्टिक तत्त्व शरीर की वृद्धि और उसे स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाए रखने के लिए और संक्रामक रोगों से बचने के लिए अत्यावश्यक है। आँखों को रोगों से बचाता है। छोटे बच्चों के लिए अत्यावश्यक है। शरीर में इस पौष्टिक तत्त्व के अभाव से दृष्टि की निर्बलता, निमोनिया, तपेदिक, संग्रहणी, जलोदर, निर्बलता, पायरिया और मूत्राशय, त्वचा, कान, नाक, फेफड़े, पेट और आँतों के विविध प्रकार के रोग हो जाते हैं और बच्चों की शारीरिक वृद्धि रुक जाती है।

पौष्टिक तत्त्व 'बी' (Vitamin B)

यह तत्त्व गेहूँ, जौ, सोयाबीन, मटर, चना, पपीता, हरी पत्ती वाले शाक, टमाटर, नारंगी, अमरूद, दूध और दालों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। त्वचा और नाड़ी-संस्थान के पोषण के लिए यह तत्त्व परम आवश्यक है। यह तत्त्व हृदय, मस्तिष्क और ज्ञान-तन्तुओं को स्वस्थ, बलवान् और ताजा रखता है। पुट्ठों और आँतों को बल देता है। भूख को बढ़ाता है। रगों, पुट्ठों और आँतों को शक्ति देता है। इस तत्त्व के अभाव से अजीर्ण, दस्त, बद्धकोष्ठता, पेट-दर्द आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर का वजन कम होकर निर्बल और अशक्त बन जाता है।

पौष्टिक तत्त्व 'सी' (Vitamin C)

यह तत्त्व नीम्बू, नारंगी, इमली, आम, अनानास, पपीता, नाशपाती, टमाटर, प्याज, मूली, गाजर, गोभी, शलजम, हरी मिर्च और हरे शाकों और अंगूर, केला, सेव तथा अन्य मीठे फलों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इस तत्त्व से रक्त शुद्ध और लाल रहता है। शरीर का रंग निखरता है। हड्डी और दाँत मजबूत रहते हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। यह तत्त्व छूत के रोगों से भी बचाता है। इस तत्त्व के अभाव में क्षुधा कम लगती है। खून सूख जाता है। मांस फूलने लगता है। दाँत और मसूड़ों में पीव पड़ जाती है, अर्थात् पायरिया हो जाता है। शरीर में आलस्य और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। शारीरिक अंगों में पीड़ा तथा गठिया रोग भी हो जाता है। यह पौष्टिक तत्त्व बिना आग पर पकाए अर्थात् कच्चे पदार्थों में अधिक मात्रा में पाया जाता है।

पौष्टिक तत्त्व 'डी' (Vitamin D)

यह तत्त्व दूध, घी, हरी तरकारी, गाजर, पपीता, नारियल, फटे हुए दूध आदि पदार्थों में बहुत होता है। सूर्य की किरणों का सेवन करने से भी इस तत्त्व की प्राप्ति होती है। तेल की मालिश करके धूप में बैठने से यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह पौष्टिक तत्त्व शरीर के अस्थि-समुदाय को मजबूत व स्वस्थ बनाता है। रक्त को गाढ़ा करने, हड्डियों के पोषण तथा परिपुष्टता के लिए विटामिन डी की अत्यावश्यकता है। इस तत्त्व के अभाव से शरीर की वृद्धि रुक जाती है। मज्जा-तन्तुओं में स्थिरता नहीं रहती और क्षय आदि रोगों के प्रतिकार करने की शक्ति कम हो जाती है। इसके अभाव में सर्दी और जुकाम अधिक सताते हैं। शरीर निर्बल और खून कम हो जाता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। चेहरा फीका पड़ जाता है, फेफड़े सम्बन्धी रोग भी हो जाते हैं। बच्चों में विटामिन-डी के अभाव से सूखा रोग हो जाता है। दाँत देर से निकलते हैं। हाथ-पैर पतले तथा पेट बाहर निकल आता है।

पौष्टिक तत्त्व 'ई' (Vitamin E)

यह तत्त्व गेहूँ, चना आदि अन्नों के अंकुरों में, हरे शाक, धारोष्ण दूध, मक्खन, मलाई, और माँड-सहित चावलों में अधिक होता है। शकरकंद और खजूर में भी यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। यह तत्त्व पुरुषों की प्रजनन-शक्ति की क्षीणता तथा स्त्रियों के बाँझपन को दूर करता है। पुरुषार्थ शक्ति को बढ़ानेवाला तथा वीर्य की वृद्धि और उसे परिपक्व करनेवाला है। इस तत्त्व के अभाव से पुरुषों की प्रजनन-शक्ति क्षीण हो जाती है। पुरुष नपुंसक तथा स्त्रियाँ बाँझ बन जाती हैं। अत: अपने शरीर में स्वास्थ्य, बल और नीरोगता चाहनेवाले पुरुषों को इन तत्त्वों की वृद्धि के लिए उपर्युक्त पदार्थों का सेवन करना अत्यावश्यक है। उपर्युक्त तत्त्व-प्रधान पदार्थों के सेवन करने के अतिरिक्त ऐसे पदार्थों के सेवन करने की भी आवश्यकता है कि जिनसे पेट में मल एकत्रित न होकर पाखाना खुलकर साफ आता रहे। वे पदार्थ हैं—

"फोक अर्थात् छिलके"

भोजन के पदार्थों में छिलकों का होना अत्यावश्यक है। भोजन में फोक

अर्थात् छिलकों की मात्रा न होने से अथवा कम होने से कब्ज हो जाता है। पाखाना खुलकर साफ नहीं होता और कब्ज ही सब बीमारियों की जड़ होने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आज सभ्य जगत धुली हुई दाल, चोकर निकाला हुआ बारीक आटा, छिलके उतारे हुए लौकी आदि शाक, सेव, नाशपाती आदि फलों के खाने में अपनी शान और बड़प्पन समझने लगा है। इसीलिए भोजन में उपर्युक्त पदार्थों के छिलकों के अभाव के कारण बद्ध-कोष्ठता तथा तज्जन्य रोगों से आक्रान्त हो रहा है। इसीलिए शारीरिक विज्ञानवेत्ताओं ने एक दिन की खुराक में एक तोला से अढ़ाई तोला तक फोक अर्थात् छिलकों का होना अत्यावश्यक बतलाया है। किन्तु खेद है कि हम इस अत्यन्त उपयोगी वस्तु को अनुपयोगी तथा व्यर्थ समझकर फेंक देते हैं।

स्वास्थ्य के लिए फलों का प्रयोग

शरीर को स्वस्थ और नीरोग बनाए रखने के लिए फलों का प्रयोग बहुत लाभदायक है, क्योंकि इनमें प्राय: सभी जीवन-तत्त्व (विटामिन्स) पाए जाते हैं। कई फलों की तो भगवान् ने मानव-देह के विविध अंगों के आकार के समान रचना की है। वे फल उन-उन अंगों के लिए अवश्य लाभदायक हैं, जैसे—मस्तिष्क के लिए अखरोट, नारियल और लीची, हृदय के लिए सेव, जिगर के लिए पपीता, आँख के लिए बादाम, पेट के लिए आम, दाँत के लिए संतरा और अनार, फेफड़े के लिए अंगूर अत्यन्त लाभदायक हैं।

यहाँ तक हमने भोजन के पहले नियम अर्थात् 'क्या खाएँ' के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। अब भोजन के दूसरे नियम अर्थात् 'कितना खाएँ' के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे।

कितना खाएँ?—खाद्य पदार्थ चाहे कितने भी पौष्टिक तथा आरोग्यप्रद क्यों न हों, किन्तु यदि उन्हें उचित तथा परिमित मात्रा में सेवन नहीं किया जाता तो वे कदापि शरीर के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो सकते।

अत: इन पौष्टिक तथा आरोग्यप्रद पदार्थों को भी हम उतना ही खाएँ, जितना कि हमारे शरीर के लिए आवश्यक हो, या जितना हम सरलतापूर्वक पचाकर उसे अपने शरीर का अंग बना सकें। इसलिए क्या खाएँ के बाद दूसरा प्रश्न है, 'कितना खाएँ'? इसका संक्षेप में यही उत्तर है कि जितना हमारे शरीर को स्वस्थ और बलवान् तथा नीरोग बनाए रखने के लिए अति

आवश्यक हो। आवश्यकता से कम खाना जहाँ शरीर की धातुओं का शोषण करता है, वहाँ आवश्यकता से अधिक खाना शरीर की धातुओं में विकार उत्पन्न करता है, जिससे शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होकर शरीर बीमार तथा कमजोर बन जाता है। रोगी मनुष्य सुख और वैभव से हीन होकर सदा दीन और दुःखी ही बने रहते हैं। किसी कवि ने कैसा सुन्दर कहा है !—

कुचेलिनं दन्त-मलावधारिणम्
बह्वाशिनं नित्य-कठोर-भाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनम्,
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

अर्थात्—"जिस मनुष्य के शरीर तथा वस्त्र सदा मैले रहते हैं, जिसके दाँतों पर मैल जमा रहता है, जो मात्रा से अधिक बहुत ज्यादा भोजन करता है, जो हमेशा कठोर वचन बोलता है, जो सूर्य के उदय हो जाने पर तथा अस्त होते समय सोता रहता है, वह चाहे साक्षात् विष्णु भी क्यों न हो, उसका भी लक्ष्मी अर्थात् सुख, शांति, वैभव और कांति साथ छोड़ देते हैं।" अतः हमारा भोजन परिमित मात्रा में होना चाहिए, न न्यून न अधिक। हितकर और परिमित भोजन खाने से न केवल सामान्य स्वास्थ्य वाले मनुष्य, प्रत्युत असाध्य रोगी भी स्वस्थ और नीरोग होते देखे गए हैं। आज से चार सौ वर्ष पूर्व इटली के वीनस नामक नगर में 'कारनारो' नाम के एक महाशय रहते थे। वह ४० वर्ष की आयु में बहुत बीमार पड़ गए। डॉक्टरों ने उसके रोग को असाध्य बताकर जवाब दे दिया, और कारनारो अपने जीवन से निराश हो गए। एक दिन उन्होंने अपने रोग, आहार और रहन-सहन पर एकान्त में बैठकर विचार किया और अपने लिए उपयोगी तथा ग्राह्य पदार्थों और अनुपयोगी तथा त्याज्य पदार्थों को छाँट लिया, साथ ही भोजन की मात्रा को भी निश्चित कर लिया। जब वह समय पर ठीक निश्चित मात्रा में सात्त्विक और स्वास्थ्यप्रद पदार्थों का सेवन करने लगे तो उनका रोग शनैः-शनैः स्वयं कम होने लगा और उत्तरोत्तर स्वास्थ्य सुधरने लग गया। अब तो वह अपने इंजिनीयरिंग के व्यवसाय को भी दत्तचित्त होकर चलाने लगे। परिणाम यह हुआ कि ४२ वर्ष की आयु से लेकर ६८ वर्ष की आयु तक उन्हें एक दिन भी किसी प्रकार का रोग या शारीरिक कष्ट नहीं हुआ। परन्तु एक दिन अपनी पुत्रियों के आग्रह करने पर उन्होंने भोजन की मात्रा को बढ़ा दिया। परिणामतः उनके पेट में जोर का दर्द उठा। तब वह फिर पूर्ववत्

निश्चित मात्रा से ही भोजन करने लगे। जिसका परिणाम यह हुआ कि पुनः वह पहले के समान ही स्वस्थ व नीरोग हो गए और ९५ वर्ष की आयु में उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर भोजन के महत्त्व पर एक ग्रंथ लिखा। १०३ वर्ष की आयु तक स्वस्थ, बलवान् और नीरोग रहकर उन्होंने अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत किया।

अब विज्ञ पाठक स्वयं विचार करें कि जब एक असाध्य तथा अशक्त रोगी भी हितकर और परिमित आहार करने से स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनकर दीर्घ तथा सुखमय जीवन प्राप्त कर सकता है तो हम क्यों नहीं कर सकते? कहते हैं जब महर्षि चरक ने अपना 'चरक' नामक ग्रन्थ बनाया तो उन्होंने मन में विचार किया कि मैंने जो इतने परिश्रम से यह आयुर्वेद का ग्रन्थ बनाया है, मेरा परिश्रम सफल भी हुआ या नहीं, अर्थात् मेरे इस ग्रन्थ से किसी ने लाभ भी उठाया या नहीं? कहते हैं उन्होंने एक पक्षी का रूप धारण किया, और जहाँ वह पक्षी देखता कि अमुक जगह कोई प्रसिद्ध वैद्य रहता है, वहीं जाकर बैठ जाता और तीन बार यह आवाज लगाता—कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्? अर्थात् दुनिया में कौन नीरोग है, कौन नीरोग है, कौन नीरोग है? कई वैद्य तो इसकी आवाज को ही न समझते, और एक साधारण पक्षी की बोली जानकर उपेक्षा कर देते, और यदि कोई वैद्य समझते भी तो उसके उत्तर में कोई वैद्य तो कहता—जो हमेशा मकरध्वज खाता है, वह रोगी नहीं है; कोई कहता—जो च्यवनप्राश खाता है, वह रोगी नहीं है; कोई कहता—जो स्वर्ण या बंग भस्म खाता है, वह रोगी नहीं है। पक्षी-रूप धारण किए हुए महर्षि चरक वैद्यों की उपर्युक्त बातों को सुनकर निराश हो गए और मन में सोचने लगे कि इन वैद्यों ने मेरे 'चरक' ग्रन्थ का उद्देश्य केवल दवाइयों को पेट में ठोंसना ही समझ लिया है। अतः वह निराश होकर अपने गृह की ओर लौट ही रहे थे कि मार्ग में वाग्भट्ट नामक प्रसिद्ध वैद्य का स्थान देखा; देखकर सोचने लगे—चलो इस वैद्य की भी परीक्षा करते चलें! यह सोचकर वह वाग्भट्ट के गृह के सामने के बगीचे में एक वृक्ष पर जाकर बैठ गए और वही आवाज लगाने लगे—कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्? वाग्भट्ट उस समय भोजन कर रहे थे। उन्होंने जब पक्षी की इस आवाज को सुना तो मन में सोचने लगे कि यह कोई साधारण पक्षी नहीं हो सकता, क्योंकि किसी साधारण पक्षी की यह सामर्थ्य नहीं कि वह ऐसा गूढ़ प्रश्न कर सके। अतः इसके प्रश्न का उत्तर अवश्य देना चाहिए। यह विचार कर, वे

भोजन खाना छोड़, अपने बगीचे में उस वृक्ष के पास आ गए जहाँ कि वह पक्षी बैठा था। वाग्भट्ट को देखते ही उस पक्षी ने पुनः आवाज लगाई—कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्? वाग्भट्ट ने उस पक्षी के प्रश्न को सुनते ही तत्काल उत्तर दिया—हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्। अर्थात् जो हमेशा हितकर पदार्थ ही खाता है; और वह हितकर पदार्थ भी परिमित मात्रा में ही खाता है, अर्थात् जो न अधिक खाता है, न कम; और जो सचाई और नेक कमाई से कमाए हुए अन्न का ही भोजन करता है, वही मनुष्य संसार में रोगी और बीमार नहीं है। कहते हैं महर्षि 'चरक' वाग्भट्ट के इस उत्तर को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और मन में सोचने लगे कि यदि किसी वैद्य ने मेरे 'चरक' ग्रन्थ को सफल किया है, तो इस वाग्भट्ट ने ही किया है।

इसी प्रकार केरल प्रान्त में एक लोकगाथा प्रसिद्ध है। चिड़ियों का जोड़ा एक निपुण वैद्य से पूछता है—कौन नीरोग है? वैद्य उत्तर देता है—"१. जो भोजन से अपने पेट के केवल तीन-चौथाई भाग को ही भरता है। २. जो बाएँ करवट लेटता है। ३. जो क्रोध में आपे से बाहर नहीं हो पाता। ४. जो किसी का दिल नहीं दुखाता। ५. जो स्वच्छता को ही देवता मानता है। ६. जो सूर्योदय से पहले ही उठ बैठता है।" इस कथन से जहाँ यह उपदेश मिलता है कि हमारा भोजन कैसा और कितना होना चाहिए, वहाँ यह भी पता लगता है कि आयुर्वेद का उद्देश्य केवल दवाइयों को ही बीमारों के पेट में ठोंसना नहीं है, प्रत्युत प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाना ही आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य है। स्वयं 'आयुर्वेद' शब्द भी इसी आशय को प्रकट करता है, अर्थात् जो स्वस्थ, बलवान् और दीर्घजीवी बनने के साधनों का ज्ञान कराए, वह आयुर्वेद है। किन्तु खेद है कि आजकल के वैद्य महोदयों ने स्वार्थवश विदेशी डॉक्टरों की तरह केवल रोगी के पेट में दवाइयों को ठोंसना ही आयुर्वेद का एकमात्र लक्ष्य बना लिया है। यही कारण है कि अन्य पैथियों के समान आयुर्वेद भी आजकल बदनाम होता जा रहा है, अस्तु।

भोजन के सम्बन्ध में तीसरी विचारणीय बात है—

क्यों खाएँ?—इसका सीधा-साधा उत्तर है, अपने शरीर-पोषण के लिए; दूसरे शब्दों में, अपने जीवन-धारण के लिए। भोजन का उद्देश्य केवल अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाना ही है; व्यर्थ की वस्तुओं से पेट भरना या अपनी जीभ को सन्तुष्ट करना नहीं। जो लोग अपने शरीर को नीरोग

तथा बलवान् बनाने के लिए ही भोजन करेंगे, वे उतनी ही मात्रा में भोजन करेंगे, जितनी कि उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है। इसके विपरीत जो केवल जिह्वा की तृप्ति के लिए ही खाएँगे, वे ऐसे ही पदार्थ खाएँगे, जिनसे उनकी जीभ को स्वाद मिले, न कि शरीर का पोषण हो; और वह भी परिमित मात्रा में नहीं, अपितु अत्यधिक मात्रा में। ऐसा हानिकर भोजन या अधिक मात्रा में खाया हुआ भोजन शरीर को रोगी तथा निर्बल ही बनाएगा, स्वस्थ तथा बलवान् कदापि नहीं। मैं कुछ वर्ष पूर्व नर्वदा नदी के तट पर प्राणायाम आदि योगाभ्यास किया करता था। जिस ब्रह्मचारी की कुटिया में रहता था, उसने अपने गुरु की जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में एक दिन भण्डारा किया और साधु-सन्तों को भोजन का निमंत्रण दिया। निमंत्रण खानेवाले साधुओं में एक ऐसा भी साधु आया, जो अत्यन्त कृश था, जिसके शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दीखती थीं। किन्तु जब वह भोजन खाने बैठा तो बड़े-बड़े हट्टे-कट्टे साधुओं को भी उसने मात कर दिया। जब भी परोसनेवाला आता, उसको वह खाली न जाने देता। प्रत्येक बार कुछ-न-कुछ माँग ही लेता, और सबके भोजन खा चुकने पर भी वह खाता ही रहा। मैंने उस ब्रह्मचारी से पूछा—'यह साधु जोकि अस्थिपंजर-मात्र ही है, इतना भोजन कैसे पचा लेता होगा?' ब्रह्मचारी ने कहा—'पण्डितजी! यह साधु भोजन पचाता नहीं, प्रत्युत जब भी कोई बढ़िया पदार्थ हलवा, खीर, पूरी आदि उसे खिलाता है तो यह खूब खा लेता है और नर्वदा नदी के तट पर जाकर मुख में अंगुलियाँ डालकर उसे बाहर निकाल देता है।' पाठक स्वयं विचार करें कि ऐसे नर-पिशाच, जिह्वा-लोलुपी मनुष्य बढ़िया से बढ़िया भोजन खाकर भी कमजोर, निस्तेज तथा अस्थि-पंजर मात्र ही न हों तो और क्या हों? इसीलिए बुद्धिमानों का कहना है—

'जीवन के लिए खाओ, न कि खाने के लिए जीओ।

चौथा प्रश्न है—

कब खाएँ?—इसका मोटा और स्पष्ट उत्तर है—जब शरीर माँगे। अभी कहा जा चुका है कि शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग रखने के लिए ही भोजन करना चाहिए। अत: जब शरीर अपनी इस आवश्यकता को पूर्ण करना चाहता है तो वह स्वयं अपनी मूकवाणी से आपसे भोजन माँगना प्रारम्भ कर देता है, और इसकी मोटी पहचान यह है कि उस समय पाचन-शक्ति तेज होकर खूब भूख लगती है। अत: जब खूब भूख लगे, तब

समझना चाहिए कि अब शरीर पूर्व-खाए भोजन को अपना अंग बनाकर दुबारा अगले भोजन की माँग कर रहा है। किन्तु जब हम ऐसा नहीं करते अर्थात् बिना शरीर के माँगे, दूसरे शब्दों में बिना खूब भूख लगे, भोजन खा लेते हैं तो पूर्व-खाया भोजन भली प्रकार से न पचने के कारण उसमें सड़ाँद पैदा हो जाती है। वह सड़ाँद दुबारा खाए भोजन को भी सड़ाकर शरीर की रस, रक्त तथा वीर्य आदि धातुओं को कमजोर तथा दूषित बना देती है। अतः पहले भोजन के खूब पच जाने पर ही दुबारा भोजन खाना चाहिए, अन्यथा नहीं। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद ने कैसा सुन्दर नियम बताया है !—

हिताशी स्याद् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्॥

"बुद्धिमान् का कर्त्तव्य है कि विषम आहार से नाना प्रकार के रोगों तथा कष्टों को देखता हुआ, सदा हितकर और परिमित आहार का सेवन करनेवाला बने और हमेशा ठीक समय पर अर्थात् भूख लगने पर ही भोजन करे, तथा सदा संयमी और जितेन्द्रिय रहे।" कई लोग बकरी की तरह दिन-भर कुछ-न-कुछ चबाते ही रहते हैं। ऐसे आदमी कभी भी स्वस्थ और सुडौल नहीं बन सकते। ऐसे मनुष्य तो लकड़ी के समान सूखकर सदा 'बाबू लकीर चन्द' ही बने रहते हैं। एक कहावत भी है—

खाए बकरी की तरह।
सूखे लकड़ी की तरह॥

अब पाँचवाँ और अंतिम प्रश्न है—

कैसे खाएँ?—इसका उत्तर इतना ही पर्याप्त है कि जिस प्रकार खाने से हमारी जठराग्नि को भोजन पचाने में कम-से-कम परिश्रम करना पड़े। यह तभी हो सकता है जब हम खूब चबाकर तथा प्रसन्नचित्त होकर शांतिपूर्वक भोजन खाएँ। खूब चबाए हुए भोजन को पचाने में जठराग्नि को बहुत कम परिश्रम करना पड़ता है, और वह भोजन को शीघ्र पचाकर शरीर का अंग बना देती है, तथा पाचन-शक्ति हमेशा ठीक बनी रहती है। अतः खूब चबाकर भोजन करनेवाला मनुष्य अपचन, बद्धकोष्ठता आदि रोगों से हमेशा मुक्त रहता है। जब हम भोजन को दाँतों से खूब चबाते हैं तो मुख से एक प्रकार का भोजन पचानेवाला रस निकलता है, जोकि भोजन के साथ मिलकर उसे पचाने में सहायता देता है। दूसरा, चबाकर खाने से भोजन अधिक मात्रा में

नहीं खाया जाता। इसीलिए बुद्धिमानों ने कहा है—

कम खाना और खूब चबाना।
यही है तंदुरुस्ती का खजाना॥

खूब चबाने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखना अत्यावश्यक है कि भोजन खाते समय हम अपने अन्दर से रंज, शोक, दु:ख तथा क्रोध के विचारों को दूर कर दें और खूब प्रसन्नचित्त होकर शांतिपूर्वक भोजन खावें। जहाँ इस प्रकार भोजन करने से हमारा भोजन सुगमता से पचकर शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने का कारण बनता है, वहाँ इसके विपरीत, चित्त को रंज, शोक तथा क्रोध आदि विकारों से दूषित बनाकर भोजन करने से उस भोजन से बना हुआ रस विष के रूप में परिणत हो जाता है, और वह विष सारे शरीर में फैलकर शरीर को अनेक रोगों का घर बना देता है।

आशा है अब पाठकों को शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाए रखने का सबसे पहले साधन आहार अर्थात् भोजन के सम्बन्ध में पूरा परिचय प्राप्त हो गया होगा। हम भोजन-संबंधी पाँच प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को संक्षेप से पुन: पाठकों की स्मृति के लिए उद्धृत किए देते हैं, जिससे पाठक इस विषय को भली प्रकार ध्यान में रख सकें—

(१) क्या खाएँ? उत्तर—जो हमारे शरीर को स्वस्थ और बलवान् रखने के लिए उपयोगी और लाभप्रद हो।

(२) कितना खाएँ? उत्तर—जितना हमारे शरीर के लिए आवश्यक है।

(३) क्यों खाएँ? उत्तर—अपने शरीर-पोषण के लिए अर्थात् अपने जीवन-निर्वाह के लिए।

(४) कब खाएँ? उत्तर—जबकि हमारे शरीर को भोजन की आवश्यकता हो, अर्थात् जब खूब भूख लगे।

(५) कैसे खाएँ? उत्तर—जिस प्रकार खाने से भोजन खूब पचकर शीघ्र ही शरीर का अंग बन जाए, अर्थात् खूब चबाकर। इन्हीं नियमों को शरीर-शास्त्र के आचार्यों ने सूत्ररूप में निम्न प्रकार से लिखा है—

१—उष्णमश्नीयात्, २—स्निग्धमश्नीयात्, ३—मात्रावदश्नीयात्, ४—जीर्णो अश्नीयात्, ५—वीर्याविरुद्धमश्नीयात्, ६—इष्टे देशे, इष्ट सर्वोपकरणे चाश्नीयात्, ७—नातिद्रुतमश्नीयात्, ८—नातिविलम्बितमश्नीयात्, ९—अजल्पन्, अहसन्, तन्मना भुञ्जीत, १०—आत्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत।

अर्थात्—"१—सदा गर्म भोजन करे। बहुत देर का ठंडा और बासी भोजन न करे। २—भोजन में दुग्ध, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन करें, रूक्ष भोजन न करे। ३—परिमित मात्रा में भोजन करे। ४—पहले भोजन के भली प्रकार पच जाने पर ही भोजन करे। ५—अपनी प्रकृति के विरुद्ध भोजन न करे। ६—जहाँ भोजन के योग्य स्वच्छ, सुन्दर तथा हवादार स्थान हो और भोजनोचित साधन भी सुलभ हों, वहाँ भोजन करे। ७—बहुत जल्दी-जल्दी भोजन न करे अर्थात् खूब चबा-चबाकर करे। ८—भोजन में अनावश्यक देर भी न लगाए। ९—भोजन करते समय न तो बहुत बातें करे, न हँसी-ठट्ठा और मखौल करे, प्रत्युत भोजन में ही दत्तचित्त होकर उसे खाए। १०—अपनी सामर्थ्य तथा स्वास्थ्य आदि को देखकर भोजन करे।"

भोजन करने से पूर्व हाथ, पैर तथा मुख अवश्य धो लेना चाहिए। इससे जहाँ भोजन में हाथों के मैल का प्रवेश नहीं होता, वहाँ पैर धोकर भोजन करने से जठराग्नि भी तेज होती है। महाभारत शान्ति-पर्व में लिखा है—"पञ्चार्द्रो भोजनं भुञ्ज्यात्" अर्थात् शरीर के पाँच अंगों, दो हाथ, दो पैर तथा मुख को धोकर भोजन करे।

शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने का दूसरा साधन है—

व्यवहार

व्यवहार से तात्पर्य—हमारे सोने, उठने, बैठने, चलने आदि का वह उचित ढंग (तरीका) जोकि हमारे भोजन पचाने में सहायक हो तथा हमारी दिनचर्या और प्रतिदिन नियमपूर्वक उचित मात्रा में व्यायाम। आज हमने सोने-बैठने के ढंग को बहुत बिगाड़ लिया है। यही कारण है कि जहाँ हमारा भोजन पक्वाशय में जाकर सरलतापूर्वक और ठीक समय पर पच जाना चाहिए था, वहाँ आज हमारा भोजन बहुत कठिनता से पचता है और वह भी चूर्ण, गोली आदि कृत्रिम साधनों द्वारा। आप सोने के ढंग को ही लीजिए! सोना हमेशा बिल्कुल सीधा तथा करवट से चाहिए और वह भी विशेषकर बाईं करवट से, इससे भोजन भी भली प्रकार पच जाता है, और वीर्याशय पर अधिक दबाव न पड़ने के कारण स्वप्नदोष आदि वीर्य-विकार भी नहीं होते। किन्तु इसके विपरीत कोई तो पीठ के भार हाथ-पैर फैलाकर बिल्कुल चित्त ही लेट जाता है, कोई मगरमच्छ के समान पेट और छाती के बल पर सोता है, और कोई यदि करवट से सोता भी है तो सीधा न सोकर

घुटनों को मोड़कर और पेट के साथ सटाकर फुटबॉल के समान गोल-मटोल बनकर सोता है। इन सब सोने के विकृत तरीकों से न तो हमारा भोजन ही भली प्रकार पचता है और न फेफड़ों और हृदय में रक्त का अभिसरण भली प्रकार हो पाता है और न ही प्राण-शक्ति, जोकि हमारे शरीर में जीवन का मुख्य साधन है, जैसाकि पाठक प्राणायाम के प्रकरण में पढ़ेंगे, उसका भी भली प्रकार से संचार होता है। यही अवस्था हमारे चलने, फिरने, उठने, बैठने आदि की है। आज हमारी प्रत्येक जीवनोपयोगी क्रिया तथा चेष्टा का ढंग विकृत हो गया है। यही कारण है कि जो व्यवहार हमारे स्वास्थ्य तथा बल-बुद्धि की वृद्धि की प्राप्ति में साधक बनना चाहिए था, वह आज बाधक बन रहा है।

व्यवहार का दूसरा भाग है—

दिनचर्या

शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने, तथा सदा नीरोग रहने के अभिलाषी को अपनी दिनचर्या को अवश्य ठीक करना चाहिए। उसकी दिनचर्या एक ऐसी आदर्श दिनचर्या हो कि जिसके द्वारा अनायास ही शरीर के स्वास्थ्य और बल का विकास होता जाए। प्रातः उठने से लेकर रात्रि-शयन करने तक हमारी आदर्श दिनचर्या कैसी हो—इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन हम पाठकों के लाभार्थ यहाँ कर देना उचित समझते हैं।

आदर्श दिनचर्या

१. ब्राह्ममुहूर्त में उठना

अपने शरीर-मन-आत्मा को स्वस्थ, निर्विकार, बलवान् और दीर्घजीवी बनाने के लिए प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठना परमावश्यक है। शरीरशास्त्रियों ने कहा है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

अर्थात्—जो मनुष्य अपने को स्वस्थ तथा बलवान् बनाना चाहता है, और जो अपनी आयु को सुखमय और दीर्घजीवी बनाना चाहता है, उसे प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में अवश्य उठना चाहिए। किसी अंग्रेज कवि ने कैसा सुन्दर कहा है—

Early to bed and early to rise,
Makes a Man Healthy, Wealthy and Wise.

अर्थात्—जो व्यक्ति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठता है, वह स्वस्थ, धनवान् व बुद्धिमान् होता है।

"प्रातः उठने से शरीर स्वस्थ, सुखी, नीरोग तथा फुर्तीला बनता है। चित्त प्रसन्न रहता है, आलस्य दूर भागता है। बुद्धि निर्मल तथा कुशाग्र बनती है। उस समय शान्ति का साम्राज्य होता है। इसलिए सुषुम्णा नाड़ी ब्राह्ममुहूर्त में स्वयं ही चलने लगती है, तथा सुषुम्णा के चलने के कारण मन में सात्त्विक वृत्तियों तथा दैवी विचारों का उदय होता है। तामसी तथा राजसी वृत्तियों का दमन होता है। इसीलिए ऋग्वेद में कहा है—

आमिनन्ति दैव्यानि व्रतानि।

अर्थात् "यह उषाकाल दिव्य व्रतों को जन्म देनेवाला है।"

"अतः प्रातःकाल किए गए कार्य थोड़े ही समय में भली प्रकार पूर्ण हो जाते हैं। कठिन-से-कठिन विषय भी प्रातः विचार करने से शीघ्र हृदयंगम हो जाते हैं। ईश्वर-भक्ति, आत्म-चिंतन, ध्यान, धारणा तथा स्वाध्याय करने का भी यही एक सर्वोत्तम समय है। प्रातः शीघ्र न उठने से शरीर में आलस्य तथा भारीपन आ जाता है। अपान वायु विकृत हो जाती है, पेट में गुड़गुड़ाहट तथा दर्द होने लगता है। शौच खुलकर नहीं आता। प्रातः न उठनेवाला मनुष्य आलसी, प्रमादी, दरिद्री, हठी, दुराग्रही तथा कलुषित विचारोंवाला बन जाता है। सूर्योदय के पश्चात् मल विसर्जन करने से आँतों में सड़ान पैदा हो जाती है और वह भाप बनकर तथा ऊपर मस्तिष्क में उठकर नजला-जुकाम आदि के उत्पन्न करने का कारण बन जाती है। तब जुकाम आदि को शमन करने के लिए चाय आदि कृत्रिम उपायों को काम में लेना पड़ता है और चाय आदि गर्म पदार्थों के लेने से मस्तिष्क में जमा हुआ पदार्थ भाप बनकर फिर फेफड़ों में चला जाता है, और फेफड़ों को गलाकर क्षय आदि रोगों का कारण बनता है और हम यह समझ लेते हैं कि हमारा जुकाम ठीक हो गया है। अतः इन सब शारीरिक और मानसिक रोगों तथा बुराइयों से बचने के लिए और अपने शरीर को सदा स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाए रखने के लिए प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठना परमावश्यक है। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि हम कभी बीमार न पड़ें, सदा स्वस्थ, नीरोग और बलवान् बने रहें और यह जीवन सदा सुख और शांतिमय बीते, यदि आपकी यह प्रबल अभिलाषा है कि हम अकाल में ही काल के ग्रास न बनकर चिरायु हों, और अपना स्वार्थ व परमार्थ दोनों सरलतापूर्वक सम्पन्न कर

सकें तथा इस अमूल्य मनुष्य-जीवनरूपी सुन्दर वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों फलों को प्राप्त कर सकें, तो देर से उठने की बुरी टेव को एकदम छोड़कर सदा प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही उठने का अभ्यास कीजिए। शुरू-शुरू में मन बिस्तर छोड़ने तथा जल्दी उठने में आलस्य करेगा। उस समय मन को समझाइए कि अरे मन ! तूने कभी-न-कभी तो उठना ही है। फिर अपने जीवन को नीरोग तथा सुखमय बनाने के लिए जल्दी क्यों नहीं उठ बैठता ? इस प्रकार समझाने पर मन अपने-आप शीघ्र उठने का आदी हो जाएगा।

उषःपान

प्रातःकाल उठकर पाव या आधा पाव के लगभग जल का नासिका द्वारा पान करना, शरीर-स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इसे 'उषःपान' कहते हैं। उषःपान की महिमा योग और आयुर्वेद दोनों में मुक्त कंठ से गाई गई है, जैसे कि आयुर्वेद में लिखा है—

विगतघन-निशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं,
पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो,
बलिपलित-विहीनः सर्व-रोगैर्विमुक्तः।

अर्थात्—जो मनुष्य प्रातःकाल घना अँधेरा दूर होते ही उठकर नासिका द्वारा जलपान करता है, वह पूर्ण बुद्धिमान् तथा नेत्र-ज्योति में गरुड़ के समान हो जाता है। उसके बाल जल्दी सफेद नहीं होते, तथा वह सारे रोगों से सदा मुक्त रहता है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर लिखा है—

सर्व-रोग-विनाशाय निशांते तु पिबेज्जलम्।

अर्थात्—सब रोगों को नष्ट करने के लिए रात्रि के अन्त पर अर्थात् प्रातःकाल जल पिये। इस सम्बन्ध में संस्कृत की एक अन्य लोकोक्ति बहुत ही महत्त्व की है—

भोजनांते पिबेत् तक्रं, दिनांते च पिबेत् पयः।
निशांते च पिबेत् वारि, सर्व-व्याधि-विनाशनम्॥

अर्थात्—यदि मनुष्य भोजन के अंत में मठा (छाछ), दिन के अंत अर्थात् सायं को दूध तथा रात्रि के अन्त अर्थात् प्रातःकाल जल पिये, तो उसके

सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्रात: निरन्तर उष:पान करने से मल-विसर्जन भी खुलकर होता है, कब्ज दूर होती है। शरीर में एक नई स्फूर्ति, चेतना तथा आनन्द का अनुभव होने लगता है। यदि उष:पान से पूर्व योग की 'जलनेति' क्रिया कर ली जाय तो और भी अधिक लाभ होता है—

विभिन्न रोगों की निवृत्ति के लिए उष:पान बहुत ही हितकर है, जैसे—मलावरोध (कब्ज), मूत्र की कमी, रक्तविकार, रक्तपित्त, वृक्करोग, सिरदर्द, पुराना तथा नया जुकाम, हाथ-पैरों की जलन, पेशाब में जलन, नेत्रों की कमजोरी, पित्त-प्रकोप, नकसीर, असमय में बालों का पकना आदि। अत: इन रोगों से मुक्त होने के अभिलाषी को प्रात:काल अवश्य योग की जलनेति-क्रिया तथा उष:पान अथवा केवल उष:पान अवश्य करना चाहिए।

मल-विसर्जन

मल-विसर्जनार्थ सदा सूर्योदय से पहले बाहर जंगल या सुविधानुसार जो भी एकान्त स्थान हो, जाना चाहिए। प्रात: सूर्योदय से पूर्व शौच से निवृत्ति होने से शरीर नीरोग तथा आयु की वृद्धि होती है। सुश्रुत में लिखा है—

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।

अर्थात्—"प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व मलादिकों का त्याग करना दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला है।" दाहिने पैर पर जोर देकर बैठने से शौच खुलकर आता है। यदि मल-विसर्जन करते समय दाँतों को भींचकर बैठा जाय तो दाँतों के रोग नहीं होते। कई लोग किसी अन्य आवश्यक कार्य के आ जाने पर मल-मूत्र के वेग को रोक लेते हैं। ऐसा करना शरीर के लिए महान् हानिकर है। मल-मूत्र के वेग को कभी भी नहीं रोकना चाहिए, क्योंकि इन वेगों को रोकने से कई प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए शरीरशास्त्रियों ने लिखा है—

रोगा: सर्वेपि जायन्ते वेगोद्दीरण-धारणै:।

अर्थात्—"वेगों की गति को धारण करने से शरीर में सब प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।"

प्रात:-भ्रमण

जैसाकि पहले लिखा जा चुका है, प्रात:काल का समय शारीरिक,

मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों के विकास के लिए अत्यन्त गुणकारी है और आत्मा के लिए शान्ति तथा आनन्द प्रदान करनेवाला है। इस समय की मंद-मंद चलती हुई अत्यन्त शुद्ध, सुगन्धित तथा लाभप्रद वायु में प्राणदायिनी जीवनी-शक्ति का बहुत अधिक भाग रहता है। अतः वह मनुष्य में विशेषकर नवजीवन का संचार करनेवाली, बड़ी ही सुहावनी और शारीरिक शक्ति तथा आरोग्यता के लिए अमृत के समान है। चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र आदि प्रभु की दिव्य विभूतियाँ रात-भर पृथ्वी-तल पर अमृत बरसाती रहती हैं तथा प्रातःकाल सूर्य में से उषा नाम की एक किरण निकलती है, जोकि जगती में अमृत का संचार करती है। इसीलिए प्रभात-समय को अमृतबेला तथा उषःकाल कहा गया है। प्रातःकाल इन्हीं दैवी शक्तियों के अमृत को लेकर वायु मंद-मंद गति से चलती है। इस अमृतमयी वायु के त्वचा से लगने पर शरीर में तेज, बल, आरोग्यता, स्फूर्ति और उत्साह का संचार होता है। रक्त शुद्ध और लाल बनकर शरीर में तेजी से भ्रमण करता है, जिससे रक्त-सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। प्रातःकाल की शुद्ध वायु रोगों की अचूक तथा अमोघ औषध है। अतः प्रातः भ्रमण करने से सब रोगों की निवृत्ति तथा आरोग्यता की वृद्धि होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होकर भोजन भली प्रकार पचता है। बद्ध-कोष्ठता दूर होती है। नियमानुसार भ्रमण करने से पैरों, घुटनों, जाँघों और कमर में मजबूती तथा सौन्दर्य के बढ़ने के साथ-साथ भुजाओं, गर्दन और मेरुदण्ड की हड्डियों में बल, शक्ति तथा मांसपेशियों में दृढ़ता आती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। नियमपूर्वक भ्रमण करनेवाला पुरुष सदा नवयुवक तथा स्वस्थ बना रहता है, क्योंकि इससे जीवन-शक्ति बढ़ती है और वृद्धावस्था के कोषों के परमाणु दूर होकर शरीर के प्रत्येक अंग में जीवनीय शक्ति, स्फूर्ति, दृढ़ता तथा स्वास्थ्यप्रद गति का संचार होता है। शरीर की धातुएँ और उपधातुएँ शुद्ध और पुष्ट होती हैं। मनोद्वेग, आलस्य, चिंता, दुर्बलता, भय और रोग आदि का नाश होता है। मनुष्य बलवान्, रूपवान् व बुद्धिमान् बन जाता है। प्रातः भ्रमण करनेवाले मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ शांत होने से तथा धातुओं की उष्णता दूर होने से उसको काम-विकार अधिक नहीं सताता। प्रातः भ्रमण करने से न केवल शारीरिक, प्रत्युत मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का भी विकास होता है। ऋग्वेद (१।११३।१२) में उषःकाल की महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

यावयद्-द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सुनृता ईरयन्ति।
सुमङ्गलीर्बिभ्रति देववीतिमिहाद्योषा श्रेष्ठतमा व्युच्छ॥

"हे द्वेष-भावों को दूर भगानेवाली, सत्य-पालन आदि व्रतों का पालन करानेवाली, प्रभुभक्ति, स्वाध्याय आदि सुन्दर वाणियों को प्रेरणा करनेवाली, सबका कल्याण करनेवाली, दैवी शक्तियों को धारण करनेवाली, उषा देवी ! तू तो (ऋतेजा) उस सत्यस्वरूप प्रभु की सुन्दर कृति है। इसलिए हे उषा देवी ! तू आज हमारे यहाँ श्रेष्ठतमा बनकर प्रकट हो और हमें भी श्रेष्ठतम बना दे।" ऐसे अमृतमय उषाकाल में भ्रमण करना कितना लाभप्रद होगा, इसका अनुमान स्वास्थ्य-प्रेमी सज्जन स्वयं लगा सकते हैं। आयुर्वेद में भ्रमण के महत्त्व को निम्न शब्दों में वर्णन किया गया है—

यत्तु चंक्रमणं नाति देह-पीड़ाकरं भवेत्।
तदायुर्बल-मेधाग्निप्रदमिन्द्रिय - बोधनम्॥

अर्थात्—"जो भ्रमण थकाकर शरीर को अधिक कष्ट देनेवाला नहीं होता, वह आयु, बल, बुद्धि प्रदान करनेवाला और इन्द्रियों की शक्तियों को जागृत करनेवाला होता है।" अतः प्रतिदिन भ्रमण करना स्वास्थ्याभिलाषी जनों को अपनी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग बना लेना चाहिए।

घूमने की विधि

घूमते समय शरीर सीधा रहे, कमर न झुके, छाती तनी रहे और हाथ स्वाभाविक रूप में आगे-पीछे हिलते रहें। बीच-बीच में गहरा श्वास लेते रहें। शरीर पर अधिक वस्त्र न लादें। घूमते समय अपने अन्दर से घरेलू विचारों तथा चिन्ताओं को दूर कर दें तथा अपना सारा ध्यान प्रकृति के सौन्दर्य को निहारने और भ्रमण के लाभ के चिन्तन में ही लगावें। जहाँ तक हो सके अकेले ही घूमें। यदि किसी मित्र के साथ ही घूमना हो तो यह ध्यान रखें कि वह इधर-उधर की व्यर्थ की गप्पें न मारनेवाला हो। क्योंकि गपोड़ियों के साथ गप्पें मारते हुए ढीले-ढीले और सुस्त शरीर से धीरे-धीरे कदम रखकर घूमने से कुछ विशेष लाभ नहीं होता। ऐसा करने से न तो शरीर को ही व्यायाम मिलता है और न ही मन, मस्तिष्क तथा बुद्धि को तरोताजगी प्राप्त होती है।

तेल मालिश

शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने के लिए तेल की मालिश परमोपयोगी एवं अत्यावश्यक है। इससे शरीर में जीवन-शक्ति का संचार होता है। शरीर में तेल लगाने से वह शीघ्र ही रोमकूपों द्वारा शरीर के भीतर पहुँच जाता है। मालिश करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग पुष्ट, बलवान्, सुन्दर, सुडौल तथा सुगठित बन जाते हैं। शरीर हर प्रकार के परिश्रम करने योग्य बन जाता है। वृद्धावस्था, शारीरिक व्यथा तथा थकावट दूर होती है। निद्रा गहरी आती है। शरीर का रंग निखरकर स्वर्ण के समान चमकीला, तेजस्वी तथा सुन्दर बन जाता है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। शरीर की त्वचा नरम, लचकीली, चमकदार तथा चिकनी हो जाती है। फोड़ा-फुन्सी आदि चर्म-विकार नहीं होते। आयुर्वेद में लिखा है—

जल-सिक्तस्य वर्धन्ते यथा मूलाङ्कुरास्तरोः।
तथा धातु-विवृद्धिर्हि स्नेह-सिक्तस्य जायते ॥

अर्थात्—"जैसे जल सींचने पर वृक्ष की जड़ें, पत्ते, टहनियाँ तथा अंकुर फैलते व बढ़ते हैं, उसी प्रकार तेल से सींचे हुए शरीर की सब धातुओं की वृद्धि होती है।" वाग्भट्ट ने भी लिखा है।

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं स जरा-श्रम-वात-हा।

अर्थात्—"स्वास्थ्याभिलाषी को नित्य मालिश करनी चाहिए; क्योंकि मालिश से बुढ़ापा, थकावट तथा वात-रोग दूर हो जाते हैं।"

अतः यदि आप पुनर्यौवन के लिए कोई वैज्ञानिक उपचार चाहते हैं, तो नित्यप्रति तेल की मालिश किया करें। दुबले और कमजोर मनुष्य को मोटा और बलवान् तथा मोटे व बेडौल मनुष्य को अपनी ठीक अवस्था में लाने का मालिश ही एकमात्र सरल तथा सर्वोत्तम उपाय है। मालिश के लिए पीली सरसों तथा काले तिलों का तेल अधिक लाभदायक है।

दन्त-धावन

शरीर-स्वास्थ्य के लिए दाँतों को सदा स्वच्छ रखना परम आवश्यक है। दाँतों को स्वच्छ न रखने से जहाँ कीड़ा लगना, मसूड़े फूलना, दर्द होना, पायोरिया आदि दाँतों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, वहाँ रोगी दाँतों से भोजन

भली प्रकार न चबाने के कारण, तथा भोजन पचाने में सहायक ग्रन्थियों का प्राकृतिक लुआब भोजन में न मिलने के कारण, भोजन भी भली प्रकार नहीं पचता। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल दन्तधावन द्वारा दाँतों तथा जिह्वा को साफ रखना परम आवश्यक है। नियमपूर्वक दातून करने से मुख की दुर्गन्धि, दाँतों का मैलापन और कफ की निवृत्ति होती है; अन्न में रुचि तथा चित्त में प्रसन्नता आती है; दाँतों के रोग उत्पन्न नहीं होते और वृद्धावस्था तक दाँत मजबूत तथा सुदृढ़ बने रहते हैं।

स्नान

शरीर को स्वच्छ, पवित्र तथा नीरोग रखने के लिए प्रतिदिन स्नान करना परम आवश्यक है। स्नान करने से शरीर स्वच्छ हो जाता है। रोम-छिद्र खुल जाते हैं। रात्रि को निद्रा के समय जो शरीर में उष्णता तथा आलस्य बढ़ जाता है, अथवा दिन-भर के परिश्रम से जो शरीर और मस्तिष्क में गर्मी व थकावट आ जाती है, स्नान करने से ये सब दूर हो जाते हैं। जल वास्तव में बल, शक्ति, आरोग्यता आदि दैवी शक्तियों का भण्डार है। अतः स्नान, पान आदि में इसका यथायोग्य उपयोग करने से शरीर के सब रोगों और निर्बलताओं को दूर कर मनुष्य को अमृत अर्थात् दीर्घजीवी बना देता है। इसीलिए अथर्ववेद में कहा है—

'अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्'

अर्थात्—जल के अन्दर सब तरह के रोगों को दूर करने की औषध तथा अमृत विद्यमान है। वेद तो यहाँ तक कहता है—

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपः।

अर्थात्—जल सम्पूर्ण ओषधियों की परम ओषधि है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि जल ऑक्सीजन और हाइड्रोजन नामक गैसों से मिलकर बना है। जितना भी हम स्नान-पान आदि में शुद्ध-शीतल जल का प्रयोग करेंगे, उतना ही हमें ऑक्सीजन अधिक मात्रा में मिलेगी। इसलिए प्रातः ठंडे जल से स्नान करना अपने अन्दर अमृत का संचार करना है। स्नान करने से जहाँ शारीरिक लाभ होते हैं, वहाँ चित्त में भी शान्ति तथा सत्त्वगुण की वृद्धि होती है जिससे ईश्वरोपासना, सत्संग, स्वाध्याय आदि में मन भली प्रकार लगता है। स्नान से शरीर में अपूर्व बल तथा शक्ति का संचार होता है

और दूषित द्रव्य शरीर से बाहर निकल जाते हैं। स्नान से तेज, बल, आरोग्यता और स्फूर्ति की वृद्धि होती है। पाचन-शक्ति तीव्र होती है। बुद्धिमानों का कहना है कि जो नित्य नियमपूर्वक स्नान करता है, उसे निम्न गुणों की अवश्य प्राप्ति होती है—

(१) रूप, (२) कान्ति, (३) तेज, (४) बल, (५) पवित्रता, (६) दीर्घ आयु, (७) आरोग्यता, (८) स्थिरता अर्थात् चंचलता का नाश, (९) स्वप्न की निवृत्ति, (१०) यश, (११) कीर्ति, और (१२) सूक्ष्म मेधा बुद्धि।

हमारे शरीर से जो पसीना निकलता है, उसमें अधिक मात्रा में विष होता है। स्वेद के कारण त्वचा पर मैल जम जाता है, जिससे स्वेद निकलना तथा बाहर से शुद्ध वायु का प्रवेश बंद हो जाता है। अतः पसीने के मल को दूर करने के लिए भी स्नान करना अत्यावश्यक है।

हृदय और फेफड़े आदि के कोमल अंग दृढ़ होते हैं। शरीर में आलस्य नहीं रहता। मन की मलिनता दूर होती है। चित्त सदा प्रसन्न रहता है। काम करने में उत्साह होता है। स्नान करने से भीतर की स्वाभाविक उष्णता भीतर ही रह जाने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। रक्त का प्रवाह ठीक होता है। वीर्य, आयु, शक्ति तथा पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। ज्ञान-तन्तुओं में जागृति तथा नव-चैतन्य का संचार होता है। चरक ने स्नान के निम्न लाभ दर्शाए हैं—

पवित्रं वृषण्यमायुष्यं श्रम-स्वेद-मलापहम्।
शरीरबल-संधानं स्नानमोजस्करं परम्।

अर्थात्—"स्नान पवित्रता-कारक, वीर्य-वर्धक, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, थकावट और पसीना-नाशक, मल को दूर करनेवाला, बल बढ़ानेवाला और अत्यन्त ओज व तेज को प्रदान करनेवाला है।" अतः हमें प्रातः स्नान में कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए। स्नान करने से पूर्व सादे मोटे खुरदरे कपड़े को बार-बार भिगोकर उससे पाँच-दस मिनट तक नाभि के नीचे के भाग को अच्छी तरह मल लिया जाए तो बहुत ही उत्तम है।

प्रभु-भक्ति

स्नान के पश्चात् व्यायाम करके (जिसका कि आगे पृथक् वर्णन आएगा) प्रभु का चिन्तन करना भी मनुष्य को अपनी दिनचर्या का एक मुख्य

अंग बना लेना चाहिए। प्रभु-भक्ति आत्मिक भोजन तो है ही, किन्तु इससे शरीर भी स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनता है। उस सर्वशक्तिमान् का एकाग्रचित्त होकर चिंतन करने से साधक को शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति प्राप्त होगी, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। ईश्वर-भक्ति के द्वारा जो मनुष्य को एक अलौकिक आनन्द और अद्‌भुत शक्ति प्राप्त होती है, उसका शरीर के ऊपर भी बहुत गहरा असर पड़ता है। शरीर की सब धातुओं-उपधातुओं की विषमता दूर होकर उसमें समता व शक्ति का संचार होता है। संत-महात्मा तथा योगीजनों के स्वस्थ, बलवान् और दीर्घजीवी होने का ईश्वर-भक्ति ही एक मुख्य कारण है। महाभारत में लिखा है—**'ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।'** अर्थात् ऋषियों ने दीर्घकाल तक संध्या अर्थात् ईश्वर-भक्ति करने से ही दीर्घ आयु को प्राप्त किया है। संत कबीर ने भी 'मैं तो अपने प्रभु को रिझाऊँ' अपने इस भजन में कहा है—

औषध खाऊँ न बूटी खाऊँ, न कोई वैद्य बुलाऊँ।
एक ही वैद्य मिलो अविनाशी, वाही को नबज दिखाऊँ॥

ईश्वर-भक्ति जहाँ शारीरिक उन्नति के लिए आवश्यक है, वहाँ आत्म-कल्याण के लिए भी परम आवश्यक है। जिस प्रकार भोजन के बिना शरीर का काम नहीं चल सकता, इसी प्रकार बिना ईश्वर-भक्ति के आत्मा का काम भी नहीं चलता। सच पूछा जाय तो शरीर के लिए भोजन इतना आवश्यक नहीं, जितना आत्मा के लिए ईश्वर-भक्ति। इसीलिए ईश्वर-भक्ति को आत्मिक खुराक कहा गया है। ईश्वर-भक्ति से ही अज्ञान-तिमिर का नाश होकर आत्मा में ज्ञान-ज्योति का प्रकाश होता है। ईश्वर-भक्ति के बल से ही मनुष्य संसार में अपनी सब शुभकामनाएँ पूर्ण कर सकता है। प्रभु-भक्ति से रोग, शोक, संताप, दरिद्रता, चिन्ता, निर्बलता आदि जितने भी क्लेश हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। प्रभु-भक्तिहीन होकर मनुष्य न तो सच्ची शांति और न आनन्द का अनुभव कर सकता है, और न ही प्रभु के इस परम सुन्दर और सुखमय संसार का सच्चा रसास्वादन कर पाता है। अतः आत्म-कल्याणाभिलाषी जनों को प्रतिदिन प्रभु का चिंतन अवश्य करना चाहिए। यदि हम प्रातः एक घंटे तक एकाग्रचित्त होकर प्रभु की उपासना करें, एकमात्र प्रभु को छोड़कर दूसरा कोई भी विचार मन में न आने दें, तो सब प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक पीड़ाएँ केवल प्रभु-भक्ति से ही दूर हो जाएँगी।

आशा है स्वास्थ्य-प्रेमी सज्जन इस आदर्श दिनचर्या के अनुसार अपने जीवन को ढालकर, उसे सुखमय तथा आदर्श जीवन बनाने का प्रयास करेंगे।

व्यायाम

जितना शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाए रखने के लिए पौष्टिक तथा सात्त्विक भोजन की आवश्यकता है, उससे भी कहीं अधिक प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करने की आवश्यकता है। नियमपूर्वक व्यायाम करने से खाया हुआ भोजन भली प्रकार पच जाता है, तथा शरीर का अंग बन जाता है। मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठता आदि बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। शरीर सुन्दर, सुडौल तथा कांतिमान् बन जाता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाव प्रकाश' में व्यायाम के लाभ निम्न प्रकार से वर्णन किए हैं—

लाघवं कर्म-सामर्थ्यं विभक्त-धन-गात्रता।
दोष-क्षयोऽग्नि-दीप्तिश्च व्यायामादुपजायते॥
व्यायाम-दृढ़-गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन।
विरुद्धं वा विदग्धं वा भुक्तं शीघ्रं विपच्यते॥

अर्थात्—"प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करने से शरीर हल्का और फुर्तीला बन जाता है। कठिन-से-कठिन कार्य करने की शरीर में शक्ति तथा सामर्थ्य पैदा हो जाती है। शरीर के सब अंगोपांग भरे हुए, सुन्दर, सुडौल तथा अलग-अलग दीखने लगते हैं, अर्थात् नियमपूर्वक व्यायाम करनेवाले का शरीर न तो फुटबाल की तरह बहुत मोटा, जिसमें विजातीय तत्त्व (Foreign Matter) ही भरा हुआ हो, और न ही बहुत पतला, बाबू लकीरचन्द जैसा ही होता है, प्रत्युत सुन्दर तथा सुडौल बन जाता है। नियमपूर्वक व्यायाम करने से वात, पित्त, कफ दोषों का नाश होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जिसने व्यायाम से अपने शरीर को सुदृढ़ तथा बलवान् बना लिया है, उसको कभी भी किसी प्रकार की बीमारी नहीं सताती। वह जो कुछ खाता है, उसे शीघ्र ही पचा लेता है। यदि किसी समय व्यायामशील मनुष्य भूलकर या स्वभाव की विवशता से सड़ा-गला पदार्थ भी खा लेता है तो वह भी शीघ्र पच जाता है।" अथर्ववेद में भी कहा है—

सर्वं रक्षांसि व्यायामे सहामहे।

अर्थात्—"हम सब रोग-रूपी राक्षसों के आक्रमण को व्यायाम करने से

ही सहन अर्थात् नष्ट कर सकते हैं।"

व्यायाम मनुष्य के लिए कितना आवश्यक तथा लाभदायक है, यह आपको उपर्युक्त उद्धरण से भली प्रकार ज्ञात हो गया होगा। अतः हमको प्रतिदिन व्यायाम करना अपनी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग बना लेना चाहिए और किसी विशेष कारण को छोड़कर इसके करने में कभी नागा नहीं करनी चाहिए।

व्यायाम में ध्यान देने योग्य आवश्यक बातें

व्यायाम करने में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है—

१. व्यायाम के अभ्यासी को सदा अपनी आयु, बल, शारीरिक स्थिति, देश, काल, आदि का विचार करके ही व्यायाम करना चाहिए।

जैसाकि व्यायामशास्त्रियों ने कहा है—

वयो, बल, शरीराणि, देश, कालाशनानि च,
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्।

अर्थात्—मनुष्य को अपनी आयु, बल, शारीरिक स्थिति, देश, काल तथा अपनी खुराक अर्थात् भोजन आदि को देखकर ही व्यायाम करना चाहिए; यदि उपर्युक्त बातों का ध्यान न रखकर कोई व्यायाम करेगा तो वह अवश्य रोग से आक्रान्त होगा।

२. व्यायाम करने में इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी सामर्थ्य से अधिक न किया जाय। व्यायाम में अति कर देने से बजाय लाभ के अनेक प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ती हैं। अति व्यायाम से निम्न हानियाँ होती हैं—

क्षय-तृष्णाऽरुचिछर्दिः रक्तपित्त-भ्रमक्लमाः।
कास शोष ज्वर श्वासा अतिव्यायाम-सम्भवाः॥

अर्थात्—शरीर की क्षीणता, प्यास, अरुचि, सिरदर्द, रक्तपित्त, भ्रम, थकावट, खाँसी, धातुओं का शोषण, ज्वर, दमा, आदि रोग अतिव्यायाम करने से उत्पन्न होते हैं। महर्षि चरक ने भी कहा है—

क्रोधशोकअनायासैः क्लान्ताः ये चापि मानवाः।
ते वर्जयेषु व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्चये॥

अर्थात्—क्रोध, शोक तथा भय की अवस्था में, और भूख तथा प्यास की अवस्था में व्यायाम नहीं करना चाहिए।

३. व्यायाम के अभ्यासी को यथासामर्थ्य दुग्ध-घृतादि स्निग्ध पदार्थों का सेवन अवश्य करना चाहिए।

४. व्यायाम करते-करते मुख से कुछ चबाना या खाना नहीं चाहिए।

५. व्यायाम के पश्चात् घृत और मिश्री-मिला दूध या केवल मिश्री मिलाकर दूध पिया जाए तो अधिक लाभकारी है।

६. व्यायाम करते समय मुख सूखने लगे, श्वास जोर-जोर से आने लगे, अर्थात् दम फूलने लग जाय, अथवा शरीर में पसीना आने लगे, तब व्यायाम बन्द कर देना चाहिए।

७. व्यायाम करते समय लंगोट, जाँघिया या हाफपैंट अवश्य होना चाहिए, अन्यथा अण्डकोषों के बढ़ जाने, अथवा लटक जाने की सम्भावना है।

८. व्यायाम के पश्चात् कुछ देर तक टहलना चाहिए। व्यायाम के पश्चात् एकदम बैठ या लेट जाना अथवा किसी कार्य में लग जाना ठीक नहीं। व्यायाम करने के पश्चात् एकदम कुछ खाना या स्नान करना भी ठीक नहीं।

९. यदि व्यायाम करने से शरीर अधिक थक जाय, तब शरीर में खूब तेल की मालिश करनी चाहिए। विशेषकर पैरों की अवश्य मालिश करनी चाहिए।

१०. वृद्धावस्था में दण्ड, बैठक आदि अतिपरिश्रम-साध्य व्यायाम नहीं करने चाहिएँ। योग के सरल आसन तथा घूमना-फिरना अर्थात् भ्रमण करना ही उनके लिए अधिक उपयोगी व्यायाम है।

यदि व्यायाम-प्रेमी सज्जन उपर्युक्त नियमों को ध्यान में रखकर व्यायाम करेंगे, तो उन्हें व्यायाम से यथेष्ट लाभ होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

यौगिक व्यायाम

"सब प्रकार के व्यायामों में यौगिक व्यायाम सर्वोत्कृष्ट है।"

आजकल सभ्य जगत् में अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं, जैसे—कुश्ती, दण्ड, बैठक, कबड्डी, हॉकी, फुटबॉल आदि। सभी व्यायाम अपनी-अपनी दृष्टि से उपयोगी तथा लाभप्रद हैं, किन्तु इन सब व्यायामों में यौगिक व्यायाम सर्वोत्कृष्ट तथा अधिक लाभप्रद है। इस सिद्धांत को न केवल

हमारे भारतीय विद्वानों ने तथा ऋषि-मुनियों ने स्वीकार किया है, प्रत्युत आज पाश्चात्य विद्वान् भी यौगिक व्यायाम की महत्ता को मानते जा रहे हैं। आजकल अमरीका आदि देशों से जितनी भी स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं, उनमें शरीर को स्वस्थ और नीरोग बनाने के लिए यदि सबसे अधिक किसी व्यायाम-सम्बन्धी लेख या चित्र होते हैं, तो वे यौगिक व्यायाम के सम्बन्ध में ही होते हैं। यौगिक व्यायाम के बढ़ते हुए प्रचार तथा लाभ को देखकर यौगिक व्यायाम की फिल्में तैयार हो रही हैं। अभी कुछ वर्ष हुए बम्बई में २००० फीट लम्बी यौगिक आसनों की एक फिल्म तैयार हुई है, जिससे सिनेमाओं द्वारा यौगिक व्यायाम का प्रचार किया जा सके। पाठक इससे भली प्रकार अनुमान लगा सकते हैं कि जनता की यौगिक व्यायाम में कितनी रुचि बढ़ती जा रही है। यू० पी० सरकार ने तो आज से कुछ वर्ष पूर्व यौगिक व्यायाम को अपने सब स्कूलों में अनिवार्य रूप से प्रचलित कर दिया था। इसके लिए उपर्युक्त गवर्नमेन्ट ने श्रीयुत गुरुवर पूज्य स्वामी कुवलयानन्दजी महाराज से 'यौगिक संघ व्यायाम' नामक पुस्तक भी तैयार कराई थी।

और तो क्या, पण्डित जवाहरलालजी आदि देश के सुप्रसिद्ध नेता भी, न केवल यौगिक व्यायाम की महत्ता को ही स्वीकार करते रहे हैं, प्रत्युत अपने शरीर तथा मस्तिष्क को स्वस्थ और ताजा बनाए रखने के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक यौगिक व्यायाम अर्थात् शीर्षासन आदि भी करते थे। इन सब बातों से पता चलता है कि शिक्षित जनता यौगिक व्यायाम की ओर कितनी आकर्षित होती जा रही है। जनता के आकर्षण का एकमात्र कारण है, यौगिक व्यायाम का शरीर के लिए परम हितकारी तथा लाभप्रद होना। जहाँ योग की ध्यान-धारणा आदि क्रियाएँ मनुष्य के मन और आत्मा को शुद्ध, पवित्र तथा बलवान् बनाती हैं, वहाँ योग की आसन, प्राणायाम तथा न्यौली, बस्ती आदि क्रियाएँ मनुष्य के शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग बना देती हैं। योग से रोग दूर होते हैं। इस बात को महर्षि चरक ने भी स्वीकार किया है। जैसाकि वे अपने चरक ग्रंथ में लिखते हैं—

ज्ञानं तपः तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुतपन्ति रोगाः।

अर्थात्—जो मनुष्य ज्ञानवान्, विचारशील और बुद्धिमान् है, जो तपस्वी व संयमी है और जो प्राणायाम आदि योगाभ्यास में सदा तत्पर रहता है, उसको कभी भी रोग नहीं सताते।

उपनिषदें भी कहती हैं—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।

(श्वेताश्वतरोप०)

अर्थात्—जो मनुष्य योगाभ्यास द्वारा अपने शरीर को योगाग्निमय बना लेता है, उसे न रोग होते हैं, न बुढ़ापा आता है और न ही जल्दी वह मृत्यु को प्राप्त होता है।

यौगिक व्यायाम की इतर व्यायामों से विशेषताएँ

(१) यौगिक व्यायाम से इतर व्यायाम केवल नीरोग शरीर को ही बलवान् बना सकते हैं, किन्तु वे शरीर के रोगों को दूर नहीं कर सकते। अतः रोगयुक्त शरीर इतर व्यायामों से न तो रोगमुक्त हो सकता है और न ही बलवान्। इसके विपरीत जहाँ यौगिक व्यायाम नीरोग शरीर को बलवान् तथा कांतिमान् बनाता है, वहाँ रोगयुक्त शरीर को भी रोगों से मुक्त कर, उसे स्वस्थ तथा सबल बना देता है।

(२) दंड-बैठक आदि व्यायाम शरीर की मांसपेशियों को कठोर और सख्त बना देते हैं, और बाद में, विशेषकर वृद्धावस्था में कष्ट का कारण बनते हैं। वृद्धावस्था में दंड-बैठक करनेवाला पहलवान अशक्त होने के कारण यदि व्यायाम करना छोड़ देता है तो उसे थोड़ी दूर चलना भी कठिन व दुष्कर हो जाता है। थोड़ा-सा परिश्रम करने पर भी उसके शरीर का प्रत्येक अंग दुखने लगता है। इसके विपरीत यौगिक व्यायाम जहाँ शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाता है, वहाँ शरीर के प्रत्येक अंग को लचकीला तथा फुर्तीला बना देता है, जोकि स्वस्थ शरीर का पहला तथा मुख्य चिह्न है। इसीलिए योग-ग्रन्थों में लिखा है—

कुर्यात् सदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम् ।

अर्थात्—स्वास्थ्य-प्रेमी पुरुष को सदा आसनों का अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि योगासन शरीर में स्थिरता, आरोग्यता तथा अंगों में हल्कापन और फुर्तीलापन लाते हैं।

(३) दण्ड-बैठक आदि व्यायाम मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क को संकुचित तथा ठस्स (Dull) बना देते हैं। इसीलिए कई शरीर-विशेषज्ञों का कहना है कि दण्ड-बैठक करनेवाले मनुष्य का मस्तिष्क तथा बुद्धि भी ठस्स

तथा कमजोर हो जाती है। यौगिक व्यायाम से हृदय और मस्तिष्क पूर्ण विकास को प्राप्त होकर अधिक बलवान् तथा कार्यक्षम हो जाते हैं, और बुद्धि सूक्ष्म तथा कुशाग्र बन जाती है। इसीलिए छात्रों तथा बौद्धिक कार्य करनेवालों के लिए तो यौगिक व्यायाम अमृत के समान है।

(४) इतर व्यायामों से जहाँ मनुष्य का श्वास उखड़ जाता है, तथा हृदय धड़कने लगता है, परिणामस्वरूप वह व्यायामकर्त्ता थोड़े-से परिश्रम से हाँफने लगता है, वहाँ यौगिक व्यायाम श्वास को स्थिर तथा शांत बनाता है। श्वास का अपनी असली हालत में स्थिर तथा शांत रहना ही आरोग्यता की निशानी है। यौगिक व्यायाम चाहे कितना भी अधिक क्यों न किया जाय, उससे न तो श्वास ही उखड़ता है और न ही धड़कन बेकाबू होती है।

(५) इतर व्यायामों को प्रायः एक विशेष अवस्था वाला मनुष्य ही कर सकता है, तथा उससे लाभ उठा सकता है। परन्तु यौगिक व्यायाम को प्रत्येक अवस्था का मनुष्य चाहे वह बालक हो, चाहे युवा अथवा वृद्ध, सुगमता से कर सकता है और उससे पूर्ण लाभ उठा सकता है। योग-ग्रन्थों में कहा है—

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्यधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः॥

(६) यौगिक व्यायाम को केवल पुरुष ही नहीं, अपितु स्त्रियाँ तथा बालिकाएँ भी सुगमतापूर्वक कर सकती हैं, और उससे पूर्ण लाभ उठाकर अपने शरीर को स्वस्थ और सुडौल बना सकती हैं। पाठक इसी पुस्तक में बालिकाओं के चित्र देखेंगे।

(७) इतर व्यायामों से शरीर को तो कुछ लाभ पहुँचता है, किन्तु मनुष्य के चरित्र पर उसका कुछ उत्तम प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु यौगिक व्यायाम का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी है कि वह जहाँ मनुष्य को स्वस्थ और बलवान् बनाता है, वहाँ उसे चरित्रवान् भी बनाता है। यौगिक व्यायाम के अभ्यासी की नशा आदि बुरी आदतें शनैः-शनैः स्वयं ही छूट जाती हैं और वह ऊँचे चरित्र का स्वामी बन जाता है।

यौगिक आसनों, क्रियाओं एवं प्राणायाम से शरीर ही स्वस्थ व नीरोग नहीं बनता, बल्कि मानसिक और नैतिक शक्ति का विकास भी होता है। योगशास्त्र को भारतीय मानसशास्त्र कहें तो अनुचित न होगा। चित्त की चिकित्सा करनेवाले योगशास्त्र को आधुनिक युग में मानसशास्त्र कहना

अधिक उपयुक्त है। चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है। चित्त की वृत्तियों के निरोध करने से मन स्थिर होता है और मन के स्थिर होने से बुद्धि बलवती होकर सत्यासत्य का निर्णय करने में सफल होती है। चित्त की स्थिरता में सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है। सत्त्वगुण से मस्तिष्क बलवान् बनता है। मस्तिष्क के अंगों के बलवान् व कार्यक्षम रहने से मानसिक शक्ति का विकास होता है और यह सब लाभ योग के आसन, प्राणायाम आदि क्रियाओं से बड़ी आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

(८) आसनों द्वारा शरीर को नीरोग और कार्यक्षम रखा जा सकता है। शरीर जिन सेलों से बना हुआ है वे रात-दिन काम करने से नष्ट होते जाते हैं, और आहार तथा आराम से नए सेलों का निर्माण होता है। आहार को अच्छी तरह से पचाने के लिए श्रम की आवश्यकता रहती है। आधुनिक समय में विविध प्रकार के व्यायाम और खेल के रूप में शारीरिक श्रम किया जाता है। इन व्यायाम और खेलकूदों में शारीरिक शक्ति खर्च होती है और इसके बाद नई शक्ति प्राप्त होती है। आसनों के व्यायाम में यह विशेषता है कि इनको करने से जो शक्ति खर्च की जाती है, वह दूसरे व्यायामों की अपेक्षा यौगिक व्यायाम से अधिक मात्रा में वापस प्राप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि अधिकांश आसन लेटकर या बैठकर किए जाते हैं और मांसपेशियों को अल्प मात्रा में ही श्रम करना पड़ता है।

(९) प्रत्येक अंग को शुद्ध रक्त पहुँचाने के लिए शरीर में रक्त-परिभ्रमण का कार्य स्वाभाविक रूप से होता रहता है, परन्तु रक्त-परिभ्रमण शुद्ध व सही रूप से करने के लिए सम्बन्धित अंगों को सजग रखने की आवश्यकता रहती है, इसलिए व्यायाम द्वारा उन्हें सजग रखा जाता है। इससे उन अंगों को कुछ श्रम करना पड़ता है, परन्तु आसनों में ऐसी व्यवस्था की गई है कि रक्त-परिभ्रमण-कार्य में प्रवृत्त अंगों को श्रम न करना पड़े और रक्त-परिभ्रमण का कार्य स्वाभाविक रूप से चलता रहे। उदाहरणार्थ, शीर्षासन और सर्वांग आसनों द्वारा शुद्ध रक्त नलिकाओं में से हृदय की ओर आसानी से चला जाता है। इसमें रक्त-नलिकाओं को श्रम नहीं करना पड़ता जिससे वे बलवती रहती हैं और अपने कार्य को सुचारु रूप से करने में समर्थ रहती हैं। श्वास को रोकने और छोड़ने के विधिपूर्वक तरीकों से भी रक्त-परिभ्रमण-कार्य में सुगमता रहती है। मस्तिष्क के अशुद्ध रक्त को हृदय

की ओर ले-जाने और वहाँ शुद्ध रक्त पहुँचाने की स्वाभाविक क्रिया प्रबल करने के लिए शीर्षासन और सर्वांग आसन उत्तम साधन हैं। यह कार्य गुरुत्वाकर्षण के द्वारा हो जाता है। शरीर में कार्बाम्ल वायु की मात्रा कम परिमाण में रखने के लिए और प्राणवायु की अधिक मात्रा का संचय करने के लिए प्राणायाम भी एक अचूक साधन है। प्राण-वायु से रक्त शुद्ध होकर शरीर नीरोग और कार्यक्षम रहता है। शरीर में स्फूर्ति और रक्त की शुद्धता प्राण-वायु की उचित मात्रा से आती है। इस प्रकार रक्त को शुद्ध करने और प्राण-वायु को उचित मात्रा में संचित करने के लिए आसन और प्राणायाम ही सस्ते साधन हैं।

(१०) वर्तमान समय में अप्राकृतिक रहन-सहन व अशुद्ध आहार के कारण पाचन-संस्थान के अंग समय-समय पर अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं। उन अंगों को क्रियाशील एवं कार्यक्षम रखने के लिए तथा उनकी रोग-प्रतिबंधक शक्ति बढ़ाने के लिए उनकी मालिश आवश्यक है। मालिश करने से वे अपना कार्य सुगमता से कर सकते हैं, तथा बलिष्ठ रहते हैं। उड्डियान-बन्ध व न्यौली-क्रिया से उन अंगों की स्वाभाविक रूप से मालिश हो जाती है। इन क्रियाओं और आसनों से प्रारम्भिक शक्ति कम खर्च होती है और इसके बदले उनसे विपुल मात्रा में शक्ति प्राप्त हो जाती है।

(११) मानव-शरीर में अनेक ग्रन्थियाँ हैं। स्रावक ग्रन्थियाँ शरीर को स्वस्थ व नीरोग रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। गले की ग्रन्थि तथा अन्य ग्रन्थियों का रस रक्त में मिल जाता है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इन ग्रन्थियों के उचित स्राव से ही मनुष्य स्वस्थ व शक्तिशाली रह सकता है। गलग्रन्थी से निकलनेवाले रस के पर्याप्त मात्रा में न होने से बालकों का पूर्ण विकास नहीं हो सकता और युवकों के असमय में ही केश गिरने लगते हैं, तथा शरीर में ताजगी नहीं रहती। इस ग्रन्थि को सजग करके पर्याप्त मात्रा में रस देने में समर्थ बनाने के लिए नित्यप्रति सर्वांग आसन और मत्स्यासन करना चाहिए। इन आसनों से यह ग्रन्थि अपना कार्य सुचारु रूपेण करने में समर्थ होगी। यकृत, प्लीहा आदि ग्रन्थियों से उचित रस-स्राव के लिए उत्तानपादासन, पश्चिमोत्तानासन और हलासन अत्यंत उपयोगी हैं। इन ग्रन्थियों तथा पाचन-संस्थान के अंगों को सक्रिय करने से आहार का पूरा पाचन होकर रस, रक्त आदि सातों धातुओं की पर्याप्त मात्रा में

उत्पत्ति होती है जिससे शरीर सदा स्वस्थ तथा नीरोग रहता है।

(१२) बर्नार मैककैडन तथा के०ए० कन्युदसेन, इन विदेशी विद्वानों ने अपने अनेक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया है कि व्यक्ति का तारुण्य और दीर्घायु रीढ़ की हड्डी की आरोग्यता पर निर्भर है। इसकी आरोग्यता से शरीर में चैतन्य और शक्ति प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, मन सदा शान्त और उत्साही रहता है। रीढ़ की हड्डी को स्वस्थ और कार्यक्षम रखने के लिए शीर्षासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन आदि उपयोगी हैं। इन आसनों से रीढ़ की हड्डियों के टुकड़े मजबूत रहते हैं और उनके बीच का चिकना और खुरदरा पदार्थ पर्याप्त मात्रा में बना रहता है। इस सम्बन्ध में श्री कन्युदसेन महोदय ने सन् १९३६ में बर्लिन ओलिम्पिक खेलकूद के अवसर पर भारतीय व्यायाम-प्रणाली का प्रदर्शन करनेवाली टीम के खिलाड़ियों के पृष्ठवंश की जाँच करने के बाद निम्नलिखित उद्गार प्रकट किए थे—

"I was not dis-appointed in my expectation of the 23 Indians I examined in 1935, 17 had faultless back, 5 had back with only small deficiencies, only one was poor. If conclusion may be drawn from the few cases examined by me, I must say that Indians stand very high as regards fine development of trunk and spine. In Berlin I examined gymnasts from many countries but none of them reached the same standard as the Indians."

(१३) यौगिक व्यायाम व्यक्तित्व के विकास का प्रमुख साधन है। प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए सुडौल, गठीला और ऊँचा शरीर आवश्यक है। यौगिक व्यायाम से शरीर सुडौल एवं बलिष्ठ तो बनता ही है, साथ-साथ शरीर की ऊँचाई भी बढ़ती है। ऊँचाई का आधार तरुणास्थि है। अस्थियाँ भी दूसरे अवयवों की तरह ही निर्मित हैं। इनमें मज्जातंतु, रक्तवाहक नलिकाएँ रहती हैं। इन हड्डियों पर एक तंतुमय आवरण रहता है। इस आवरण के लिए पर्याप्त रक्त की प्राप्ति होती रहती है और इसके सहारे अस्थियों का विकास होता है। टाँग की हड्डियों व रीढ़ की हड्डियों पर ही व्यक्ति की ऊँचाई का विकास निर्भर है। मूलतः हमारी रीढ़ ३२ टुकड़ों से बनी हुई है, परन्तु देखा गया है कि विकसित युवक की रीढ़ में २६ टुकड़े ही पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि कुछ टुकड़े मिलकर एक हो जाते हैं।

दो टुकड़ों के बीच तरुणास्थि का एक टुकड़ा रहता है जोकि अन्य अस्थियों की रक्षा करता है। हड्डियों के ढाँचे की ऊँचाई पर दो बातों का सीधा प्रभाव पड़ता है—दबाव और खिंचाव। गर्दन की हड्डियों के विकास का क्रम यह है कि वह नीचे की तरफ स्वाभाविक रूप से बढ़ती रहती है। रीढ़ की हड्डियों का ऊपर से आरम्भ गर्दन से होता है और वह कमर तक पहुँचता है। शरीर-शास्त्र के अनुसार ऊपर की हड्डियाँ दूसरे टुकड़े से कमर की हड्डियों के पाँचवें टुकड़े तक नीचे की ओर धीरे-धीरे बढ़ती हैं। शरीर का वजन १ इंच के लिए २ पौंड मान लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर की अस्थियों के टुकड़ों को नीचे के टुकड़ों से कम वजन खींचना पड़ता है। इस वजन के दबाव के कारण टुकड़ों का फैलाव होता है और यह फैलाव नीचे की ओर होता है; इससे नीचे के अंगों की ऊँचाई बढ़ती है। इस कार्य में शीर्षासन, सर्वांगासन उपयोगी हैं। शीर्षासन में सारे शरीर का भार खोपड़ी पर रहता है, इसलिए दबाव अधिक मात्रा में होता है। रीढ़ की हड्डी के विविध टुकड़ों को पहले से उल्टे क्रम में दबाव सहना पड़ता है, अर्थात् सीधे शरीर में जिन टुकड़ों पर कम दबाव पड़ता था, शीर्षासन की स्थिति में उन टुकड़ों पर ज्यादा दबाव पड़ने लगता है। इसी प्रकार उड्डियानबन्ध में भी पेट के स्नायु और पसलियों को पीछे दबाया जाता है और सिर को ऊपर की तरफ खींचा जाता है। ऐसा करने से अंतर्गोल स्थिति प्राप्त होती है। पीछे और आगे की तरफ से रीढ़ की हड्डी के टुकड़ों को थामे रखनेवाले सब स्नायु उन्हें ऊपर खींचते हैं, इससे उनमें कुछ गति उत्पन्न होती है। दबाव और खिंचाव से इस क्रिया में सहायता मिलती है। मेयर के सिद्धान्त का भी यही आधार है। जीगर महोदय ने 'प्रॉब्लम्स ऑफ नेचर' में ऊँचाई-वृद्धि के लिए इसी सिद्धान्त की पुष्टि की है। खिंचाव देने के लिए पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन और हलासन अच्छे साधन हैं। आसनों और क्रियाओं से साधारण व्यक्ति अपनी ऊँचाई-वृद्धि के साथ-साथ अन्य शारीरिक अंगों को विकसित कर उन्हें कार्यक्षम व नीरोग स्थिति में चिरकाल तक रख सकता है।

आसनों से शरीर के आंतरिक अंग, ग्रन्थियाँ, नस-नाड़ियाँ आदि सजग रहते हैं और वे अपना कार्य सफलतापूर्वक करते हैं, तथा विजातीय द्रव्यों को यथासमय बाहर निकालकर रक्त को शुद्ध रखते हैं। शुद्ध रक्त में जीवन होता है और यह जीवन-रूपी शुद्ध रक्त आसनों द्वारा शरीर के सम्पूर्ण अंगों

तक पहुँचाया जा सकता है। प्राणवायु को उचित मात्रा में संचय कर दूषित वायु को बाहर निकालने के लिए फेफड़ों को आसन और प्राणायाम द्वारा मजबूत और क्रियाशील रखा जा सकता है। पाचन-संस्थान के सफलतापूर्वक कार्य करने से व्यक्ति पूर्णतया स्वस्थ रहता है। नित्य-प्रति आसनों का व्यायाम, प्राणायाम व उड्डियान तथा न्यौली-क्रिया करने से मल-विसर्जन स्वाभाविक रूप से होता है, यहाँ तक कि मलावरोध की बीमारी भी ठीक हो जाती है। इसलिए आरोग्यता को स्थिर रखने के लिए आसन अत्यन्त उपयोगी साधन हैं।

(१४) शरीर के रोगों के प्रतिकार के लिए भी आसन अचूक साधन हैं। रोग क्यों होते हैं, इस पर विचार करने से पता लगता है कि विजातीय द्रव्यों के बढ़ जाने से शरीर के अंग उनको बाहर निकालने में असमर्थ हो जाते हैं। संसार की सभी चिकित्सा-प्रणालियाँ मलावरोध को सब रोगों का मूल कारण मानती हैं। जन-साधारण के लिए सर्वांगासन, मत्स्यासन, उत्तानपादासन, धनुरासन, शलभासन, हलासन, पद्मासन, ताड़ासन और न्यौलीक्रिया भी आसानी से थोड़े दिनों के अभ्यास से की जा सकती है। जटिल प्राणायाम के झगड़ों में न पड़कर साधारण श्वास को भरना और रोकना, फिर जिस गति से श्वास को भीतर लिया है उससे धीमी गति से श्वास को बाहर निकालना आदि यौगिक आसन, क्रियाएँ व प्राणायाम से हम अपने शरीर में रोग-प्रतिबंधक शक्ति को बढ़ाकर रोगों का प्रतिकार कर सकते हैं। इसमें किसी प्रकार की भी शंका को स्थान नहीं है। यह बात तो अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि अनेक रोगों को ठीक करने के लिए जल-चिकित्सा अथवा प्राकृतिक चिकित्सा के साथ आसनों का प्रयोग किया जाय तो वे निश्चित ठीक हो सकते हैं। युवकों की आम बीमारी स्वप्नदोष, मोटापा आदि को आसनों द्वारा, आहार में परिवर्तन करके, ठीक किया जा सकता है। अनेक मोटापे के रोगियों को आसनों के व्यायाम से लाभ हुआ है। पाचन-संस्थान, रक्त-संचालन, मल-विसर्जन, स्नायु-संस्थान आदि के अंगों को कार्यक्षम रखने के लिए आसन अत्यन्त प्रभावशाली साधन हैं। बालकों की शारीरिक विकृतियाँ तथा गोल कन्धे, सपाट छाती, चपटे पैर आदि को आसनों के व्यायाम से ठीक किया जा सकता है।

पाठक हमारे उपर्युक्त लेख से यह न समझें कि हम यौगिक व्यायाम से

इतर व्यायामों को बुरा कह रहे हैं, या उनका खण्डन कर रहे हैं। किन्तु यौगिक व्यायाम इतर व्यायमों से अधिक उपयोगी तथा शरीर के लिए लाभप्रद हैं, यही हमारे लिखने का आशय है। जितने अंशों में इतर व्यायामों से लाभ होता है, वह तो होता ही है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। यदि यौगिक व्यायाम के साथ-साथ इतर व्यायाम भी किए जाएँ तो उनसे जो लाभ होते हैं वे तो होंगे ही, किन्तु उनसे उत्पन्न होनेवाली हानियों की सम्भावना भी न रहेगी, अत: हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम अपने शरीर को नीरोग, स्वस्थ तथा बलवान् बनाए रखने के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक यौगिक व्यायाम अवश्य किया करें।

यहाँ तक हमने दिनचर्या के सम्बन्ध में लिखा। दिनचर्या के साथ-साथ स्वास्थ्य-प्रेमी मनुष्य को अपनी मासिक-चर्या अर्थात् किस मास में कैसा व्यवहार करना—इस पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर एक पंजाबी लोकोक्ति लिख देना ही पर्याप्त समझते हैं जोकि निम्न प्रकार हैं—

चेतर विसाख भवें, जेठ हाड़ सोवें।
सावन भादों न्हावें, अस्सू कत्ते थोड़ा खावें।
मग्घर पोह रूँ हंडावें, माघ फागन तेल लगावें।
तां वैद दे घर कदे ना जावें॥

अर्थात्—"हे मनुष्य! यदि तू चैत्र और वैशाख मास में भ्रमण करे, यदि दिन में सोने की इच्छा हो तो ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में ही सोवे, सावन और भादों में बरसात के मौसम में वर्षा में खड़ा होकर नहावे, आश्विन और कार्तिक मास में थोड़ा खावे, मार्गशीष और पौष में रुईदार (गर्म) वस्त्र पहने, माघ और फाल्गुन में तेल की मालिश करे तो तू निश्चित रूप से कभी भी वैद्य के घर न जाएगा।" महर्षि चरक का आहार-व्यवहार के सम्बन्ध में निम्न श्लोक बड़े महत्त्व का है—

नित्यं हिताहारविहार-सेवी, समीक्ष्यकारी बिषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान् अष्टोपसेवो च भवत्यरोगः॥

शरीर को नीरोग तथा बलवान् बनाने का तीसरा साधन है—

आचार

अर्थात्—सत्-आचार। उत्तम आहार और योग्य व्यवहार के द्वारा जिस बल-वीर्य की हमारे शरीर में वृद्धि हुई है, उस बल-वीर्य की, सत् अर्थात् सत्ता

को अपने शरीर में सुरक्षित तथा सदा स्थिर बनाए रखने के लिए जो आचार अर्थात् आचरण किया जाता है, उसका नाम है सदाचार। हमने आहार आदि के द्वारा अपने शरीर में बल-वीर्य की वृद्धि तो कर ली, किन्तु यदि उस बल-वीर्य को हम अपने शरीर में सुरक्षित न रख सकें अर्थात् बुरी सोहबत में फँसकर अनेक अप्राकृतिक कुटेवों द्वारा नष्ट कर दें, तो भी हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान् नहीं बन सकता। जैसाकि एक मनुष्य की सौ रुपए की आय है और वह सौ रुपया ही व्यय कर दे तो वह कदापि धनवान् नहीं बन सकता, अथवा जैसे कि एक तालाब में पानी आने का भी मार्ग हो और जाने का भी, तो वह तालाब कभी भी पानी से भरा नहीं रह सकता। इसी प्रकार हमारे शरीर में बल-वीर्य के प्राप्त होने का मार्ग होते हुए भी यदि हमने उसके खारिज करने का भी अपनी कुटेवों द्वारा मार्ग बना लिया है, तो भी हमारा शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग नहीं बन सकता। अत: आवश्यकता है कि हम अपने शरीर में से बल-वीर्य के निकलने के मार्ग को रोकें, और उसका एकमात्र उपाय है—

सदाचार

(१) ब्रह्मचर्य-पालन। (२) उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय। (३) सत् पुरुषों का संग। (४) ईश्वर-भक्ति। (५) प्राणायाम (६) परोपकार। (७) सादापन। (८) उच्च तथा पवित्र विचार। (९) पवित्रता। (१०) प्रसन्नता। (११) आत्म-निरीक्षण आदि गुणों का नाम ही सदाचार है।

इनके पालन से मनुष्य संयमी तथा सदाचारी बन जाता है, और उसके विचार हमेशा उच्च तथा पवित्र रहते हैं; उसके मन में गन्दे तथा कलुषित विचारों को स्थान नहीं मिलता। जब मनुष्य के विचार कलुषित तथा गन्दे नहीं होते तो वह उनके वशीभूत होकर कोई भी ऐसा कुकर्म नहीं करता, जिससे उसके शारीरिक तथा मानसिक व आत्मिक बल का ह्रास हो। इसीलिए हमारे ऋषियों ने आचार को परम धर्म[१] के नाम से पुकारा है, क्योंकि आचार ही मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल के धारण करने का परम साधन है। जीवन को उच्च, महान् तथा सुखमय बनाने की क्षमता केवल

---

१. आचारः परमो धर्मः।

सदाचार में ही है। अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम मन, वचन तथा कर्म से सदाचारमय जीवन का निर्माण करें। जो मनुष्य अपने जीवन में सदाचार को धारण नहीं करता, वह जीवन के सुखों अर्थात् स्वास्थ्य, सौन्दर्य, दीर्घ आयु तथा यौवन के अमृत का कदापि आस्वादन नहीं कर सकता।

इसीलिए महर्षि मन ने लिखा है—

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिता प्रजा।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥

अर्थात्—"मनुष्य सदाचार से ही दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। आचार से मनचाही सुन्दर तथा सुडौल संतान को प्राप्त करता है। आचार से अक्षय धन अर्थात् आत्मधन, विद्याधन तथा भौतिक धन की भी प्राप्ति होती है। आचार मनुष्य के अन्दर से सभी कुलक्षणों तथा कुविचारों को दूर कर देता है।"

एक स्थान पर महाराज मनु ने लिखा है—

सदाचारान्नरः शतवर्षाणि जीवति।

अर्थात्—सदाचार का पालन करनेवाला मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है।

संसार में वे ही महापुरुष कहलाते हैं कि जिन्होंने सदाचारी बनकर अपने मानसिक विकारों पर पूर्ण विजय प्राप्त की है। जो अपने विचारों और भावनाओं पर शासन करते हैं, जो चुम्बक बनकर अपने संस्कारों और संकल्पों के अनुसार अभीष्ट पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। जिन्हें अपने शरीर और मानसिक वृत्तियों पर पूर्ण अधिकार है और जो बाह्य क्षणिक पदार्थों में आनन्द ढूँढने की बजाय अपने अन्तर्मन की सृष्टि में ही आनन्द प्राप्त करते हैं, उनके अन्तर्मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार, भय, शंका और लज्जा आदि विकल्प, दरिद्रता, रोग और क्लेश आदि की भयजनक कल्पनाएँ, ईर्ष्या व द्वेष आदि के दुर्भाव और अशान्त करनेवाली चित्तवृत्तियाँ स्थान ही नहीं पातीं। आसुरी वृत्तियाँ तथा संस्कार दुर्बल होकर मृतप्राय पड़े रहते हैं। जैसे हम अपने घरों में केवल अनुकूल मित्रों, अथवा प्रतिष्ठित महानुभावों को ही निमन्त्रण देते हैं, ठीक उसी प्रकार वे अन्तर्मन में सत्कर्मों के जन्मदाता शिव-संकल्पों को ही निमन्त्रण देते हैं और वेद के शब्दों में प्रभु से सदैव यही प्रार्थना करते हैं—

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

प्रभो ! मेरा मन सदैव कल्याणकारी संकल्पोंवाला हो।

महर्षि चरक ने अपने 'चरक' ग्रन्थ में कतिपय अत्यन्त उपयोगी, महत्त्वपूर्ण मोटे-मोटे आचार और व्यवहार के नियम सूत्ररूप में दिए हैं। हम उन्हें भी प्रेमी पाठकों के लाभार्थ नीचे दे रहे हैं। आशा है पाठक इन्हें अपने आचार और व्यवहार में परिणत कर अवश्य लाभ उठाएँगे।

निषेधात्मक आचार

नानृतं ब्रूयात्, नान्यस्त्रियमभिलषेत्, नान्यश्रियम्, न वैरं रोचयेत्, न कुर्यात् पापम्, नान्यदोषान् ब्रूयात्, नान्यरहस्यमागमयेत्, नाऽधार्मिकः स्यात्, न नरेन्द्रविद्विष्टेन सहासीत्, नोन्मत्तैर्न पतितैर्न भ्रूणहन्तृभिर्न क्षुद्रैर्न दुष्टैः, न पापवृत्तान् स्त्री, मित्र, भृत्यान् भजेत्। नोन्मत्तैर्विरुध्येत्। नावरानुपासीत्। न जिह्मं रोचयेत्, नानार्यमाश्रयेत्, न साहसाति स्वप्न-प्रजागर-स्नान-पानाशना-न्यासेवेत। न सन्तो न गुरून् परिवदेत्, नाति समयं भिन्द्यात्, न बाल, वृद्ध, लुब्ध, मूर्ख, क्लिष्ट, क्लीबैः सह सख्यं कुर्यात्, न मद्य, द्यूत, वेश्याप्रसंगरुचिः स्यात्, न गुह्यं विवृणयात्, नाहंमानी स्यात्, न चाति ब्रूयात्, नाधीरो नाऽसुस्थित सत्त्वः स्यात्, नैकः सुखी, न सर्व विश्रम्भी, न सर्वाभिषङ्गी, न कार्यकाल-मतिपातयेत्, नापरीक्षितमती निर्विशेत्, न बुद्धीन्द्रियाणामति भारमादध्यात्, न चातिदीर्घसूत्री स्यात्, न सिद्धौ, उत्सेकं गच्छेत्, नाऽसिद्धौ दैन्यम्, प्रकृतिमभीक्ष्णमास्मेरत्, न वीर्यं जह्यात् नापवादमनुस्मरेत्॥ चरक सूत्र-स्थान अ० ८॥

अर्थ—१. कभी भी असत्य न बोले, २. परस्त्री तथा परधन की अभिलाषा न करे, ३. किसी से भी शत्रुता न रखे, ४. कभी पाप-कर्म **न** करे, ५. दूसरों के दोषों तथा अवगुणों का बखान न करे, ६. किसी की भी गुप्त बात को प्रकट न करे, ७. कभी भी अधर्म का आचरण न करे, ८. राजद्रोही का साथी न बने, ९. उन्मत्त, नीच, भ्रूणहत्यारे, क्षुद्र-स्वभाववाले तथा दुष्ट मनुष्य का संग **न** करे, १०. नीच स्वभाववाले, अपनी स्त्री, मित्र तथा नौकर का साथ भी अधिक न करे, ११. श्रेष्ठ स्वभाववाले धर्मात्मा पुरुषों से विरोध न करे, १२. नीचों का संग छोड़ दे, १३. कुटिलाचरण को न करे, १४. कभी अनार्य पुरुष का आश्रय **न** ले, १५. अति साहस, अति निद्रा, अति जागरण, अति स्नान, अति पान तथा अति भोजन न करे, १६. सत्पुरुषों और गुरुजनों की

निन्दा न करे, १७. समय तथा मर्यादा का उल्लंघन न करे, १८. बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, क्लिष्ट स्वभाव और नपुंसक के साथ मित्रता न करे, १९. शराब, जुआ और वेश्या-गमन में रुचि न रखे, अर्थात् इनसे सदा दूर रहे, २०. अपनी गोपनीय बातों को प्रकट न करे, २१. अभिमानी न बने, २२. ज्यादा बकवास न करे, २३. अधीर तथा अस्थिर-चित्त न हो, २४. केवल अपना ही सुख न चाहे, किन्तु सबके सुख की कामना करे, २५. हर एक पर विश्वास न करे, २६. और न ही हर एक को शंका की दृष्टि से देखे, २७. किसी भी कार्य को आगे के लिए न छोड़े, २८. अपरिचित जल, स्थल आदि में प्रवेश न करे, २९. बुद्धि, मन, तथा इन्द्रियों से अधिक परिश्रम न ले, ३०. दीर्घसूत्री न बने, ३१. सफलता में अभिमान, तथा असफलताओं में दीन न बने, ३२. अपने गुण-कर्म-स्वभाव को कभी न भूले, अर्थात् उसके विपरीत आचरण न करे, ३३. दुर्व्यसनों में फँसकर अपने वीर्य को नष्ट न करे, ३४. अपनी निन्दा व अपमान का स्मरण न करे।

विधिपरक आचार

ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दान, मैत्री, कारुण्य, हर्षोत्प्रेक्षा प्रशम परश्च स्यात्, द्वौ कालौ उपस्पृशेत्, मलायतनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्यमादध्यात्, त्रि पक्षस्य केश, श्मश्रु, लोम, नखान् संहारयेत्, नित्यमुपहतवासाः सुमनः सुगन्धिः स्यात्, साधुवेशः स्यात्, मुख, श्रोत्र, घ्राण, पाद-तैलर्नित्यः स्यात्, पूर्वाभिलाषी, सुमुखः, दुर्गेष्वभ्युपत्ता, होता, दाता, अतिथीनां पूजकः, काले हित-मित-मधुराभिलाषी, वश्यात्मा, धर्मात्मा, हेतावीर्ष्युः, फले नेर्ष्युः, निश्चिन्तः, निर्भीकः, ह्रीमान्, धीमान्, महोत्साहः, दक्ष, क्षमावान्, मङ्गलाचारशील, प्राक्, श्रमाद् व्यायामवर्जी स्यात्, प्राणिषु बन्धुभूतश्च स्यात्, क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वासयिता, दीनानामभ्युपत्ता, सत्यसंधः, सामपधानः, परपरुषवचन सहिष्णुः, अमर्षघ्नः, प्रशमगुणदर्शी, रागद्वेषहेतूनां हंता च स्यात् ॥ चरक सूत्र-स्थान, अ० ८ ॥

अर्थ—१. सदा ब्रह्मचर्य का पालन करे, २. ज्ञानी-दानी तथा परोपकारी बने, ३. सब पर करुणा करे। ४. सदा प्रसन्न रहे। ५. व्यर्थ का वाद-विवाद न करे। ६. अपनी इन्द्रियों तथा मन को शांत और अपने वश में रखे। ७. सायं-प्रातः दोनों समय स्नान करे। ८. मल-मूत्र आदि स्थानों तथा पाँवों को सदा

साफ रखे। ९. एक पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिन में कम-से-कम तीन बार सिर के बाल, दाढ़ी, मूँछ तथा गुह्य स्थानों के बालों को अवश्य साफ करे, और नखों को कटवाए। १०. वस्त्रों को स्वच्छ रखे। ११. मन प्रसन्न रखे। १२. माला आदि सुगन्धित वस्तुओं को धारण करे। १३. साधु-वेशी बने। १४. अपने सिर, कान, नासिका तथा पाँवों में सदा तेल लगाया और डाला करे। १५. आगत व्यक्ति का पहले स्वयं अभिवादन करे। १६. सदा प्रसन्नवदन रहे। १७. दुःखियों तथा आपद्-ग्रस्तों की सहायता करे। १८. सदा अग्निहोत्र आदि यज्ञों को किया करे। १९. दानी हो। २०. सदा अतिथि, विद्वान्, सन्त, महात्मा, संन्यासी जनों का सत्कार करे। २१. समयानुसार हितकर, परिमित, मधुर तथा सार्थक वचन बोले। २२. अपने मन, अन्तःकरण तथा आत्मा को वश में रखे। २३. धर्मात्मा बने। २४. फलासक्ति को छोड़कर सदा पुरुषार्थ करे। २५. चिन्ता-रहित, निर्भय, लज्जावान्, बुद्धिमान्, उत्साही, दक्ष, क्षमाशील, कल्याण-मार्गाभिगामी बने। २६. बहुत थकानेवाला अति व्यायाम न करे। २७. सब प्राणियों के साथ मित्र तथा बन्धुओं के समान व्यवहार करे। २८. क्रोधियों को प्रसन्न करनेवाला, भयभीतों को आश्वासन देनेवाला, दीनों की रक्षा करनेवाला बने। २९. सदा सत्य का व्यवहार करे। ३०. शांत स्वभाव बने। ३१. दूसरों के कठोर वचनों को सहन करे। ३२. क्रोधी न बने। ३३. शांति आदि उत्तम गुणों को धारण करे। ३४. अपने अन्दर से राग-द्वेष को दूर कर दे।

आशा है, पाठक अपने शरीर को हमेशा नीरोग, बलवान् तथा स्वस्थ बनाए रखने के लिए उपर्युक्त साधनों को अवश्य अपने जीवन में कार्यान्वित करेंगे।

मानसिक शक्ति (Will Power)

हमने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने के मुख्य साधन आहार, व्यवहार और आचार का विशद वर्णन पूर्व-पृष्ठों में कर दिया है। किन्तु, इन साधनों के होते हुए भी यदि हम अपनी मानसिक शक्ति (Will power) से काम नहीं लेते तो भी हम स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग नहीं बन सकते। यदि हम उपर्युक्त साधनों को करते हुए भी अपने को सदा कमजोर, बीमार और शक्तिहीन ही समझते रहेंगे, तो हम कदापि उपर्युक्त साधनों से उचित लाभ नहीं उठा सकते। अतः हमें अपने अन्दर सदा स्वस्थ, बलवान्

और नीरोग होने की प्रबल-भावना जागृत करनी चाहिए। क्योंकि मन शरीर का राजा है, अतः मन के गिरने, हतोत्साह हो जाने से हमारा शरीर भी गिर जाता है। मनुष्य अपने को बलवान् समझने से बलवान्, तथा कमजोर समझने से कमजोर हो जाता है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। याद रक्खो! तुम हमेशा जो कुछ भी सोचते रहते हो एक दिन वैसे ही बन जाओगे। मन अपने अन्दर पीड़ा भी उत्पन्न कर सकता है और उसे शांत भी कर सकता है; बीमार न होता हुआ भी बीमारी को जन्म दे सकता है, और उसे हटा भी सकता है। जब हम अपने मन तथा हृदय को हीन विचारों के द्वारा निर्बल बना लिया करते हैं, तब हृदय तथा मन की निर्बलता के कारण हमारे स्वास्थ्यवर्धक श्वेत परमाणु निर्बल हो जाते हैं तथा बाहर के रोगोत्पादक कीटाणुओं का मुकाबला नहीं कर सकते। परिणामतः हम वास्तव में बीमार न होते हुए भी बीमार पड़ जाते हैं और हमें नाना प्रकार के रोगों का भय बना रहता है। अतः अपने अन्दर से दीन, हीन तथा मलीन विचारों को दूर कर दो और मन को सदा प्रसन्न रक्खो। आपत्ति तथा संकट में भी हँसो और खूब हँसो, और हँसते-हँसते प्रभु से कहो—

राजी हैं हम उसी में जिस में तेरी रजा है।
यहाँ यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है॥

और जैसा भी दिन गुजरे उसके लिए प्रभु का धन्यवाद करो। हँसना शरीर-स्वास्थ्य के लिए भी बहुत लाभदायक है। प्रो० 'बेन जान्सन' लिखते हैं—हँसो, शरीर से पुष्ट और बलवान् बनोगे। शेक्सपियर लिखते हैं—'हँसो, दीर्घकाल तक जिओगे।' इसलिए जब भी कभी दुःख, शोक और चिन्ताओं की घटाएँ छाने लगें उस समय जरा मुस्करा दो। किसी उर्दू कवि ने कितना सुन्दर लिखा है—

जब दिल पे छा रही हों घटाएँ मलाल की।
उस वक्त जरा दिल की तरफ मुस्करा के देख॥

"हृदय की कली खिलकर जो स्वाभाविक हँसी आती है, उसके ही साथ आयु का एक दिन बढ़ जाता है।"—'स्टर्न'।

अंग्रेजी की एक कहावत भी है—

LAUGH THREE TIMES A DAY
KEEP THE DOCTOR AWAY

अर्थात् दिन में तीन बार खूब ठट्ठा मारकर हँसो और डॉक्टर को दूर रखो। याद रखो—सदा प्रसन्न रहनेवाला, चिन्ता तथा क्रोध न करनेवाला मनुष्य स्वस्थ, बलवान् तथा दीर्घ आयु होता है। क्रोध, शोक और चिन्ता, मनुष्य के स्वास्थ्य और आयु को क्षीण कर देती हैं।

प्रोफेसर एलमर महोदय ने अपने अनुभव से सिद्ध किया है कि मानसिक दुःखों के विचार शरीरस्थ रसों में विष उत्पन्न कर देते हैं। इसी कारण क्लेश के समय श्वास की गति मंद पड़ जाती है; खून की गर्दिश शिथिल हो जाती है; क्षुधा बिगड़ जाती है; मलमूत्र का प्रवाह अधिक हो जाता है; पसीना अधिक आता है; आँखें निस्तेज हो जाती हैं; गालों में पीलापन आ जाता है और शरीर के सभी अवयवों में दुर्बलता प्रतीत होने लगती है। सम्पूर्ण शरीर में ऐसे अहितकर भाव इसलिए दिखाई देने लगते हैं कि मानसिक विचारों का विष शरीरस्थ अंगों पर अपना दुष्प्रभाव डालता है। मनोविकारों को हम सर्प के विष से तुलना दे सकते हैं। अन्तर केवल यह है कि सर्प का विष केवल उसकी थैली में रहता है, जबकि मनोविकारों का विष रक्त द्वारा सारे शरीर में फैल जाता है और उपर्युक्त लक्षणों को उपस्थित कर देता है।

कौन-से मनोविकारों का किन-किन अंगों पर प्रभाव पड़ता है, इसका भी हम पाठकों को कुछ दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझते हैं—

मनोविकार	**प्रभावित अङ्ग**
ईर्ष्या, द्वेष, डाह, जलन—से	—तिल्ली तथा जिगर खराब हो जाते हैं।
निराशा, चिन्ता तथा भय—से	—हृदय निर्बल तथा रोगी बनता है।
क्रोध तथा घृणा—से	—गुर्दे खराब होते हैं तथा रक्त में विषैले कीटाणु उत्पन्न होते हैं।
चिन्ता तथा उदासीनता—से	—फेफड़ों तथा मस्तिष्क में विकार उत्पन्न होते हैं तथा रक्त दूषित होकर पाण्डु रोग उत्पन्न हो जाता है।
विषय-वासना की प्रबलता—से	—वीर्य-विकार उत्पन्न होकर प्रमेह आदि रोग हो जाते हैं।

विपरीत इसके, प्रसन्नवदन पुरुष शरीर और मन दोनों से अधिक कार्य

कर सकता है और सदा स्वस्थ तथा बलवान् बना रह सकता है। अतः हमें व्यायाम और प्राणायाम करते, भ्रमण और भोजन करते, दूध और जल पीते, हर समय अपनी मानसिक शक्ति (Will Power) से काम लेना चाहिए, अर्थात् इनके करते समय हमें अपने अन्दर यह प्रबल भावना जाग्रत करनी चाहिए कि ये व्यायाम और प्राणायाम, भोजन और भ्रमण, मेरे अन्दर स्वास्थ्य, बल तथा शक्ति का संचार कर रहे हैं। मैं इनके द्वारा दिन-प्रतिदिन स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बन रहा हूँ। ऐसी दिव्य भावना द्वारा किए हुए व्यायाम और प्राणायाम, भ्रमण और भोजन, मनुष्य के अन्दर आशातीत आरोग्य, बल तथा शक्ति का संचार कर देते हैं।

अब हम शरीर को हमेशा स्वस्थ तथा बलवान् बनाए रखनेवाले यौगिक आसनों तथा क्रियाओं को उनके चित्रों द्वारा करने की विधियों तथा उनके लाभों का वर्णन करेंगे। आशा है पाठक इन यौगिक क्रियाओं को नियम तथा विधिपूर्वक करके इनसे पूर्ण लाभ उठाएँगे। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व हम पाठकों को बतला देना चाहते हैं कि इस पुस्तक में जितने भी योग के आसन या क्रियाएँ लिखी हैं, यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक मनुष्य इन सब आसनों या क्रियाओं को रोज करे। प्रत्युत स्वस्थ मनुष्य अपने सामर्थ्य तथा रुचि के अनुसार और रोगी मनुष्य अपने रोग तथा सामर्थ्य के अनुसार इनमें से अपने लिए चुनाव करके उन्हीं क्रियाओं को नियमपूर्वक करना प्रारम्भ कर दे। इसीलिए प्रत्येक आसन तथा क्रिया के नीचे उसके लाभ तथा कौन-से आसन या क्रिया किस रोग को दूर करती है, यह भी दे दिया गया है।

द्वितीय अध्याय

योगासनों के करने की विधि तथा उनके लाभ

१. बकासन

विधि—दोनों हथेलियों को दो फुट का अन्तर छोड़कर भूमि पर रख दें और दोनों पाँवों को कन्धों के पास ले जाकर सारे शरीर को हाथों के बल पर ऊपर उठावें। मुख सामने की ओर सीधा रखें।

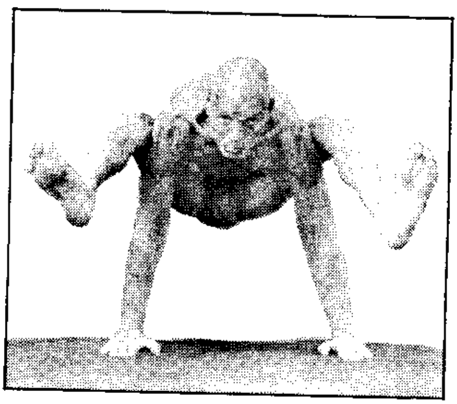

यह आसन ६२ वर्ष के वृद्ध कर रहे हैं! (समय १ से २ मिनट तक)

लाभ—हाथों और पैरों में नीरोगता तथा बल की वृद्धि होती है।

२. धनुरासन नं० २

विधि—धनुरासन नं० १ करके हाथों की कोहनियों को मोड़कर पीछे की ओर ले जाएँ।

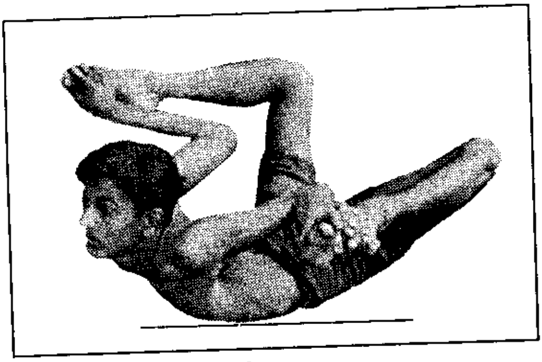

(समय १ से ३ मिनट तक)

लाभ—धनुरासन नं० १ के समान। देखें पृष्ठ ६३।

३. पादांगुष्ठासन

विधि—सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को कड़ा करके श्वास अन्दर भरते हुए तथा हाथों को पीछे ले जाते हुए, जितना पीछे झुक सकें, झुकें। फिर हाथों, छाती तथा सिर को आगे की ओर लाते हुए तथा श्वास को बाहर निकालते हुए हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़ लें और सिर को घुटनों पर टेक दें। ऐसा कम-से-कम तीन बार करें।

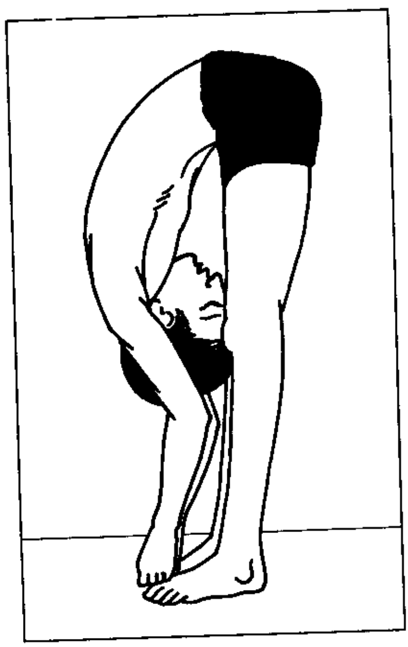

लाभ—पेट, यकृत, तिल्ली आदि के समस्त रोग दूर होकर बद्ध-कोष्ठता की निवृत्ति तथा क्षुधा की वृद्धि होती है। जिसकी धरण नीचे को टल जाती हो, इस आसन के करने से धरण ठीक अवस्था में चली आती है। चर्बी कम होकर पेट अपनी असली हालत में आ जाता है। कमर तथा मेरुदण्ड निर्दोष बनते हैं। समय तीन बार से छः बार तक।

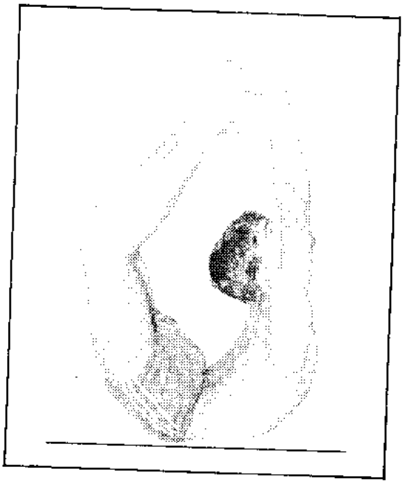

४. धनुरासन नं० ५

विधि—धनुरासन नं० ३ करके, हाथों तथा पैरों को जहाँ तक हो सके ऊपर ले जाकर धनुष के समान तानें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—नम्बर १ के समान। पृष्ठ ६३ देखें।

५. कन्दपीड़ासन

विधि—दाएँ पैर के पंजे जमीन पर टेककर, एड़ी को सीवन तथा गुदा

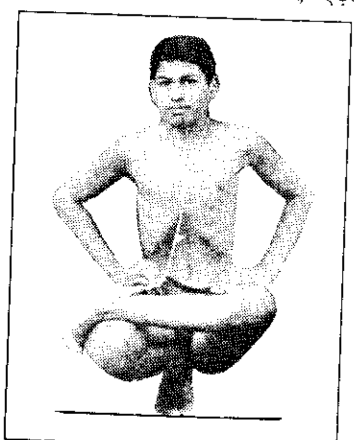

से सटा दें; और बाएँ पैर को दाएँ घुटने पर रख दें। दोनों हाथों से दोनों कमर के पासों (पार्श्वों) को पकड़ लें।

लाभ—वीर्यवाहिनी नाड़ियाँ निर्दोष तथा दृढ़ होती हैं। वीर्य-दोषों की निवृत्ति होती है। बवासीर तथा शीघ्रपतन आदि रोग दूर होते हैं। समय १ से २ मिनट तक।

६. सर्वाङ्गासन नं० १

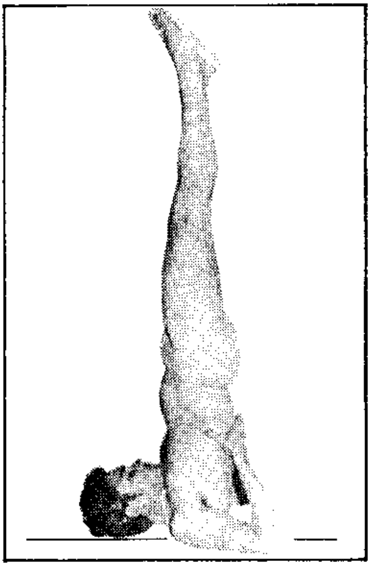

विधि—चित लेटकर दोनों पैरों को उत्तानपादासन के समान शनैः-शनैः ऊपर उठावें और फिर कमर को हाथों का सहारा देकर इतना ऊँचा उठाएँ कि पैर, पेट और छाती एक सीध में हो जाएँ। समय १ से ५ मिनट तक।

लाभ—वीर्यदोष, रक्तदोष तथा सब प्रकार के उदर-विकारों को दूर करता है। क्षुधा को बढ़ाता है। इस आसन को नियमपूर्वक करनेवाला पुरुष सदा युवा बना रहता है। वृद्धावस्था शीघ्र नहीं आती। शरीर में रक्त का संचार होकर शरीर पुष्ट होता है। दमा, खाँसी, क्षय, कुष्ठ, स्वप्नदोष, हृदयरोग दूर होते हैं। तिल्ली, जिगर तथा गले की ग्रन्थियों को लाभ पहुँचता है।

७. भुजङ्गासन नं० १

विधि—छाती के बल लेटकर दोनों हाथों के पंजों को कन्धों के पास जमीन पर टेक दें और श्वास को अन्दर भरकर सिर तथा छाती को ऊपर

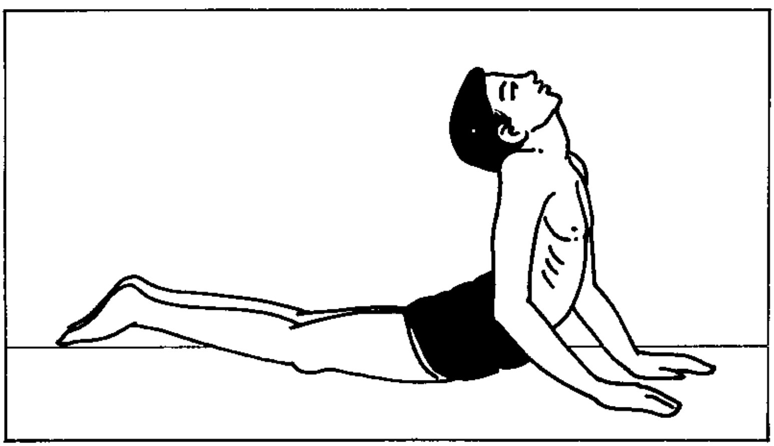

उठावें। ऐसा कम-से-कम तीन बार करें। समय ३ बार से ५ बार तक।

लाभ—छाती, हृदय तथा फेफड़े बलवान् होते हैं, पेट के समस्त रोग दूर होते हैं।

८. हलासन नं० १

विधि—चित लेटकर पैरों को धीरे-धीरे उठाकर सिर के पीछे इस प्रकार रखें कि पैरों के अँगूठे और अँगुलियाँ ही जमीन को स्पर्श करें। पैर सम-सूत्र में सीधे रहें। हाथ पीछे भूमि पर रहें। समय १ मिनट से ४ मिनट तक।

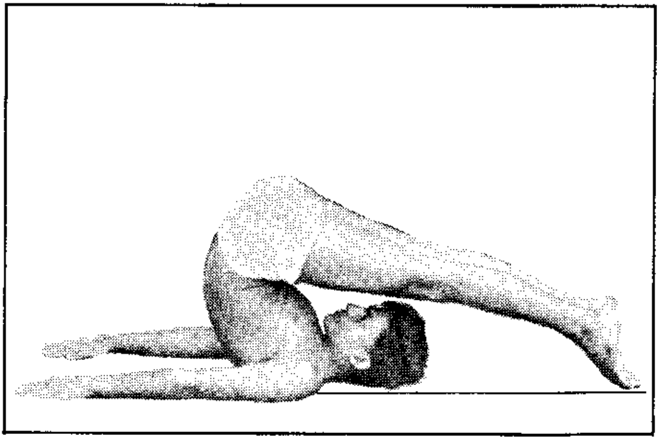

लाभ—पक्वाशय (Stomach), आँतें, यकृत, तिल्ली आदि को सशक्त बनाकर जठराग्नि की वृद्धि तथा बद्धकोष्ठता को दूर करता है। पेट की चर्बी को कम करके उसे स्वाभाविक अवस्था में लाता है। जिसकी नाभि नीचे को टल जाती हो, उसके लिए भी बहुत लाभकारी है।

९. सम्प्रसारण भूनम्नासन

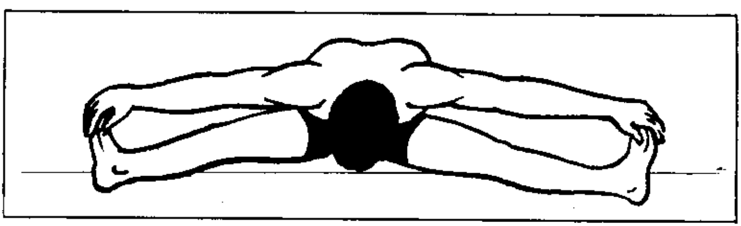

विधि—बैठकर पाँवों को यथाशक्ति खूब फैलावें, तथा हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़कर सिर को भूमि पर टेक दें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—इससे जंघा, पेट तथा पीठ सबल और रोग-रहित बनते हैं। वीर्याशय दृढ़ होने से वीर्य-सम्बन्धी रोगों की निवृत्ति होती है।

१०. हलासन नं० २

विधि—हलासन नं० १ की अवस्था में पैरों को इतना सिर के पीछे ले जावें कि पेट और छाती सर्वांगासन के समान बिल्कुल एक सीध में हो जाएँ और हाथों की अँगुलियों को परस्पर मिलाकर सिर के पीछे सटा दें। समय १ से २ मिनट तक।

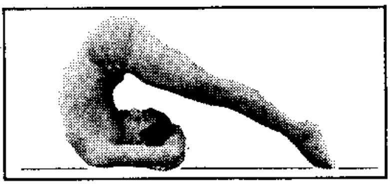

लाभ—हलासन नम्बर १ के समान। देखें पृष्ठ ६२।

११. उष्ट्रासन

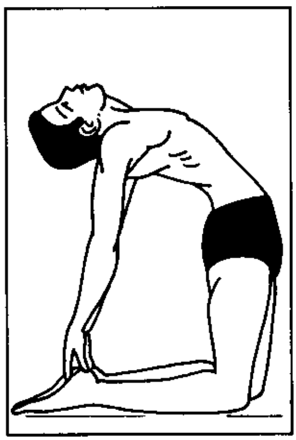

विधि—वज्रासन के समान बैठकर हाथों से पाँवों की एड़ियों को पकड़ लें। फिर नितम्बों को भरसक ऊपर की ओर उठावें, सिर को पीछे की ओर झुकावें और पेट को जहाँ तक हो सके आगे की ओर निकालें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—पेट तथा कण्ठ-रोगों की निवृत्ति होती है। शरीर की शीतोष्णता को सम अवस्था में लाता है।

१२. धनुरासन नं० १

विधि—छाती के भार लेटकर पैरों को घुटनों से मोड़कर हाथों से पकड़ लें तथा धनुष के समान ऊपर तानें।

लाभ—छाती, हृदय, पेट तथा फेफड़ों के समस्त अवयव नीरोग तथा

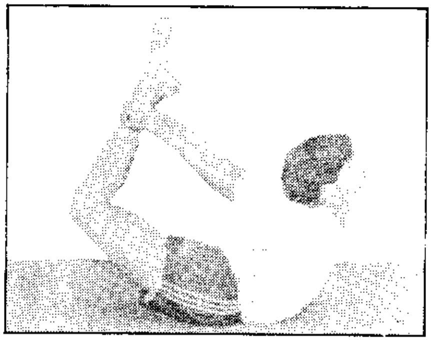

बलवान् बनते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है। वात-नाड़ियों को बलवान् बनाता है। समय १ से २ मिनट तक।

१३. मयूरासन

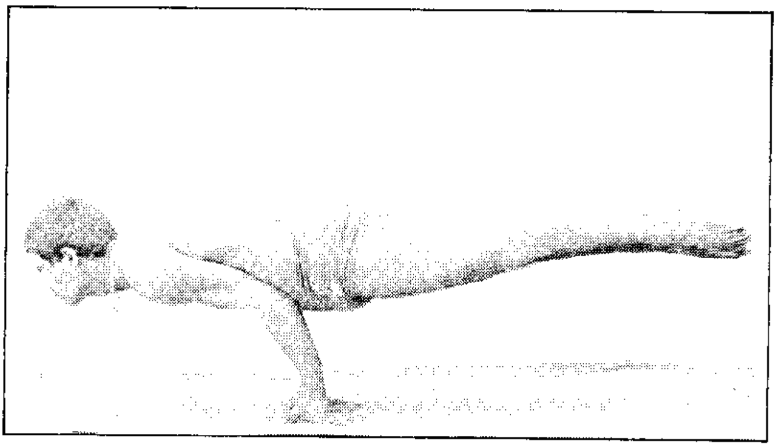

विधि—दोनों हाथों के पंजों को भूमि पर जमाकर पैरों को घुटनों से मोड़कर, आगे ले-जाकर भूमि पर रख दें और फिर हाथों की कोहनियों को नाभि के दोनों ओर सटाकर उनके बल पर पैरों को पीछे तथा ऊपर उठाते हुए, सिर, छाती तथा पैरों को समसूत्र में ले-जाकर ठहरा दें।

लाभ—पेट के समस्त रोगों की निवृत्ति तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मेरुदण्ड सीधा रहता है। बस्ती या एनिमा के पश्चात् इस आसन को करने से पेट में शेष रहा पानी तथा आँव बाहर निकल जाता है। वात-नाड़ियाँ बलवती बनती हैं। समय १ से २ मिनट तक।

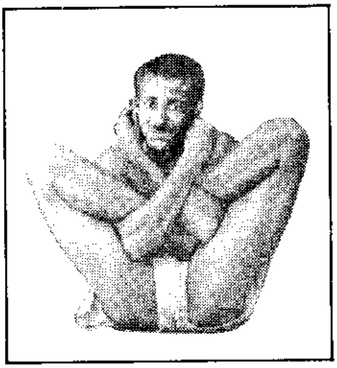

१४. गर्भासन

विधि—कुक्कुटासन करके, हाथों से कानों को पकड़ लें, दाएँ हाथ से बायाँ कान तथा बाएँ हाथ से दायाँ कान भी पकड़ सकते हैं। समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—आँतों के विकार, उदर-वृद्धि आदि पेट के दोष दूर होते हैं, तथा भूख बढ़ती है।

१५. नासाग्र-स्पर्शासन

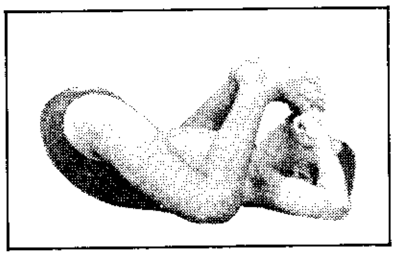

विधि—सीधे लेटकर दोनों पाँवों के अँगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर नासिका के अग्रभाग को स्पर्श करें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—कमर तथा घुटनों की पीड़ा और पेट-सम्बन्धी सब रोगों को दूर करता है।

१६. पश्चिमोत्तानासन नं० १

विधि—चित लेटकर, हाथों को पीछे ले-जाकर कुम्भक करके, शनैः-शनैः ऊपर उठें और हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़ लें, पुनः रेचक करके सिर को घुटनों से

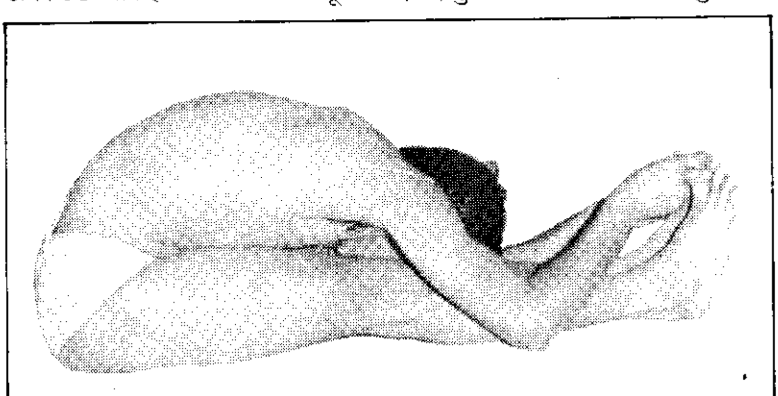

स्पर्श करें तथा कोहनियाँ भूमि पर टेक दें । समय १ से ५ मिनट तक ।

लाभ—पाचन-शक्ति की वृद्धि तथा बद्धकोष्टता को दूर करता है, पेट तथा कमर के सब अवयवों को शुद्ध, दृढ़ तथा सबल बनाता है । पेट की चर्बी को कम करता है । धरण टलने को रोकता है । शरीर में से विजातीय द्रव्यों को हटाता है ।

१७. मस्तक पादांगुष्ठासन

विधि—छाती के बल लेटकर श्वास को अन्दर भर लें, और फिर सारे शरीर को मस्तक तथा पैरों को अँगूठों के बल, ऊपर उठाकर शरीर को कमान के समान तान दें । समय १ से २ मिनट तक ।

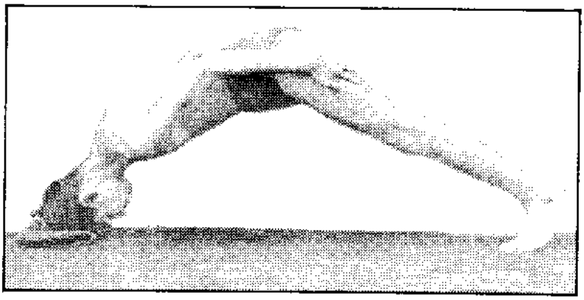

लाभ—मस्तक, छाती, पैर, पेट की आँतों तथा सब शरीर को शुद्ध और बलवान् बनाता है । पृष्ठ-वंश तथा मेरुदण्ड को विशेष लाभ पहुँचाता है ।

१८. पूर्णशलभासन

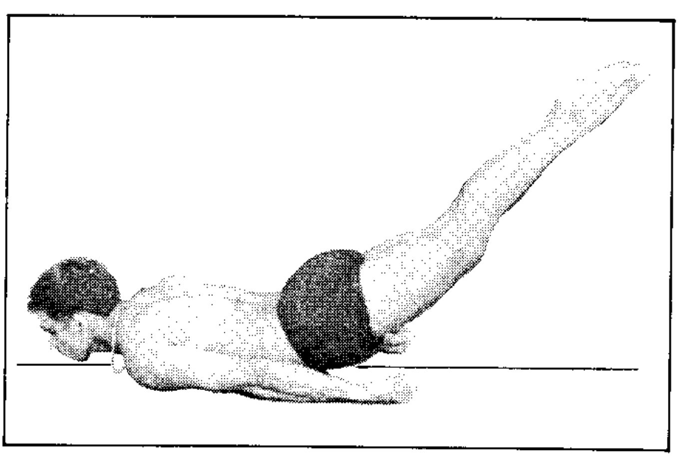

विधि—अर्धशलभासन के समान श्वास भरकर दोनों पैरों को एक साथ ऊपर उठावें, इसी प्रकार कम-से-कम तीन बार करें। समय आधा से एक मिनट तक।

लाभ—अर्द्धशलभासन के समान ।७ विशेष लाभ—कमरदर्द की निवृत्ति।

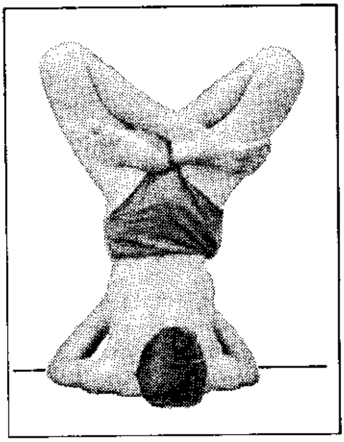

१९. सर्वांगासन नं० ४

विधि—सर्वांगासन नं० १ की हालत में ऊपर ही पद्मासन करें और गुदा तथा मूलेन्द्रिय का आकर्षण करें। समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—स्वप्नदोष, शीघ्रपतन और प्रमेह आदि वीर्य-सम्बन्धी रोगों के लिए विशेष हितकारी है।

२०. शीर्ष-पादासन

विधि—चित लेटकर तथा पूरक करके सिर के पिछले भाग और पैरों की एड़ियों पर सारे शरीर को इस प्रकार तानें जिससे वह अर्द्धचन्द्राकार बन जावे। हाथ दोनों जंघाओं के साथ सटे रहें, फिर आसन छोड़कर श्वास बाहर निकाल दें। समय १ से २ मिनट तक।

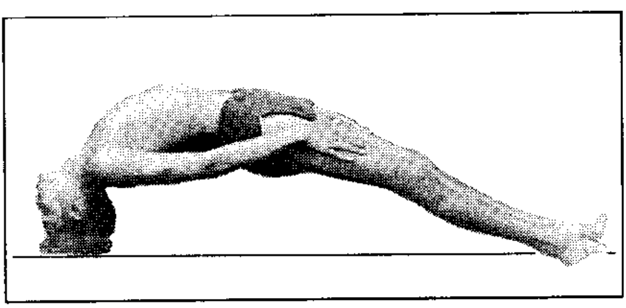

लाभ—मेरुदण्ड का सीधा, लचकीला तथा मृदु होना, पेट, छाती तथा कमर के रोगों की निवृत्ति।

२१. हस्तपादांगुष्ठासन

विधि—चित लेटकर श्वास को अन्दर भर लें और फिर दाएँ पैर को शनैः-शनैः ऊपर उठाकर दाएँ हाथ से उसका अँगूठा पकड़ लें, और आधा मिनट

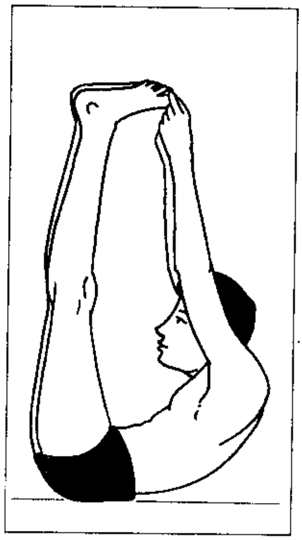

तक ठहराकर पुनः हाथ तथा पैर को भूमि पर ले-जाकर रख दें। इसी प्रकार बाएँ पैर को, फिर इसी प्रकार दोनों हाथों व पैरों से करें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—पेट के सब अवयव नीरोग बनते हैं, हाथों और पैरों में रक्त का सञ्चार तथा बल की वृद्धि होती है।

२२. सुप्त-गर्भासन

विधि—चित लेटकर दोनों पैरों को गर्दन के पीछे ले-जाकर एक-दूसरे

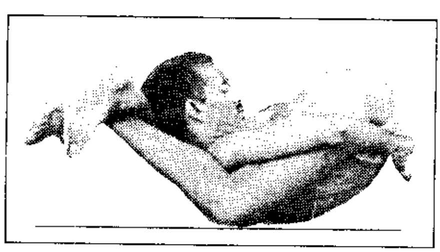

के ऊपर रख दें, दोनों हाथों को पैरों के अन्दर से ले-जाकर कमर को हाथों के घेरे से पकड़ लें। समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—पेट, यकृत (जिगर) तथा प्लीहा (तिल्ली) के रोग दूर होते हैं। जंघा तथा घुटने भी निर्दोष बनते हैं।

२३. अर्द्धशलभासन

विधि—पेट के बल लेटकर, दोनों हाथों को दोनों पाँवों से सटाकर, हथेली ऊपर करके भूमि पर रख दें, और मुट्ठी बन्द करके फिर श्वास भरकर हाथों के बल से एक पैर को सीधा ऊपर उठावें, फिर पैर को शनैः-शनैः नीचे लाकर भूमि पर रख दें, और श्वास को बाहर निकाल दें। फिर इसी प्रकार श्वास भरकर दूसरा पैर उठावें। तीन से छः बार तक करें।

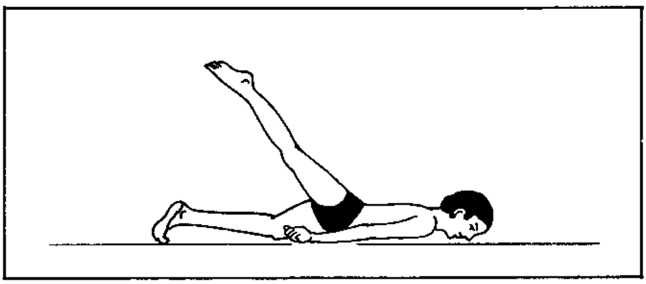

लाभ—जंघाएँ निर्दोष तथा पेट के रोग दूर होते हैं।

२४. चक्रासन नं० १

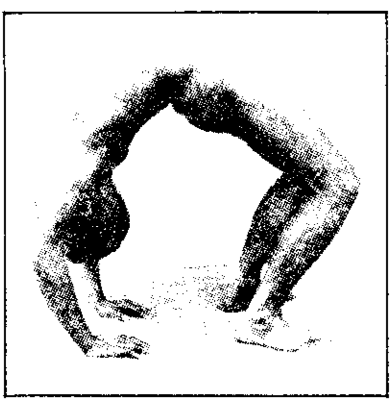

विधि—कमर के दोनों ओर हाथ रखकर पीछे जितना झुका जा सके झुकें और फिर हाथों को धीरे-से पीछे ले-जाकर जमीन पर टेक दें, पैरों और हाथों को जहाँ तक हो सके पास ले जावें, समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—कमर-दर्द तथा पेट के रोगों को दूर करता है। रीढ़ की हड्डी को निर्दोष तथा सुदृढ़ बनाता है। इस आसन को निरन्तर करनेवाले की कमर वृद्धावस्था में भी नहीं झुकती।

२५. कुक्कुटासन

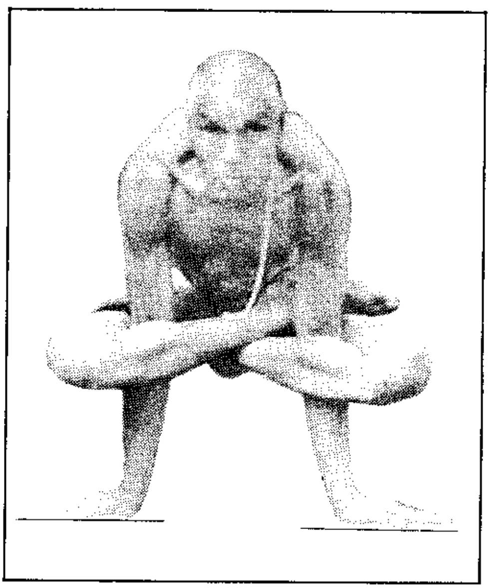

विधि—पद्मासन पर बैठकर दोनों हाथों को टाँगों-जाँघों के बीच से निकालकर हथेलियों को जमीन पर टेक दें, तथा हाथों के बल पर सारे शरीर को ऊपर उठावें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—हाथ नीरोग तथा बलवान् बनते हैं।

२६. वृक्षासन नं० १

विधि—केवल हाथों के पंजों के सहारे सारे शरीर को शीर्षासन के

समान ऊपर सीधा उठावें। समय १ से २ मिनट तक।

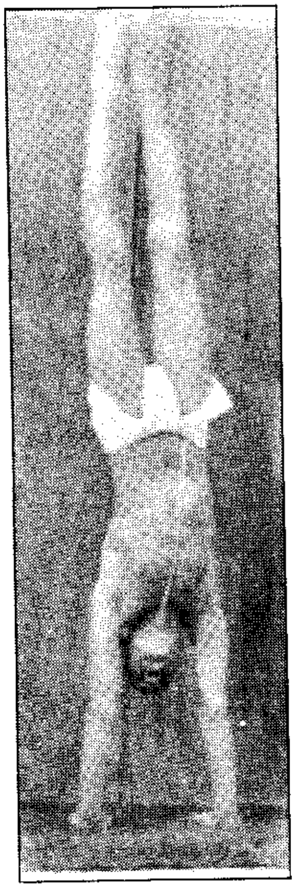

लाभ—शीर्षासन के समान। पृष्ठ ७९ देखें।

२७. कर्णपीड़ासन

विधि—हलासन करके फिर दोनों घुटनों को कानों के पास ले जाकर भूमि पर रख दें। समय १ से ३ मिनट तक।

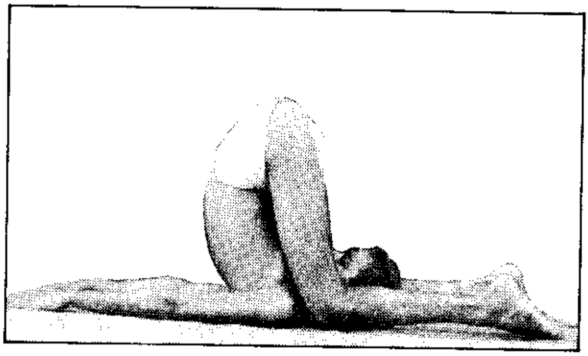

लाभ—हलासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६२ देखें।

२८. हलासन नं० ३

विधि—हलासन नं० १ की अवस्था में पैरों को जितना फैला सकें फैलावें, तथा हाथों को भी फैलाकर पैरों के अँगूठे पकड़ लें। समय १ से ३ मिनट तक।

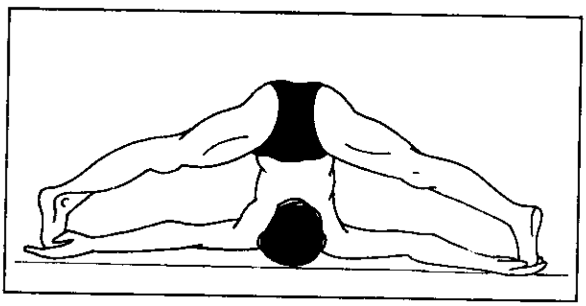

लाभ—हलासन नम्बर १ के लाभों के अतिरिक्त पैरों तथा जंघाओं को सुदृढ़ तथा निर्दोष बनाता है। पृष्ठ ६२ देखें।

२९. मत्स्यासन

विधि—पद्मासन लगाकर लेट जाएँ, सिर को पीछे की ओर मोड़कर भूमि पर टिका दें, छाती तथा कमर को भरसक ऊपर उठावें तथा हाथों से पैरों के अँगूठे पकड़कर कोहनियाँ जमीन पर टेक दें। समय १ से २ मिनट तक।

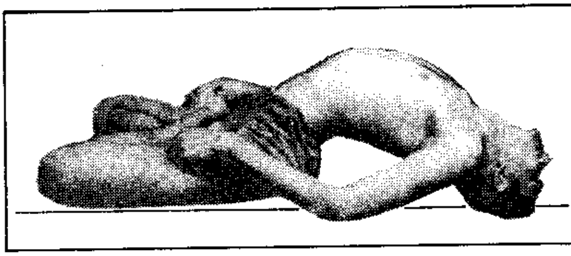

लाभ—गर्दन, पेट तथा छाती के विकार दूर होते हैं। क्षुधा बढ़ती है। पेट की गर्मी कम होती है। कब्ज दूर होती है। इस आसन को नियमपूर्वक करते रहने से टाँसिल तथा धरण टल जाने आदि के रोग दूर हो जाते हैं। दमा, खाँसी में भी लाभ पहुँचता है। सीना चौड़ा होता है।

३०. भुजंगासन नं० ३

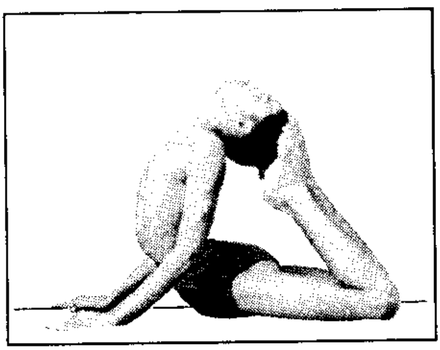

विधि—भुजंगासन नम्बर १ करके दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर सिर के साथ ले-जाकर सटा दें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—भुजंगासन नं० १ के लाभ के अतिरिक्त घुटनों को निर्दोष बनाता है। पृष्ठ ६१ देखें।

३१. नाभ्यासन

विधि—पेट के बल लेटकर तथा हाथों को आगे ले-जाकर और दोनों हाथों तथा पैरों में दो फुट की दूरी रखकर फैलावें, फिर श्वास को अन्दर भरकर दोनों हाथों, पैरों तथा सिर व छाती को पेट के बल १$\frac{1}{2}$ फीट तक ऊँचा उठावें और फिर हाथ-पैर नीचे ले-जाकर श्वास निकाल दें। समय १ से २ मिनट तक।

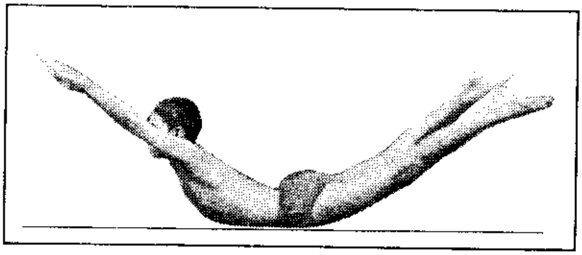

लाभ—नाभि-शक्ति का विकास, मंदाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला और पेट के अन्य रोगों तथा वीर्य-दोषों को दूर करता है। कुण्डलिनी-जागृति में भी सहायता देता है।

३२. हृदयस्तंभासन

विधि—चित लेटकर दोनों हाथों को सिर के पीछे तथा दोनों पैरों को आगे की ओर दो फुट की दूरी रखकर फैलावें और फिर श्वास को भरकर जालन्धर बन्ध करके हाथों और पैरों को एक फुट की दूरी तक ऊपर उठावें। इसी प्रकार तीन बार करें। प्रत्येक बार आसन छोड़कर श्वास बाहर निकाल दिया करें। समय १ से २ मिनट तक।

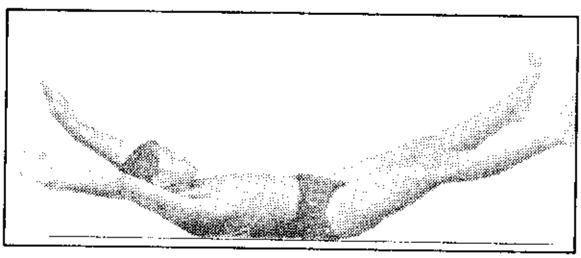

लाभ—छाती, हृदय, फुफ्फुस, गर्दन तथा पेट के सब अवयवों को सुदृढ़ और नीरोग बनाता है, तथा पेट के सब प्रकार के रोगों को दूर करता है।

३३. अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन

विधि—दोनों पाँवों को लम्बे फैलाकर बैठ जाएँ और फिर बाएँ पैर को मोड़कर उसकी एड़ी सीवन में ले-जाकर सटा दें, और दाएँ पैर के तले को बाएँ पैर के घुटने के बाहर सटाकर रख दें। बाएँ हाथ को दाईं टाँग के अन्दर से ले-जाकर उससे दाएँ पैर के पंजे को पकड़ लें, और दाएँ हाथ को

पीछे से ले-जाकर बाईं जंघा को पकड़ लें। इसी प्रकार दूसरे पैर को भी फेरकर करें।

छाती और गर्दन को पीछे की ओर अच्छी प्रकार से तानें।

समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—इससे पेट के समस्त रोग दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है। पाँव, गला, पार्श्व, छाती तथा कमर व हाथों की स्नायुओं का खिंचाव होने से सब अंग नीरोग तथा निर्दोष बनते हैं। शिराओं और धमनियों को बल तथा आरोग्यता प्रदान करता है।

३४. पूर्ण-मत्स्येन्द्रासन

विधि—अन्य सब विधि अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन के समान है। केवल पैर की एड़ी को सीवन में न सटाकर दूसरे पैर की जंघा पर पेट से सटाकर रख दें। यह आसन बहुत कठिन है, अतः इससे पूर्व कुछ समय अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन अवश्य कर लेना चाहिए। समय १ से २ मिनट तक।

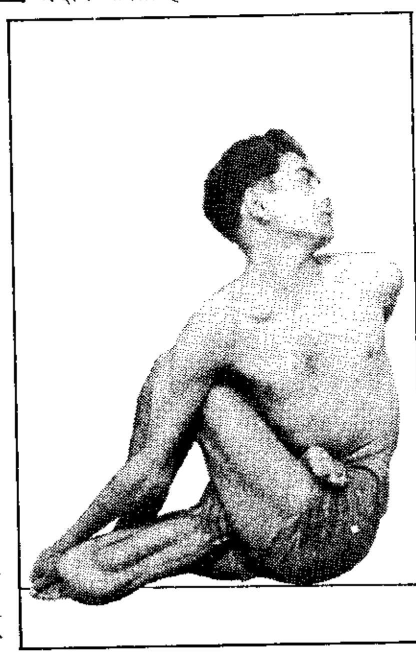

लाभ—अर्द्ध - मत्स्येन्द्रासन की अपेक्षा पेट पर विशेष दबाव पड़ता है। इसीलिए यह आसन पेट की बीमारियों के लिए

विशेषकर लाभदायक है। अतः आमवात, परिणामशूल, आँतों की कमजोरी आदि रोग इससे विशेषकर नष्ट होते हैं।

३५. पादचालनासन

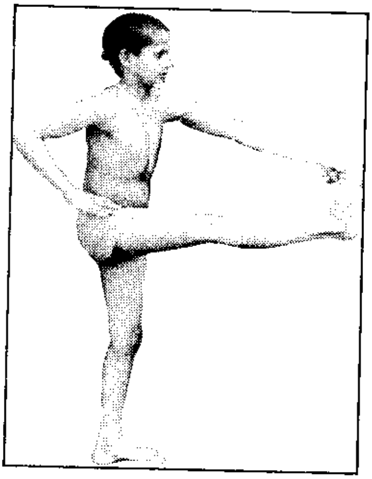

विधि—सीधे खड़े होकर एक पैर को ऊपर उठावें और उसी ओर के हाथ से पैर के अँगूठे को पकड़ लें, इसी प्रकार बारी-बारी से दोनों पैरों को उठाएँ। दोनों पाँवों को ५-५ बार ऊपर उठाएँ। इसी प्रकार पैरों को पीछे तथा दाएँ-बाएँ भी ले-जा सकते हैं।

लाभ—पैर तथा जंघाएँ नीरोग और बलवान् बनते हैं। मांसपेशियाँ पुष्ट तथा नीरोग बनती हैं।

३६. सर्वाङ्गासन नं० ३

विधि—सर्वाङ्गासन नं० २ करके घुटनों को सिर के पीछे लाकर भूमि पर टेक दें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—सर्वांगासन नं० १, २ के समान है। पृष्ठ ६१ देखें।

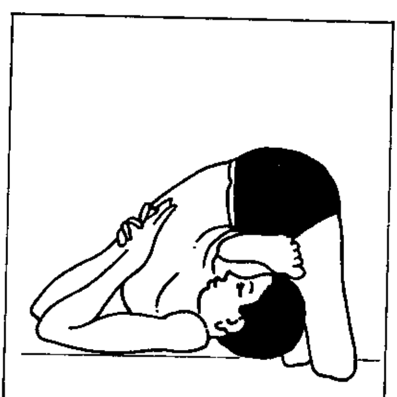

विशेष सूचना—सर्वांगासन के लाभ प्रायः शीर्षासन जैसे ही हैं। अतः जिनका मस्तिष्क तथा आँखें अधिक कमजोर हों, उन्हें शीर्षासन के बजाय सर्वांगासन ही करना चाहिए। सर्वांगासन करने के पश्चात् शीर्षासन के समान खड़े रहकर कम-से-कम दस बार लम्बे श्वास लेने तथा निकालने चाहिएं।

३७. उत्तानपादासन

विधि—चित लेट जाएँ और श्वास भरकर पैरों को बिल्कुल सीधा रखकर, धीरे-धीरे ऊपर उठावें और चार-पाँच सेकण्ड तक ऊपर ही ठहराकर पुनः शनैः-शनैः नीचे लाकर भूमि पर रख दें और श्वास निकाल दें। इस प्रकार कम-से-कम तीन बार करें। जिन्हें पहले-पहल दोनों पैरों को उठाने में कठिनाई मालूम होती हो, वे पहले अर्द्ध-उत्तानपादासन, अर्थात् एक पैर को बारी-बारी से ऊपर उठावें। तीन से पाँच बार करें, तथा आधा मिनट ऊपर उठाए रखें।

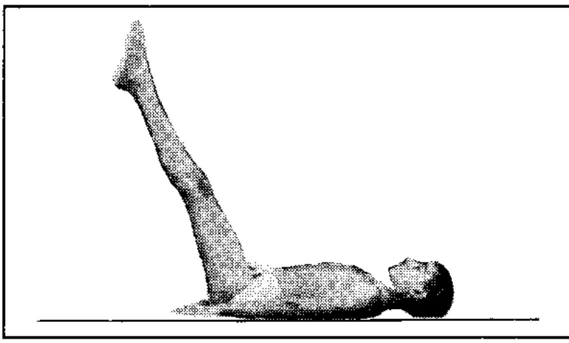

लाभ—पैर नीरोग तथा बलवान् बनते हैं, आँतें भी स्वस्थ तथा स्वच्छ रहती हैं और पेट के समस्त रोग दूर होते हैं।

३८. धनुरासन

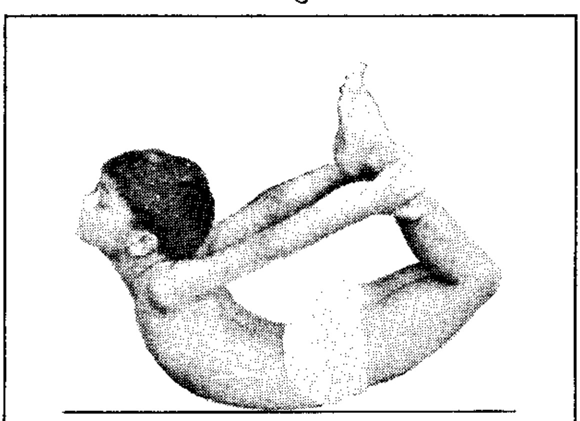

इस बात को दर्शाने के लिए कि छोटे बालक भी यौगिक आसनों को करके, अपने शरीर को स्वस्थ और बलवान् बना सकते हैं।

३९. वृश्चिकासन नं० १

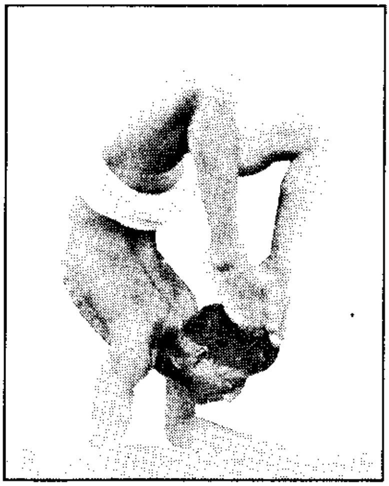

विधि—सिर तथा दोनों हाथों को कोहनियों तक भूमि पर रखकर शीर्षासन करें और फिर पैरों को शनैः-शनैः पीछे की ओर झुकाते जाएँ, सिर को भी ऊपर उठाते जाएँ, यहाँ तक कि दोनों पैरों के तलुए सिर पर जाकर टिक जाएँ। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—हाथ और पैर बलवान् होते हैं, पेट और आँतें नीरोग तथा निर्दोष बनते हैं। शरीर फुर्तीला तथा हल्का हो जाता है। मेरुदण्ड शुद्ध तथा लचीला बनता है। तिल्ली, यकृत ठीक होने से पांडु (पीलिया) आदि रोग नहीं होते। पेट की चर्बी कम होती है।

४०. चक्रासन नं० २

विधि—चक्रासन नं० १ की अवस्था में हाथों और पैरों को इतना समीप ले आवें कि दोनों एक-दूसरे को स्पर्श कर लें। समय १ से २ मिनट तक।

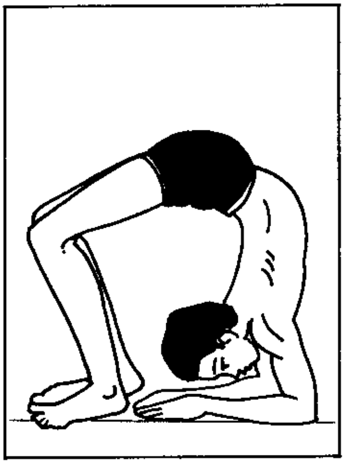

लाभ—चक्रासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६९ देखें।

४१. शीर्षासन

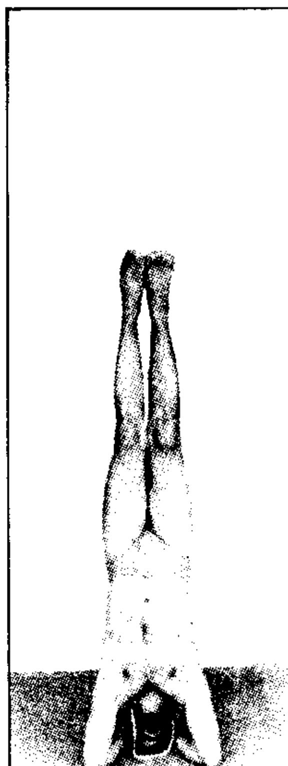

विधि—हाथों की अँगुलियों को एक-दूसरे में डालकर भूमि पर रख दें और उसके ऊपर सिर का पिछला भाग टेक दें। पैरों को पीछे ले-जाकर पंजों पर ठहरा दें। फिर पैरों को धीरे-धीरे आगे लाकर जंघाओं को छाती के साथ तथा पिण्डलियों को जंघाओं के साथ सटा दें, और इसी अवस्था में पैरों को शनैः-शनैः इतना ऊँचा उठावें कि त्रिकोणावस्था बन जावे। कुछ दिन तक इसी अवस्था में रहने का अभ्यास करें। जब इस पहली अवस्था पर बिना हिले पैर कुछ देर तक ठहर सकें, तब इसी अवस्था में पैरों को कुछ ऊपर सीधा ले जावें और फिर कुछ देर तक इस अवस्था में ठहरने का प्रयत्न करें। इस द्वितीय अवस्था में स्थिर हो जाने के पश्चात् पैरों को जंघाओं से अलग करके बिल्कुल ऊपर सीधा कर दें। दृष्टि सामने की

ओर रखें । समय १ मिनट से १० मिनट तक।

लाभ—यह आसन सब आसनों का शिरोमणि है। विधिपूर्वक तथा इसके नियमों को (जो आगे बतलाए गए हैं) ध्यान में रखते हुए यदि यह आसन प्रतिदिन नियमपूर्वक किया जाय, तो यह शरीर के प्राय: सब रोगों को नष्ट कर देता है। मंदाग्नि, बद्धकोष्ठता, प्रमेह, स्वप्नदोष, रक्त-विकार, नेत्र-विकार, जुकाम, सिरदर्द, बालों का सफेद होना, बवासीर, बहुमूत्र आदि सर्वथा दूर हो जाते हैं। हृदय तथा फेफड़े बलवान् बनते हैं। जिसकी नाभि नीचे को टल जाती हो उसे भी यह आसन लाभ करता है। बुद्धि तथा जीवन-शक्ति की वृद्धि होती है और दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

४२. सुप्त-वज्रासन

विधि—दोनों पाँवों के तलुओं को नितम्बों के साथ सटाकर बैठ जावें। हाथों की हथेलियों को घुटनों पर रख दें। इसे **वज्रासन** कहते हैं। और फिर शनै:-शनै: शरीर को पीछे झुकाते हुए तथा हाथों को पीछे ले-जाते हुए सिर को भूमि पर टिका दें, फिर दोनों हाथों से एक-दूसरे की भुजाओं को पकड़कर

तकिए के समान सिर के नीचे रख दें। पीठ को जहाँ तक हो सके भूमि से ऊपर उठाए रखें। समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—पेट, छाती, जंघाएँ निर्दोष तथा नीरोग रहते हैं।

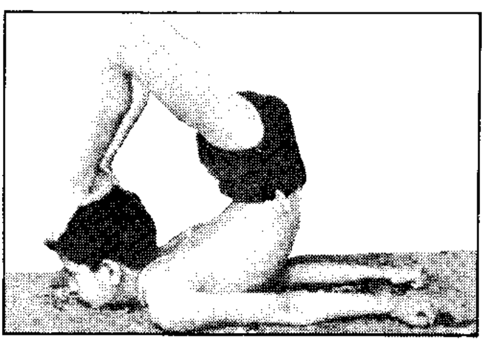

४३. वृश्चिकासन नं० २

विधि—छाती के भार लेटकर ठोड़ी तथा दोनों हाथों को भूमि पर टेक कर, दोनों पाँवों को शलभासन के समान ऊपर उठाते हुए, घुटनों से

मोड़कर दोनों पैरों के तलुओं को सिर पर टिका दें। समय १ से २ मिनट तक।

(आचार्य भद्रसेन का ११-वर्षीय बालक देवरत्न कर रहा है)

लाभ—वृश्चिकासन नं० १ के समान। पृष्ठ ७८ देखें।

४४. पवन-मुक्तासन

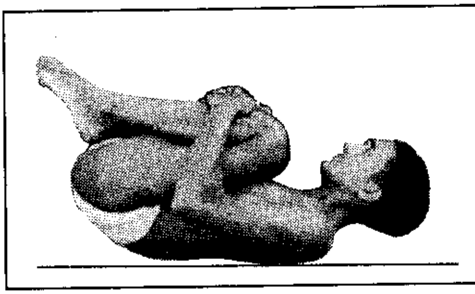

विधि—चित लेटकर दोनों पैरों को उत्तानपादासन के समान ऊपर उठावें, फिर घुटनों से मोड़कर तथा मोड़े हुए पाँवों को हाथों के मध्य में डालकर पेट को दबावें तथा सिर को घुटनों की ओर ले-जाएँ। इसी अवस्था में थोड़ी देर रहकर फिर दाएँ-बाएँ लुढ़कें तथा ऊपर-नीचे भी उठें और लेटें। दूसरा प्रकार—एक पैर को पूर्व के समान हाथों से दबाकर दूसरे पाँव को भूमि पर से सीधा उठाकर उसे चक्राकार घुमाएँ। इसी प्रकार दूसरे पैर से करें और फिर हाथों को छोड़कर पाँवों को सीधा करके शनैः-शनैः भूमि पर ले जाकर रख दें। समय १ से ३ मिनट तक।

लाभ—अपानवायु का निःसरण तथा कोष्ठबद्धता दूर करता है। कमर, पेट, हाथ, पैर, अंगुलियों तथा सिर के विकार नष्ट होते हैं। पेट पतला होता है तथा भूख बढ़ती है।

४५. धनुरासन नं० ३

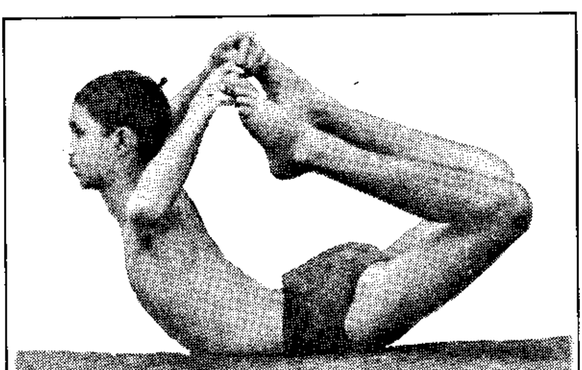

विधि—धनुरासन नं० २ करके कोहनियों को छाती के बराबर सीध में लाएँ। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—धनुरासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६३ देखें।

४६. धनुरासन नं० ४

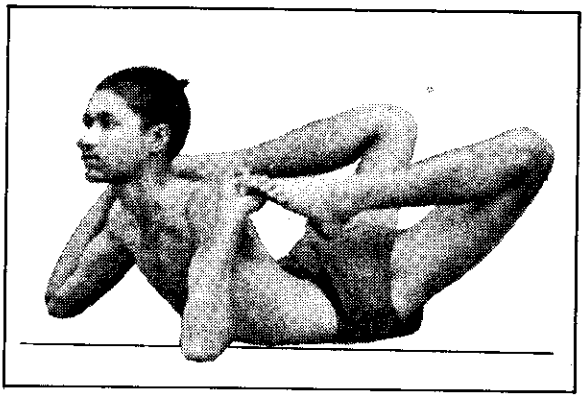

विधि—धनुरासन नं० ३ करके कोहनियों को भूमि पर टेक दें। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—धनुरासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६३ देखें।

४७. धनुरासन नं० ५

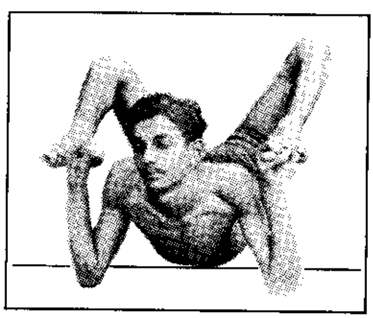

विधि—धनुरासन नं० २ करके कोहनियों को भूमि पर ले-जाकर टिका दें।

लाभ—धनुरासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६३ देखें।

४८. धनुरासन नं० ६

विधि—धनुरासन नंबर २ करके घुटनों और कोहनियों को पीछे मोड़ लें।

लाभ—धनुरासन नं० ५ के समान। पृष्ठ ८२ देखें।

४९. त्रिकोणासन

विधि—सीधे खड़े होकर पाँवों को खूब फैला दें। फिर एक तरफ झुककर हाथ की अँगुलियों को पाँव की अँगुलियों के ऊपर टिका दें, अथवा हाथों की अँगुलियों से पाँव की अँगुलियों को पकड़ लें। दूसरे हाथ को सिर के ऊपर से सीधा झुकनेवाली दिशा में ले आएँ। दृष्टि सामने रहे। इसी प्रकार झुके हुए हाथ को ऊपर लाते हुए सीधे हो जाएँ और फिर उसी प्रकार दूसरी तरफ झुकें। कम-से-कम तीन बार करें।

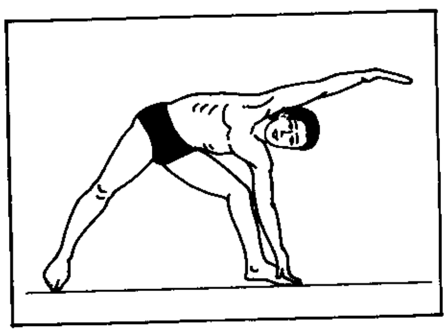

लाभ—दोनों पैर, जाँघें तथा भुजाएँ मजबूत बनती हैं। तिल्ली और जिगर निर्दोष तथा रोग-रहित हो जाते हैं।

५०. सिद्धासन

विधि—भूमि पर बैठकर दाएँ पैर की एड़ी को सीवन के साथ सटा दें और बाएँ पैर की एड़ी बिल्कुल दाएँ पैर की सीध में नाभि के पास रख दें और दाएँ पैर की अँगुलियों को बाईं जाँघ और पिंडली के बीच में, तथा बाएँ पैर की अँगुलियों

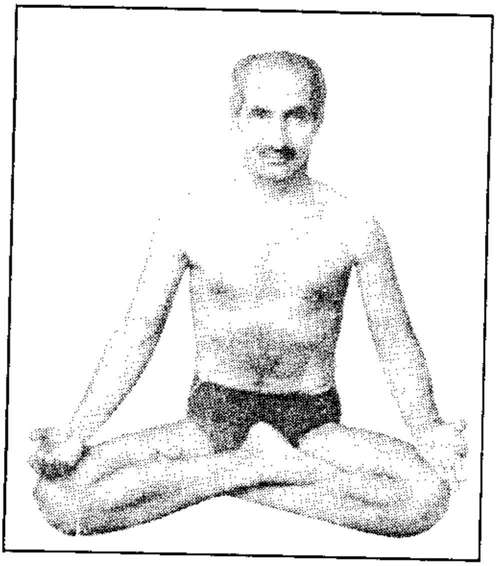

को दाईं जाँघ-पिंडली के बीच में डाल दें। हाथों को सीधा करके और तर्जनी अँगुली को अँगूठे के नीचे दबाकर घुटनों पर रख दें, हाथों में बल न पड़े। छाती, पेट, गर्दन और सिर भी बिल्कुल समरेखा में रहें।

लाभ—मेरुदण्ड का सीधा रहना, क्षुधा की वृद्धि तथा वीर्य-रक्षा आदि अनेक लाभ होते हैं। इस आसन पर बैठकर उज्जायी आदि प्राणायाम, सन्ध्या तथा धारणा, ध्यान आदि आध्यात्मिक साधन भली प्रकार से किए जा सकते हैं।

५१. पद्मासन

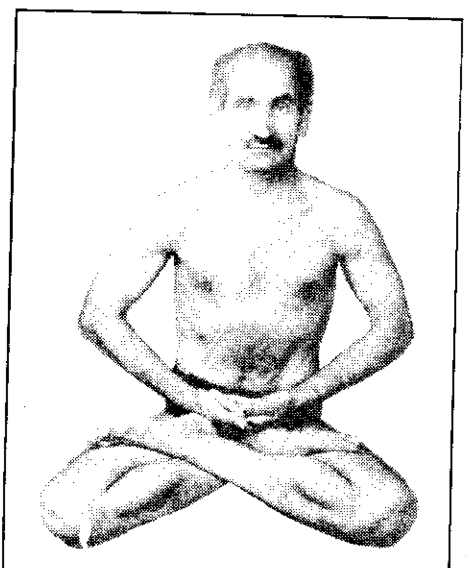

विधि—सीधे बैठ जाएँ, दाएँ पैर को बाएँ, तथा बाएँ पैर को दाएँ पैर पर इस प्रकार रखें कि एड़ियाँ नाभि के दोनों ओर पेट से सटी रहें। सारे शरीर को सिद्धासन के समान सीधा रखकर हाथों को उल्टा करके घुटनों पर, अथवा एक के ऊपर दूसरी हथेली रखकर दोनों एड़ियों के मध्य में रख दें।

लाभ—सिद्धासन के समान। इस आसन पर बैठकर उड्डियान बन्ध, भस्त्रिका

आदि प्राणायाम, तथा ध्यान आदि साधन भली प्रकार से किए जा सकते हैं।

विशेष सूचना—निम्न आसनों के चित्र नहीं दिए जा रहे, क्योंकि ये पूर्वांकित आसनों के ही भेद हैं।

५२. आकर्ण-धनुरासन

विधि—बैठकर दोनों पाँवों को आगे की ओर फँसा दें, और दोनों हाथों से दोनों पाँवों के अँगूठों को पकड़ लें, फिर दाएँ पैर को मोड़कर बाएँ कान के पास लाएँ। इसी प्रकार बारी-बारी से बाएँ पैर को मोड़कर दाएँ कान के पास लाएँ।

लाभ—बाहु तथा जंघा को दृढ़ और नीरोग बनाता है। इस आसन को निरन्तर करनेवाला मनुष्य गठिया की बीमारी से बचा रहता है।

५३. सर्वांगासन नं० २

विधि—सर्वांगासन नं० १ की अवस्था में, पैरों को आगे-पीछे ले जाएँ।

लाभ—सर्वांगासन नं० १ के समान, तथा पैरों और कूल्हों को बलवान् बनाता है। पृष्ठ ६९ देखें।

५४. सर्वांगासन नं० ३

विधि—सर्वांगासन नं० १ की हालत में एक पैर को हलासन के समान भूमि पर शनैः-शनैः लाकर रख दें। इसी प्रकार दोनों पैरों को अदल-बदलकर करें।

लाभ—सर्वांगासन नं० १ के समान। पृष्ठ ६१ देखें।

५५. भुजंगासन नं० २

विधि—भुजंगासन नं० १ करके एक पैर को शलभासन के समान ऊपर उठाएँ, इसी प्रकार बारी-बारी से दोनों पैरों को ऊपर ले-जाएँ।

लाभ—भुजंगासन नं० १ के अतिरिक्त जंघाएँ पुष्ट होती हैं। पृष्ठ ६२ देखें।

५६. कूर्मासन

विधि—शेष सब गर्भासन के समान करके, हाथों से कानों को न पकड़कर, गले को पकड़ना चाहिए।

लाभ—गर्भासन के समान। पृष्ठ ६५ देखें।

५७. ताड़ासन

विधि—सीधे खड़े होकर श्वास को नाक से अन्दर भरते हुए हाथों को कड़ा करके तथा हथेलियाँ ऊपर को करके, दोनों हाथों को धीरे-धीरे ऊपर ले जाकर मिला दें। पैरों की एड़ियाँ भी साथ-साथ उठाते जाएँ और फिर श्वास को निकालते हुए हाथों को धीरे-धीरे नीचे ले आएँ, साथ ही एड़ियाँ भी नीचे लाकर जमीन पर रख दें।

लाभ—इससे हाथ, पैर, छाती आदि के सब अवयव निर्दोष तथा खूब मजबूत बनते हैं। हृदय तथा फेफड़ों को शक्ति मिलती है तथा उनके रोगों की निवृत्ति होती है।

मुद्राएँ

१. विपरीतकर्णी मुद्रा नं० १

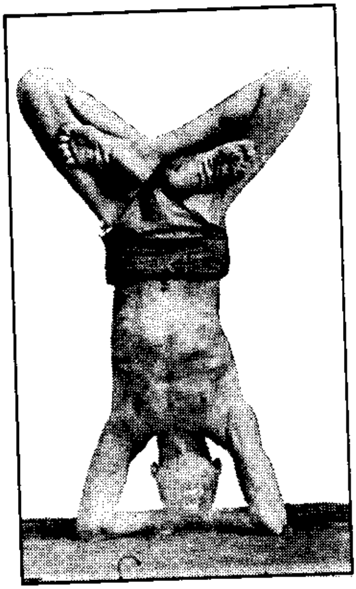

विधि—शीर्षासन की अवस्था में ऊपर पद्मासन करें, तथा मूलबन्ध अर्थात् गुदा का संकोचन तथा मूत्रेन्द्रिय का आकर्षण करें। समय शीर्षासन के समान।

लाभ—यह मुद्रा जठराग्नि की प्रदीप्ति, रक्तशुद्धि तथा वीर्य-सम्बन्धी समस्त दोषों को दूर करती है। शरीर में जीवन-शक्ति का संचार होता है।

२. विपरीतकर्णी मुद्रा नं० २

विधि—शीर्षासन करके ऊपर पद्मासन करें, तथा नं० १ के समान गुदा का संकोचन तथा मूत्रेन्द्रिय का आकर्षण करें।

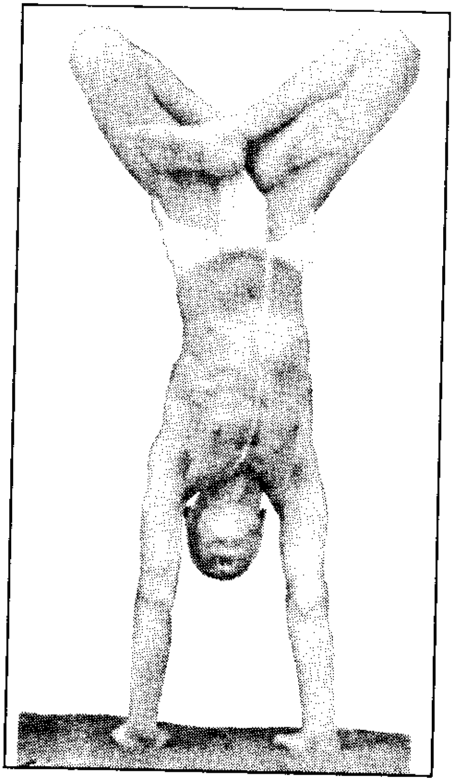

लाभ—विपरीतकर्णी नं० १ के समान। हाथों का निर्दोष तथा सशक्त होना विशेष लाभ है।

३. योगमुद्रा नं० १

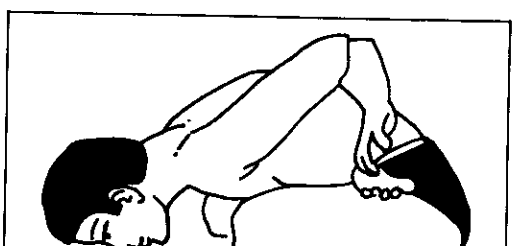

विधि—पद्मासन करके हाथों को पीठ के पीछे ले-जाकर बाएँ हाथ से

दाएँ हाथ की कलाई को पकड़कर और सिर को पृथ्वी पर ले-जाकर टिका दें। समय १ से ५ मिनट तक।

लाभ—पृष्ठवंश निर्दोष बनता है। क्षुधा की वृद्धि होती है।

४. योगमुद्रा नं० २

विधि—पद्मासन करके दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों को पकड़ लें और सिर को पृथ्वी पर टेक दें।

लाभ—योगमुद्रा नं० १ की अपेक्षा पेट की बीमारियों के लिए विशेषकर लाभप्रद है। अधिक देर तक करने और करते समय चित्त को नाभि-प्रदेश में एकाग्र करने से कुण्डलिनी-जागृति में विशेष सहायता मिलती है।

५. योगमुद्रा नं० ३

विधि—पद्मासन करके दोनों हाथों की अँगुलियों को परस्पर एक-दूसरे में सटाकर दोनों एड़ियों तथा नाभि के मध्य में रख दें और फिर सिर को भूमि पर टिका दें।

लाभ—मुद्रा नं० २ के समान।

६. महा-मुद्रा

विधि—दोनों पैरों को सामने लम्बे करके बैठ जाएँ, फिर एक पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को सीवन अर्थात् गुदा और मूत्रेन्द्रिय के मध्य में भली प्रकार सटा दें, और पाँव के तले को फैले हुए पाँव की जंघा के साथ सटा दें, फिर दोनों हाथों की अँगुलियाँ परस्पर सटाकर फैले हुए पाँव के तले में डालकर श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालकर उड्डियान करें और माथे को फैले हुए पाँवों के घुटनों पर रख दो। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—वीर्याशय तथा पाचन-सम्बन्धी सब यन्त्रों को सुदृढ़ और नीरोग बनाकर अपचन, बद्धकोष्ठ और स्वप्नदोष आदि रोगों को दूर करती है। पेट की चर्बी को भी कम करती है। अधिक देर तक करने से कुण्डलिनी की जागृति में सहायक बनती है।

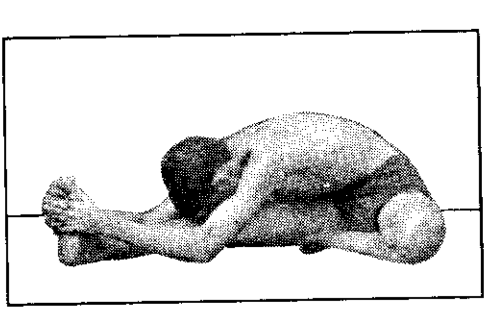

बन्ध

यौगिक ग्रन्थों में मुख्यतया तीन बन्ध माने गए हैं । मूल बन्ध, जालन्धर बन्ध तथा उड्डियान बन्ध । नाभि, पेशाब-सम्बन्धी इन्द्रियाँ, गुर्दे तक के भागों की सब क्रियाएँ मूल बन्ध द्वारा, छोटी-बड़ी आँतें, पेट, लीवर, पेनक्रियाज़ और पेट तक के अंग उड्डियान बन्ध से, तथा छाती, फेफड़े, हृदय, कण्ठ और सिर के सब भाग जालन्धर बन्ध द्वारा अनुशासित, प्रभावित तथा नियन्त्रित होकर स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनते हैं । संक्षेप में गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय का यथाशक्ति ऊपर से आकर्षण करना **मूल बन्ध** कहलाता है । जालन्धर बन्ध ठोडी को कण्ठकूप, अर्थात् गले के खड्डे में जाकर सटा देने को **जालन्धर बन्ध** कहते हैं ।

१. उड्डियान-बन्ध, बैठकर

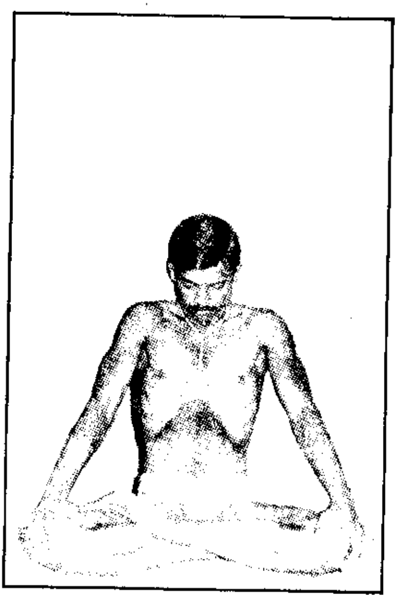

पद्मासन लगाकर बैठ जाएँ, फिर श्वास को जोर से नासिका द्वारा बाहर निकालकर पेट को जहाँ तक हो सके अन्दर ले जाएँ । यथाशक्ति इसी अवस्था में रहकर फिर श्वास को अन्दर ले जाएँ। यह एक उड्डियान हुआ। इसी प्रकार कम-से-कम तीन बार करें । समय १ से २ मिनट तक ।

लाभ—खड़े होकर उड्डियान के समान ।

२. उड्डियान-बन्ध, खड़े होकर

विधि—पैरों में दो फुट का अन्तर छोड़कर और घुटनों पर हाथों की हथेलियाँ रखकर खड़े हो जाएँ, घुटनों को कुछ आगे की ओर झुका दें। इसी अवस्था में श्वास को जोर से बाहर निकालकर पेट को जहाँ तक हो सके अन्दर ले जाएँ। जब तक श्वास बाहर रह सके पेट को अन्दर दबाए रखें। फिर श्वास को

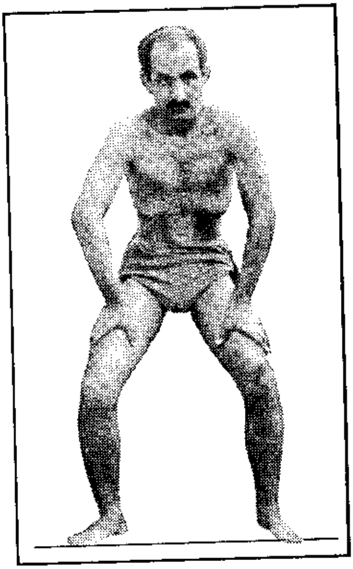

लेकर और पुनः श्वास को बाहर निकालकर उसी प्रकार पेट को अन्दर ले जाएँ। इस प्रकार कम-से-कम तीन बार करें। उड्डियान प्रातः शौच से निवृत्त होकर ही करना चाहिए। सायंकाल नहीं। समय १ से २ मिनट तक।

लाभ—पेट की चर्बी कम होकर, पेट अपनी असली हालत में आ जाता है, अपान वायु की निवृत्ति होती है। पेट के सब यन्त्र सुदृढ़ तथा स्वस्थ बनते हैं।

ये तीनों बन्ध प्राणायाम के भी एक मुख्य अंग हैं। पूरक के समय मूल बन्ध[१], कुम्भक के समय जालन्धर[२] बन्ध तथा रेचक के समय उड्डियान[३] बन्ध किया जाता है।

---

१. अर्थात् गुदा तथा मूत्रेन्द्रिय को ऊपर आकर्षण करना।

२. अर्थात् ठोड़ी को गले के खड्डे पर जमा देना।

३. पेट को यथाशक्ति ऊपर तथा अन्दर खींचना।

क्रियाएँ

१. वस्त्र-नेती

विधि—कच्चे सूत को लेकर इसका पतला-सा धागा इस प्रकार से बटें कि उसका आधा भाग लगभग एक बालिश्त बट जाय और आधा हिस्सा बिना बटे रहे। फिर बटे हुए भाग पर सफेद या पीली स्वच्छ मोम गर्म करके चढ़ा दें। मोम के सूख जाने पर प्रतिदिन प्रातःकाल नेती को जल से भिगोकर बटे हुए भाग की ओर से सिरे को कुछ टेढ़ा करके शनैः-शनैः नासिका द्वार से

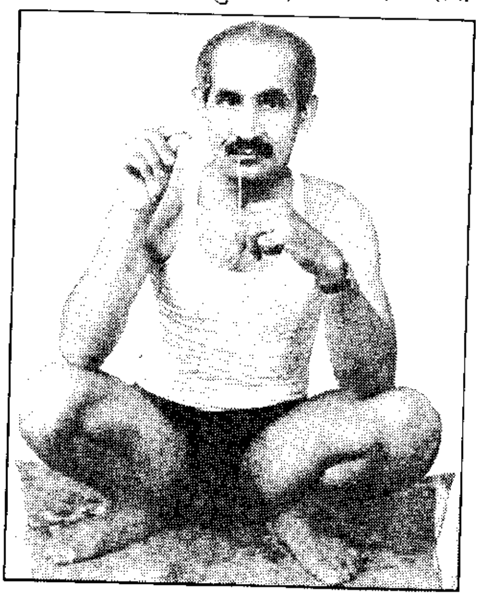

अन्दर ले-जाने का प्रयत्न करें। जब अभ्यास करते-करते नेती का अग्र-भाग कंठ तक आ जाय, तब सीधे हाथ के अँगूठे तथा तर्जनी अँगुली को मुख में ले-जाकर नेती की नोक को पकड़ लें और शनैः-शनैः मुख द्वारा बाहर निकाल दें। कुछ दिन तक इसी प्रकार दोनों नासिका-द्वारों से अभ्यास करें। जब बहुत सुगमतापूर्वक बिना किसी कष्ट के नेती मुख से निकलने लग जाए, तब पूरी

नेती को मुख से न निकालकर दोनों सिरों को हाथों से पकड़कर धीरे-धीरे घर्षण करें अर्थात् अन्दर-बाहर ले जाएँ। पहले-पहले नेती करने से यदि गले में कुछ खारिश-सी महसूस हो तो नेती करने के पश्चात् पाव-भर गर्म दूध पी लिया करें।

लाभ—जल-नेती के समान। नं० ३ में देखिए।

२. वस्त्र-धौती

विधि—धौती भी दो प्रकार की होती है—वस्त्र-धौती तथा जल-धौती। **वस्त्र-धौती**—एक चौबीस फीट लम्बा और पाँच या छः अंगुल चौड़ा बढ़िया मलमल का वस्त्र लेकर उसे चारों ओर मशीन से बारीक सिलवा लें, और प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट उस वस्त्र को जल से भिगोकर उसका सिरा

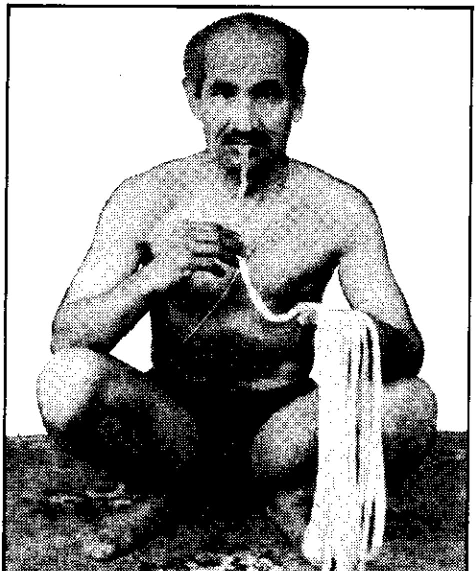

कंठ के पास जिह्वा-मूल के अन्दर रखकर उसे शनैः-शनैः निगलते हुए अन्दर ले-जाने का प्रयत्न करें। जब अभ्यास करते-करते सारी धौती अन्दर जाने लग जाय, तब उसका बाहर का सिरा दाँतों से मजबूत पकड़कर नौली करें, अर्थात् नलों को कम-से-कम तीन बार दाएँ-बाएँ घुमाएँ। फिर शनैः-शनैः बाहर के

सिरे को पकड़कर वस्त्र को बाहर निकालने का प्रयत्न करें। धौती कंठ के मध्य से न निकालकर उसे एक ओर से निकालना चाहिए और यदि निकालते समय कभी धौती मध्य में अड़ जाय और बाहर न निकले तो निकालने में जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए, प्रत्युत दुबारा उसे अन्दर निगलना शुरू कर देना चाहिए और फिर पहले की तरह बाहर निकालना प्रारम्भ कर देना चाहिए। इससे यदि अन्दर धौती में सल आदि पड़ गया होगा तो वह निकलकर पुनः सरलता से धौती बाहर निकलने लगेगी।

लाभ—पेट का दूषित रस दूर होकर पेट साफ हो जाता है। श्वास-प्रणाली से कफ की निवृत्ति होकर श्वास सुगमतापूर्वक आता-जाता है। खाँसी और दमा के लिए यह क्रिया अत्यन्त लाभकारी है। इससे रक्त शुद्ध होकर कुष्ठ आदि रोग दूर होते हैं। यह क्रिया भी प्रातःकाल निराहार अवस्था में ही करनी चाहिए।

३. जल-नेती

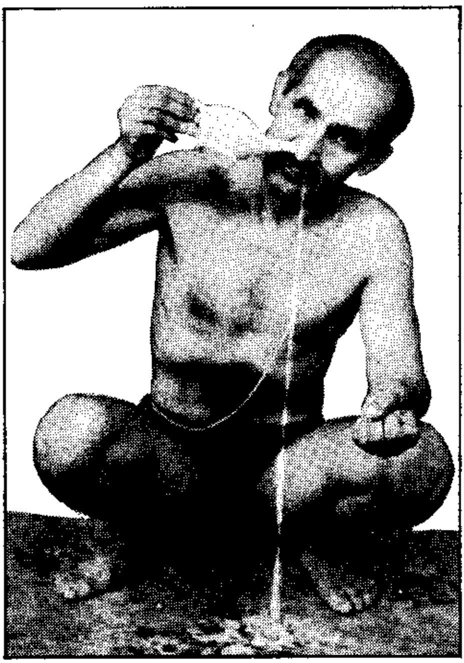

विधि—नेती दो प्रकार की है : जल-नेती तथा वस्त्र-नेती। **जल-नेती**—एक छोटा चाय का पात्र (Tea-Pot) या पीतल आदि का कोई अन्य ऐसा पात्र लें, जिसकी नली नाक के छिद्र में आ सके। उस पात्र में जल डालकर नाक के एक छिद्र में उसकी नली डाल दें और सिर को कुछ ऊँचा करके दूसरी ओर झुका दें तथा श्वास को जहाँ-का-तहाँ बन्द कर दें, अर्थात् एकदम रोक दें। इससे जल दूसरी नासिका के द्वार से बाहर निकलने लगेगा। इसी प्रकार दूसरी नासिका से भी करें।

लाभ—नकसीर, सिरदर्द, जुकाम, आँखों की कमजोरी, मस्तिष्क की गर्मी आदि रोग दूर होते हैं, बाल जल्दी सफेद नहीं होते। प्राणायाम करने से पहले यह क्रिया करने से प्राणायाम में बहुत सहायता मिलती है। यदि जुकाम जोर का हो जाय तो थोड़ा जल गुनगुना गर्म करके उसमें थोड़ा-सा नमक डाल दें तथा उससे जलनेती करें या नाक से पानी पीकर मुख से निकाल दें। इससे जुकाम में बहुत जल्दी लाभ पहुँचता है।

४. जलधौती

विधि—एक कड़ी और ऊपर से चिकनी तीन फुट रबर की नली (जैसी कि एनिमा पात्र में लगी रहती है) लें। उसे पहले पानी में भली प्रकार उबाल लें और फिर प्रातःकाल खाली पेट उसके एक सिरे को गले के पास ले जाकर शनैः-शनैः निगलने का प्रयत्न करें। जब अभ्यास करते-करते न्यून से न्यून आधी नली अन्दर जाने लग जाय, तब लगभग डेढ़-दो सेर के थोड़े उष्ण जल में आधा तोला नमक

डालकर उसे पी जाएँ, फिर रबर की नली को अन्दर ले जाएँ। आधी के लगभग नली अन्दर चली जाने पर अन्दर का पानी नली द्वारा बाहर निकलने लगेगा। जब लगभग सब जल बाहर निकल जाय तो नली को बाहर निकाल दें। यदि जल पेट में से सब न निकले तो नली को थोड़ा आगे-पीछे करें, इससे सब जल निकल जाएगा। फिर नली को बाहर निकालकर नौली क्रिया कर लें। इससे यदि कुछ जल अन्दर रह भी गया होगा तो वह पेट और आँतों को साफ करने तथा दस्त खुलकर लाने में सहयोग देगा।

लाभ—वस्त्र-धौती के समान। बद्धकोष्ठ की निवृत्ति विशेष लाभ। यह क्रिया स्त्रियों के मासिक धर्म सम्बन्धी कष्टों को भी दूर करती है।

५. नौली

विधि—उड्डियान बन्ध सिद्ध हो जाने पर, उसी अवस्था में पेट के दोनों मसलों (नलों) को वज्रासन पर बैठकर बाहर निकालने का प्रयत्न करें। जब वज्रासन पर नल भली प्रकार से निकलने लग जाएँ, तब खड़े होकर निकालने का प्रयत्न करें। जब दोनों मसल निकलते-निकलते बारीक हो जाएँ तब एक मसल को अन्दर दबाकर बारी-बारी से एक-एक को निकालने का प्रयत्न करें।

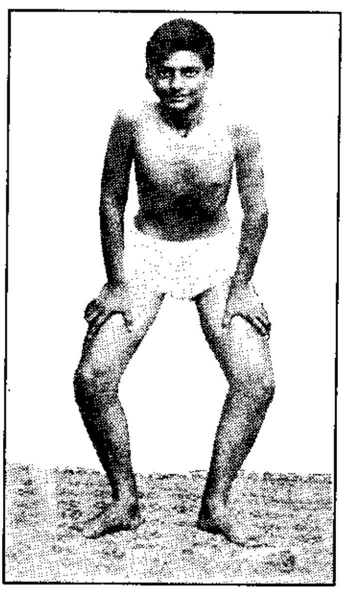

जब एक-एक अच्छी तरह निकलने लगे तो फिर मसलों को दाएँ-बाएँ घुमाने का प्रयत्न करें। यह क्रिया जहाँ योग की क्रियाओं में सर्वश्रेष्ठ है, वहाँ कठिन भी है। अतः इसे किसी अनुभवी गुरु से ही सीखना चाहिए। नौली सर्व क्रियासु मौली।

लाभ—यह क्रिया पेट की बीमारियों के लिए सबसे अधिक लाभप्रद है। पेट की कोई बीमारी नहीं जो इसके नियमपूर्वक करने से दूर न हो। कब्ज तो इसके करनेवाले के पास ही नहीं फटकती। यह क्रिया वात, पित्त तथा कफ तीनों दोषों को दूर करनेवाली है। यदि

कुछ खान-पान में कुपथ हो जाने पर पेट में भारीपन या कब्ज प्रतीत हो तो पाव-भर के लगभग कुछ उष्ण जल में थोड़ा नमक डालकर पी लें और फिर नौली करें। एक घण्टा पश्चात् बिल्कुल खुलकर दस्त हो जायगा और पेट बिल्कुल हल्का हो जायगा। नौली के आ जाने पर फिर 'बस्ती' क्रिया सीखना भी बिल्कुल सरल हो जाता हैं।

६. बस्ती

विधि—नौली भली प्रकार आ जाने पर आठ अंगुल लम्बी और लगभग दो अंगुल चौड़ी एक गोल लकड़ी की नली बनवा लें। सेर-सवा सेर

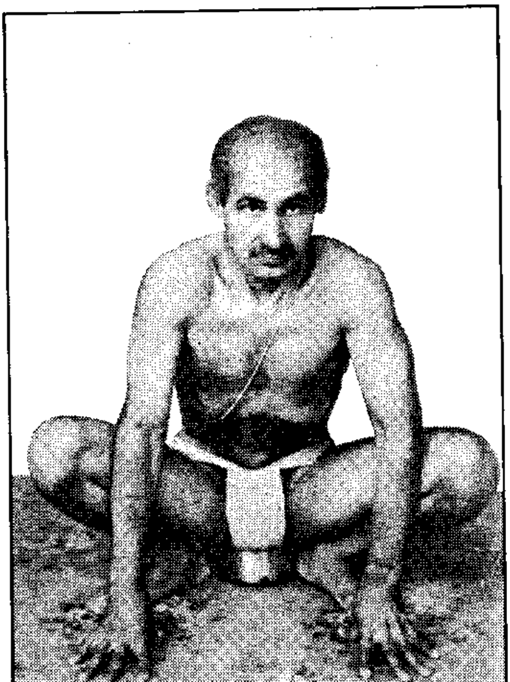

के करीब पानी को गर्म करके उसमें थोड़ा नमक और हो सके तो थोड़ा नींबू निचोड़ दें और उस पानी के पात्र को नीचे रखकर बैठ जाएँ। लकड़ी की भोंगली (नली) के ऊपर थोड़ा तेल या वैसलीन लगाकर चार अंगुल तक गुदा के रास्ते से अन्दर ले जाएँ और शेष चार अंगुल पानी में रखें। फिर हाथों को

भूमि पर टेककर एकदम जोर से नौली करें, अर्थात् नलों को बाहर निकालें। नल निकलते ही तत्काल पानी ऊपर आँतों में चढ़ जायगा। नल छोड़ने से पहले ही झट भोंगली बाहर निकाल लें, नहीं तो पानी बाहर निकल जायगा। यदि पानी अधिक चढ़ाना हो तो फिर वैसा ही करें, किन्तु दुबारा भोंगली अन्दर ले जाते समय उसके छेद को अंगुली से बन्द कर दें और नल निकालते ही अँगुली हटा लें। जब पानी अन्दर चला जाय तब नौली करें अर्थात् नलों को अच्छी प्रकार दाएँ-बाएँ घुमाएँ। जब दस्त का खूब वेग मालूम हो तब शौच (पाखाने) जाएँ।

लाभ—इससे पेट और आँतें बिल्कुल साफ हो जाती हैं, क्षुधा की वृद्धि होती है, कब्ज तथा पेट के अन्य विकार दूर हो जाते हैं। रक्त की शुद्धि तथा तत्सम्बन्धी फोड़ा, फुन्सी, दाद, खाज आदि रोग दूर होते हैं। इस क्रिया को लगातार एक मास करने से रक्त बिल्कुल शुद्ध होकर चेहरा तथा समस्त शरीर तेजस्वी तथा सुन्दर बन जाता है। तिल्ली, यकृत के रोग तथा जलोदर आदि रोगों के लिए भी हितकर है। इससे शरीर की सब धातुएँ शुद्ध होकर समस्त इन्द्रियों और मन में प्रसन्नता तथा शक्ति का अनुभव होता है। इस क्रिया को भी किसी अनुभवी गुरु से ही सीखना चाहिए।

स्त्रियाँ और यौगिक व्यायाम

आज सभ्य संसार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में रोगों की मात्रा अधिक बढ़ती जा रही है। शायद ही कोई सौभाग्यशालिनी स्त्री होगी जो किसी-न-किसी रोग-विकार से आक्रान्त न हो। श्वेत-प्रदर, हिस्टीरिया, मासिकधर्म-विकार, सिरदर्द, कमर-पीड़ा, राजयक्ष्मा आदि अनेक बीमारियों ने

अर्ध मत्स्येन्द्रासन

स्त्री-जाति को घेर रखा है। बाहर से स्वस्थ और सुन्दर दिखनेवाली स्त्री से भी यदि पूछा जाए तो वह भी किसी-न-किसी रोग से आक्रान्त ही अपने को बताएगी। आज से कुछ वर्ष पूर्व अजमेर के एक सम्भ्रांत परिवार से मेरा निकट सम्पर्क था। इस परिवार की पुत्र-वधू देखने में अत्यन्त स्वस्थ, सुन्दर तथा शरीर से हृष्ट-पुष्ट थी। उसे देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह देवी भी किसी रोग से आक्रान्त होगी। एक दिन उसके पतिदेव ने दु:ख-भरे शब्दों में कहा—"आचार्य जी ! मैं तो अपनी पत्नी की बीमारी से तंग आ गया हूँ। कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि जिस दिन वह कह सके कि आज तो मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। कोई-न-कोई बीमारी उसके पीछे लगी ही रहती है।" मैं उस देवी के पति की यह बात सुनकर चकित रह गया कि जिस देवी को मैं सर्वथा नीरोग तथा स्वस्थ समझता था, वह भी एक नहीं प्रत्युत नाना रोगों का धाम बन रही है। इसी से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि आज

भारतीय नारी नाना रोगों की क्रीड़ा-स्थली बनकर कितना दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है !

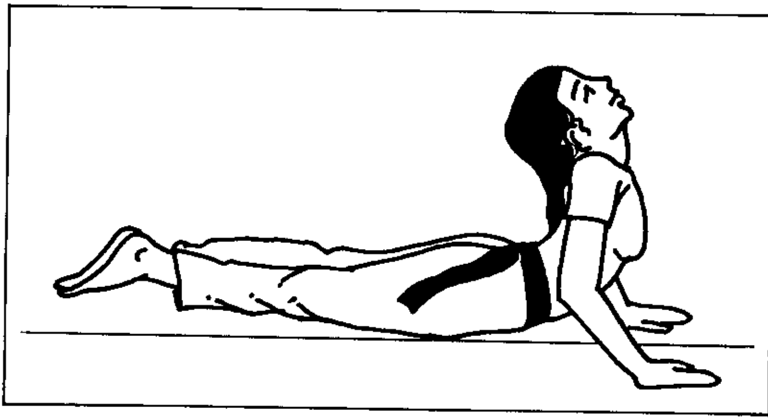

भुजंगासन

भारतीय नारी के रोगी होने के मेरे विचार में दो मुख्य कारण हैं—एक पर्दा-प्रथा तथा दूसरा शारीरिक श्रम का अभाव। कई प्रान्तों में राजपूत आदि परिवारों की देवियाँ पर्दे की कुप्रथा के कारण घर से एक कदम भी बाहर चलकर जा नहीं सकतीं। ताजा वायु, सूर्य का प्रकाश वास्तव में उनके लिए एक दुर्लभ वस्तु बन गया है। कई साहित्यकारों ने पर्दा-परायण परिवारों की देवियों को असूर्यम्पश्या नाम से पुकारा है। आज वास्तव में ऐसी पर्दा-परायण देवियाँ पर्दे की कुप्रथा के कारण असूर्यम्पश्या ही बन रही हैं। घर की चारदीवारी में बैठे-बैठे बिना हाथ-पैर हिलाए वे बेचारी नाना प्रकार के भयंकर रोगों से आक्रान्त होकर सारा जीवन नारकीय यातनाओं में बिता रही हैं। कई पर्दा-परायण रमणियाँ तो शर्म के मारे अपने पारिवारिक परिजनों के सम्मुख अपने भयंकर रोगों को प्रकट भी नहीं कर सकतीं और अन्दर-ही-अन्दर नाना रोगों से जर्जरित होकर दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही हैं।

स्त्री-जाति के रोगाक्रान्त होने का दूसरा कारण है—शारीरिक श्रम का अभाव। आजकल यह भयंकर राजरोग शहर की देवियों में और विशेषकर शिक्षित तथा धनाढ्य परिवार की स्त्रियों में बहुत बढ़ता जा रहा है। आज शिक्षित तथा धनाढ्य परिवार की महिलाएँ अपने हाथ से घर के कामकाज को

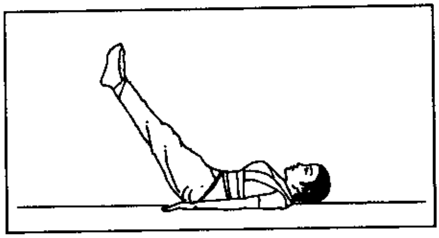

उत्तान पादासन

करना अपना घोर अपमान समझने लगी हैं। अपने हाथ से चक्की पीसना, पानी भरना, कपड़े धोना, बर्तन माँजना तो पृथक् रहा, भोजन बनाने में भी वे अपना घोर अपमान समझती हैं। ऐसी अवस्था में, जबकि उन्हें आहार तो गरिष्ठ और पौष्टिक मिले और शारीरिक परिश्रम वे किसी प्रकार का करें नहीं तो वे उस खाए हुए पौष्टिक तथा गरिष्ठ आहार को पचाकर तथा उसे अपने शरीर का अंग बनाकर अपने को स्वस्थ, नीरोग तथा बलवान् कैसे बना सकती हैं? यही कारण है कि आज भारतीय नारी स्वस्थ तथा सुन्दर परिवार-पोषक गृहिणी न बनकर नाना रोगों से आक्रान्त अपने तथा अपने परिवार के लिए संग्रहणी बन रही है।

भगवान् ने स्त्री को स्वभावतः ही स्वस्थ तथा सुन्दर बनाया है। अतः यदि वे चाहें तो थोड़ा-सा शारीरिक परिश्रम करने तथा स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों का पालन करने से ही अपने को स्वस्थ, सुन्दर तथा बलवती बना सकती हैं। यदि वे अपने घर के कामकाज के साथ-साथ ही थोड़ा-सा यौगिक व्यायाम भी प्रतिदिन नियमपूर्वक कर लिया करें तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि वे कभी भी बीमार न पड़ेंगी। उन्हें किसी भी प्रकार की बीमारी नहीं सताएगी और वे सदा स्वस्थ, सुन्दर तथा नीरोग बनी रहेंगी। जितना समय वे अपने को सुन्दर बनाने के लिए स्नो, पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक आदि लगाने और नाना प्रकार के चमकीले, भड़कीले वस्त्र पहनने और नए फैशन की केश-रचना करने में लगाती हैं, यदि उससे आधे समय में भी वे योग के कुछ सरल आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएँ कर लिया करें तो निश्चित रूप से वे सदा ही स्वस्थ, सुन्दर और नीरोग बनी रहेंगी। फिर उन्हें अपनी कृत्रिम तथा केवल दिखावटी सौन्दर्य बनाने के लिए कृत्रिम साधनों की आवश्यकता नहीं रहेगी। वे वास्तव में सच्चे सौन्दर्य की

स्वामिनी बन जाएँगी। कृत्रिम साधनों से सौन्दर्य-साधन की अपनी इच्छुक बहनों से मैं पूछता हूँ कि सीता वन में कौन-से क्रीम, स्नो और पाउडर लगाया करती थीं? कौन-सी नायलोन की साड़ियाँ पहना करती थीं कि जिसके सौन्दर्य को देखकर अनेक सुन्दर रमणियों का पति रावण भी चकित और अवाक् रह गया था? अभी हाल ही में योरुप की एक प्रसिद्ध, अत्यन्त सुन्दर तथा स्वस्थ सिने तारिका ने अपने एक लेख में लिखा है—"मेरे सौन्दर्य तथा उत्तम स्वास्थ्य का एकमात्र कारण योगाभ्यास है। मैं नियमपूर्वक प्रतिदिन योग के आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएँ करती हूँ। यही कारण है कि मेरा शरीर हल्का, स्वस्थ और सुन्दर है।" सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य-प्रेमी देवियों के लाभार्थ हम उपर्युक्त देवी का पूरा लेख नीचे उद्धृत कर रहे हैं। इससे जहाँ आपको स्वास्थ्य और सौन्दर्य-प्राप्ति का वास्तविक रहस्य मालूम होगा, वहाँ सिने कलाकारों के वास्तविक स्वरूप का भी आपको पूर्ण परिचय मिल जाएगा।

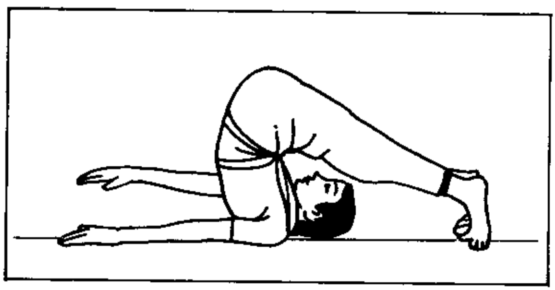

हलासन

"मेरा नाम मारग्रेट ब्राइन है। मैं १८ वर्ष की थी कि फिल्म-संसार में प्रविष्ट हो गई। मैंने अपने जीवन में कितनी ही फिल्मों में काम किया है। मेरी प्रसिद्धि इस असीमित और विस्तृत विश्व के अज्ञातनामा समाचारपत्रों तक भी जा पहुँची। मैंने करोड़ों रुपए कमाए और अपने हाथों से लुटाए हैं। परन्तु धन और कला से मुझे कभी आत्मिक सन्तोष की उपलब्धि नहीं हो सकी। अतएव अब मुझे अपनी समाप्त न होने वाली दौलत से घृणा हो गई है। मैंने विचारा कि वह साधन ही क्यों न समाप्त कर दूँ, जिसके कारण मुझे यह धन और ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है!

अतएव मैंने अभिनय को तिलांजलि दे दी है। अब मैं अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण और सन्तोषजनक जीवन यापन करती हूँ। इस अवधि में कई (ख्यातनाम) कलाकारों और असीमित धन के स्वामियों ने मुझसे विवाह करने के लिए पेशकश की। मैंने उन पर कोई ध्यान देने की अपेक्षा उन्हें निराश ही कर दिया।

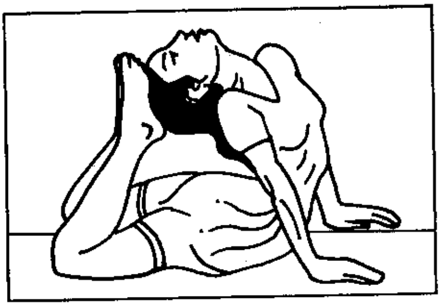

भुजंगासन नं० २

यदि मैं उन सब लोगों के जीवन का चित्र एक-एक करके आपके समक्ष उपस्थित करूँ तो आप अवश्य आश्चर्यचकित रह जाएँगे कि विश्व में ऐसी भी कोई सौभाग्यशाली युवती होगी जिसे इतने अधिक धनवान् लोग अपनी पत्नी बनाने के लिए अधीर हों। परन्तु उनकी जीवन-कहानियाँ सुनकर आप उनसे घृणा करने लग जाएँगे। जिन कलाकारों को आप फिल्मों में देख-देखकर प्रसन्न होते हैं और उनके भक्त बन जाते हैं, उनका काम केवल सुन्दर युवतियों से प्रेम-प्रदर्शन करना मात्र ही है। उन्हें वे अस्थायी रूप में अपनी पत्नियाँ बनाते हैं, उनके सौन्दर्य और यौवन से जी भरकर खिलवाड़ करते हैं, तथा बाद में जब वह यौवन की वसंती छटा पतझड़ के रूप में बदल जाती है तो ये दीवाने भी उनकी उपेक्षा-मात्र ही नहीं करते अपितु उन्हें निस्सहाय अवस्था में छोड़ देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखलाते।

शायद ही कोई ऐसा फिल्म-अभिनेता होगा जिसने अपनी पहली पत्नी को छोड़कर दूसरा विवाह न किया हो। मैं भी सुन्दरी हूँ और युवती भी। जिससे चाहूँ विवाह कर सकती हूँ, परन्तु मैंने फिल्मी कलाकारों के जीवन का घिनौना रूप स्वयं देखा है। उसे देखते हुए मैंने निर्णय किया है कि विवाह करूँगी ही नहीं। और यदि कभी किया भी तो किसी फिल्मी कलाकार से तो कदापि न करूँगी।

विवाह में रखा ही क्या है? मैं ढलती जाऊँगी। परन्तु अभी ३० वर्ष की आयु में भी उतनी ही सुन्दर और स्वस्थ हूँ, जितनी १८ वर्ष की आयु में थी।

लोग प्रश्न करते हैं कि मेरा सौन्दर्य, मेरा यौवन, मेरा आकर्षण एक सदाबहार पुष्प के तुल्य क्यों है? यह एक ऐसा रहस्य है जिसे मैं अब छिपाना नहीं चाहती।

मैं जब फिल्म-जगत् में प्रविष्ट हुई थी, तो मैं कुछ अधिक सुन्दर न थी। मेरे बदन में चपलता और फुर्ती का नाम न था। मुझे एक ऐसी महिला से भेंट करने का सौभाग्य मिला जिसने न्यूयॉर्क में एक योग आश्रम खोल रखा है। वहाँ महिलाओं को योग-साधन सिखाया जाता है।

मैंने भी उस आश्रम में दाखिल होकर योग-साधन किया। मैं प्रतिदिन योगासन का अभ्यास करती हूँ।

सर्वप्रथम भगवान् भुवन भास्कर के उदित होने से पूर्व ही मालिश करके गर्म जल से स्नान करती हूँ। तदुपरांत सारे शरीर को सूखे खुरदरे कपड़े से रगड़ती हूँ। फिर लंगोट पहनकर बैठ जाती हूँ और योग-साधनों का अभ्यास करती हूँ। मेरे सौन्दर्य, मेरे स्वास्थ्य और मेरे यौवन का यही एक रहस्य है। मेरी खुराक भी सादा है और मैं गाय का दूध अधिक मात्रा में पीती हूँ।"

स्वास्थ्य प्रेमी महिलाओं को उपर्युक्त योरुपीय सिने-तारिका के जीवन से शिक्षा प्राप्त कर आज से ही यौगिक व्यायाम प्रारम्भ कर देना चाहिए।

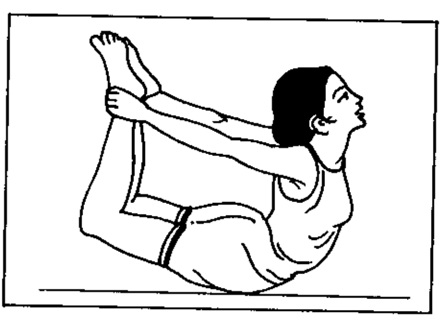

धनुरासन

पारिवारिक जीवन को सुन्दर पुष्प के समान विकसित और सुखमय जितना स्त्रियाँ बना सकती हैं, उतना पुरुष नहीं। किंतु यह तो तभी सम्भव है

जब वे स्वयं शरीर, मन, आत्मा तथा बुद्धि से विकसित हों। शारीरिक रोगों तथा निर्बलताओं से सर्वथा रहित हों। शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास का तथा शारीरिक रोगों और निर्बलताओं को दूर करने का एकमात्र मुख्य साधन है योग। अतः योग की जितनी अन्य ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के लिए आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक गृहस्थ-आश्रम के लिए है। इसलिए आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द अपनी पुस्तक 'संस्कार विधि' के गृहस्थ प्रकरण में लिखते हैं—

"प्रत्येक गृहस्थी को चाहिए कि वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर शहर से बाहर एकांत स्थान में जाकर योगाभ्यास करे और फिर घर में आकर सन्ध्योपासना आदि नित्य कर्म करे।" मध्यकालीन कुछ रूढ़िवादी लोगों ने योग को केवल साधु-संतों की वस्तु ही बना दिया था। खेद है कि कुछ लोग अब भी ऐसा ही समझते हैं। किंतु यह सर्वथा गलत धारणा है। यदि ऐसा ही होता तो रुक्मिणीपति कृष्ण, पार्वती-पति शंकर तथा अन्य ऋषि-मुनि आदि हमारे प्राचीन गृहस्थाश्रम-सेवी महापुरुष न केवल योगी प्रत्युत योगिराज और योगशिरोमणि न कहलाते। वास्तव में योगानुष्ठान के लिए उपयुक्त आहार-व्यवहार आदि की अनुकूलता जितनी गृहस्थाश्रम में मिलना सम्भव है उतनी अन्य आश्रमों में मिलना सम्भव ही नहीं। अतः स्वास्थ्याभिलाषी पुरुष तथा स्त्री दोनों को योग की आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएँ नियमित रूप से अवश्य करनी चाहिएँ और यदि आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा है तो यम-नियमों का पालन करते हुए ध्यान, धारणा आदि का भी अभ्यास करना चाहिए।

स्त्रियों के लिए तो सिवाय यौगिक व्यायाम के और कोई उपयुक्त व्यायाम है ही नहीं, क्योंकि दण्ड, बैठक आदि अन्य व्यायाम अधिक परिश्रम-साध्य हैं और उन्हें कोमलांगी महिलाएँ नहीं कर सकतीं। अतः अल्प परिश्रम-साध्य यौगिक व्यायाम ही उनके लिए अधिक उपयुक्त तथा लाभप्रद है। इस सम्बन्ध में केवल मैं ही नहीं, प्रत्युत 'स्टेट्समैन' पत्र के २३-१-६१ के अंक में एक देवी ने भी अपना अनुभव निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—

"योगासन-विषय पर गत कुछ वर्षों से पर्याप्त चर्चा हो रही है। मैं गत २० वर्षों से योगासन-अभ्यास निरन्तर कर रही हूँ और उससे मैंने उत्तम स्वास्थ्य-लाभ किया है। मुझे एक दिन के लिए भी बुखार नहीं हुआ और न

ही कभी सिर-दर्द या कमर-दर्द की शिकायत हुई, यद्यपि स्त्रियाँ प्राय: ऐसे रोगों से सदैव ही पीड़ित रहती हैं। यही नहीं, मैं तो अपने अनुभव से यह भी मानने लगी हूँ कि योगासन-अभ्यास स्त्री-वर्ग के लिए सबसे अधिक लाभकारी है। हमें प्रसन्नता है कि प्राच्य योगविद्या का पुन: प्रकाश हो रहा है और आधुनिक शिक्षित व्यक्ति इस विद्या के लाभ अनुभव करने लगे हैं।

—कुमारी पी० एम० ब्लेकबर्न, बारकपुर

हम यहाँ कुछ स्त्रियोपयोगी आसन तथा प्राणायाम आदि योग की सरल क्रियाएँ दे रहे हैं। इनमें से नमूने के तौर पर पाँच-छ: आसनों के चित्र भी दिए गए हैं। शेष क्रियाओं की विधि, लाभ तथा चित्र इसी पुस्तक में अथवा मेरी 'योगासन' तथा 'प्राणायाम' नामक पुस्तकों में देख सकते हैं। स्वास्थ्य-प्रेमी देवियाँ उन्हें तत्तत् स्थानों में देखकर उनमें से जो आसन आदि अपने स्वास्थ्य के लिए अनुकूल तथा बीमारी के लिए उपयोगी समझें, उन्हें पूर्ण श्रद्धा तथा आस्था से नियमपूर्वक करना प्रारम्भ कर दें। उन्हें इन यौगिक क्रियाओं से अवश्य अशातीत लाभ होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

स्त्रियों के लिए उपयोगी आसन आदि क्रियाएँ

आसन

१. अर्ध उत्तानपादासन, २. पूर्ण उत्तानपादासन, ३. अर्ध पवनमुक्तासन, ४. पूर्ण पवनमुक्तासन, ५. पश्चिमोत्तानासन, ६. ताड़ासन, ७. पादांगुष्ठासन, ८. सर्वांगासन, ९. हलासन, १०. धनुरासन, ११. अर्धशलभासन, १२. कर्णपीड़ासन, १३. मत्स्यासन, १४. अर्धमत्स्येन्द्रासन, १५. त्रिकोणासन, १६. भुजंगासन नं० १।

मुद्रा—योगमुद्रा नं० १, क्रिया—जलनेती २—जल धौती, प्राणायाम—१—उज्जायी २—लोम विलोम।

यौगिक व्यायाम के स्त्रियोपयोगी नियम

१. यह आवश्यक नहीं कि ऊपर अंकित सभी आसन, प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएँ प्रत्येक स्त्री करे। प्रत्युत इनमें से अपने रोग, अवस्था तथा सामर्थ्य के अनुसार उपर्युक्त क्रियाओं में से चुनाव

करके यौगिक क्रियाएँ करना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

२. प्रारम्भ में हल्के तथा सुगमतापूर्वक हो सकनेवाले आसन करने चाहिएँ और वे भी एक-दो बार ही। पश्चात् धीरे-धीरे कठिन आसन आरम्भ करें और आसनों के करने की संख्या तथा समय को बढ़ाते जाना चाहिए।
३. भोजन हल्का, पौष्टिक तथा सुपच होना चाहिए। सड़े, गले, बासी तथा अधिक मिर्च-मसाले और खटाई वाले पदार्थों का सर्वथा बहिष्कार कर देना चाहिए।
४. गर्भ के तीसरे महीने के पश्चात् तथा प्रसव के प्रथम एक या डेढ़ मास तक और मासिक धर्म की अवस्था में स्त्री को आसन नहीं करने चाहिएँ।
५. उन सब नियमों का भी पालन करना चाहिए जोकि नीचे यौगिक व्यायाम करनेवालों के लिए दिए गए हैं।

यौगिक व्यायाम करनेवालों के लिए उपयोगी नियम

१. आसन, प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएँ, जहाँ तक हो सके किसी यौगिक क्रियाओं के अनुभवी महानुभाव से विधिपूर्वक सीखकर ही करनी चाहिएँ।
२. यदि कोई अनुभवी योगी न मिल सके तो किसी अनुभवी महानुभाव की बनाई एतद्-विषयक पुस्तक में दिए चित्रों तथा लिखी विधि के अनुसार ही करना चाहिए।
३. यौगिक व्यायाम करनेवाले का आहार पौष्टिक तथा सात्त्विक होना चाहिए।
४. यौगिक आसन दो प्रकार के हैं—एक Tern अर्थात् अनेक बार करने के तथा दूसरे Time अर्थात् एक ही बार कुछ समय तक करने के। जो Tern अर्थात् अनेक बार करने के आसन हैं, उन्हें प्राणायामपूर्वक अर्थात् आसन करने से पहले नासिका द्वारा श्वास को अन्दर भर लेना चाहिए और आसन छोड़कर श्वास निकाल देना चाहिए। इसी प्रकार दुबारा करना चाहिए।
५. कभी-कभी सप्ताह में एक-दो बार तेल की मालिश अवश्य करनी

चाहिए। मालिश करने से जहाँ शरीर बलवान्, सुन्दर, सुडौल तथा फुर्तीला बनता है, वहाँ आसनों के करने में भी बहुत सुगमता पड़ती है।

६. यौगिक व्यायाम तथा इतर दण्ड-बैठक आदि व्यायामों में कुछ भी विरोध नहीं है। प्रत्युत दण्ड-बैठक आदि व्यायामों में जो स्नायुओं के कड़ा तथा सख्त हो जाने का दोष है, उसे यौगिक व्यायाम दूर कर देता है। अत: एकसाथ दोनों व्यायाम भी किए जा सकते हैं, किंतु यौगिक व्यायाम तथा इतर व्यायाम के मध्य कम-से-कम ५-७ मिनट का अन्तर अवश्य रखना चाहिए। अथवा यदि समय हो तो एक प्रकार का व्यायाम सायंकाल तथा दूसरा प्रात:काल करना उचित है।

७. यौगिक व्यायाम बालिकाएँ तथा स्त्रियाँ भी कर सकती हैं, किंतु गर्भवती स्त्री को तीन मास की गर्भावस्था के पश्चात् योगासन नहीं करने चाहिएँ। हाँ, वे प्राणायाम कर सकती हैं।

८. जो मनुष्य अपने जिस अंग को सुन्दर, सुडौल तथा सशक्त बनाना चाहता है, या शरीर के जिस अंग के रोग को दूर करना चाहता है, उसे उसी प्रकार के योगासनें का चुनाव करके उन्हें करते समय अपनी संकल्प-शक्ति को उसी अंग में केन्द्रित कर सुदृढ़ करना चाहिए कि इस आसन से मेरा यह अंग अवश्य बलवान्, सुन्दर, सुडौल तथा नीरोग बन रहा है।

९. योगासन स्नान करने के पश्चात् करना अधिक लाभप्रद है। क्योंकि स्नान के पश्चात् सारे शरीर में रुधिराभिसरण भली प्रकार होने से साधक शरीर के जिस अंग में चाहे रक्त का संचार कर सकता है।

१०. शीर्षासन के पश्चात् कुछ समय तक खड़े होकर दीर्घ-श्वास अर्थात् बिना कुम्भक का उज्जायी प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। इससे शीर्षासन द्वारा फेफड़ों में पहुँचा हुआ रक्त शुद्ध होकर पुन: सारे शरीर में फैलकर शरीर को नीरोग तथा रक्त-विकारों से मुक्त कर देता है।

११. शीर्षासन करते समय सिर के नीचे कोई नरम चीज अवश्य रखनी चाहिए।

१२. जिनकी आँखें तथा हृदय बहुत कमजोर हैं, उन्हें शीर्षासन नहीं करना चाहिए। वे शीर्षासन का लाभ सर्वांगासन से ले सकते हैं।
१३. शीर्षासन अधिक-से-अधिक १२ मिनट तक करना चाहिए। यदि शीर्षासन के पश्चात् लगभग एक तोला गौ का घृत गर्म करके नासिका अथवा मुख से पी लिया जाय तो इससे बहुत लाभ पहुँचता है।[१]
१४. शीर्षासन प्रातःकाल अन्य आसनों के पश्चात् तथा सायंकाल पहले करना चाहिए।
१५. योगासन छोटे बालक-बालिकाएँ भी कर सकते हैं, परन्तु उन्हें प्रारम्भ में बहुत हल्के तथा सुगम आसन कराने चाहिएँ, कठिन नहीं।

यदि पाठक योगासन करते समय इन बातों का पूरा ध्यान रखेंगे तो उन्हें योगासन सदा लाभ ही पहुँचाएँगे, हानि कदापि नहीं।

---

१. जो सज्जन १२ मिनट से भी अधिक समय तक शीर्षासन करना चाहते हैं, उनके लिए तो यह बहुत ही आवश्यक तथा अत्यन्त लाभकारी है।

वृद्धावस्था दूर करने के अमोघ उपाय

प्रत्येक नर-नारी की सदैव यह इच्छा रहती है कि मैं कभी भी वृद्ध न होऊँ, प्रत्युत सदा ही युवा बना रहूँ। अर्थात् वृद्धावस्था सबके सम्मुख एक भयावह रूप धारण किए हुए है। वास्तव में यदि देखा जाय तो वृद्धावस्था इतनी भयानक या हानिकर नहीं, जितनी वृद्धावस्था की भावना भयावह या हानिकर है। एक स्त्री या पुरुष ५० या ६० वर्ष की प्रौढ़ावस्था में भी अपने अन्दर पूर्ण यौवनावस्था की भावना को जागृत कर स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनकर युवकों के समान अपने अन्दर उत्साह, आनन्द-बल, शक्ति तथा स्फूर्ति का अनुभव कर सकता है। इसके विपरीत यदि तीस-पैंतीस वर्ष के स्त्री-पुरुष के अन्दर भी वार्धक्य-भावना का भयावह भूत सवार हो गया है, तो वह इस भरी जवानी में भी न तो अपने को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग ही बना सकता है, और न ही उसके अन्दर उत्साह, आनन्द तथा शक्ति का संचार हो सकता है। अतः जो स्त्री या पुरुष यह चाहते हैं कि हम सदा बलवान् बने रहें, उन्हें अपने अन्दर से वृद्धत्व की विकृत-भावना को सर्वथा निकाल देना होगा। वास्तव में वृद्ध वही है, जिसके हृदय में आनन्द, उत्साह, हास्य, ताजगी, स्फूर्ति तथा जिंदादिली का सर्वथा अभाव हो गया है। विपरीत इसके जिस जीवन में उल्लास और उमंग है, जोश और जीवन है, आनन्द और उत्साह है, मदानगी और जिन्दादिली है, रवानगी और ताजगी है, वह वयसा वृद्ध होता हुआ भी वास्तव में जवान है। द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य ने लगभग सौ-सौ वर्ष की आयु में तथा भीष्म पितामह ने १७० वर्ष की आयु में महाभारत-युद्ध में वे कौशल तथा जौहर दिखाए थे कि लोग देखकर दंग रह गए। इसका एकमात्र कारण यहीहै कि इतनी बड़ी आयु में भी उन्होंने कभी अपने को वृद्ध समझा ही नहीं। वर्तमान युग में भी फ्रांस के एक १२० वर्ष के पैंशनर ने गवर्नमेंट को पत्र लिखा कि 'मुझे कोई काम दिया जाय। मैं आलसी और बेकार रहकर अपना जीवन व्यतीत नहीं करना चाहता। अब भी मेरे अन्दर इतनी शक्ति है कि मैं १० जवानों के बराबर अकेला कार्य कर सकता हूँ।'

प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक वस्तु अपनी परिपक्वावस्था में ही सबसे

अधिक आकर्षक, सुगन्धित और माधुर्य-युक्त हुआ करती है। आम या अन्य कोई फल पूर्णतया पक जाने पर ही तो सर्वाधिक आकर्षक, सुगन्धित तथा मिठास से भरपूर हुआ करते हैं, फिर मानव-जीवन ही इसका अपवाद क्यों बने ? वह भी क्यों न अपनी परिपक्वावस्था में पूर्व से भी अधिक आकर्षक, स्वस्थ, सुगन्धित तथा माधुर्यमय बने !

कई शरीर-शास्त्रियों का तो यहाँ तक कहना है कि वास्तविक जीवन तो अड़तालीस वर्ष के पश्चात् ही प्रारम्भ होता है। बाल्यावस्था के अज्ञान और परवशता तथा यौवनावस्था की मदांधता, अविवेकता तथा अनियमितता की भयंकर आँधियों के बाद कहीं विवेकमय सुनिश्चित जीवन-प्रभात का अरुणोदय होता है, जिसमें मनुष्य अपने अनुभव के आलोक में सांसारिक पदार्थों की वस्तुस्थिति को यथार्थ रूप से जानकर, तदनुसार यथायोग्य व्यवहार कर उनसे वास्तविक सुख, शांति और आनन्द को प्राप्त कर सकता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अधिक वर्षों के कारण प्राप्त वृद्धावस्था से भयभीत न होकर अपने अन्दर से वृद्धत्व की भावना को ही सर्वथा निकाल दे और सदा—

"जीवेम शरदः शतम्। अदीनाः स्याम शरदः शतम्।"

वेद की इन दो भव्य-भावनाओं को अपने हृदय-मन्दिर में जागृत रखें। अब हम बुढ़ापा दूर करने के कुछ महत्त्वपूर्ण तथा अचूक उपायों को प्रिय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। आशा है वृद्धत्व को दूर रखने के अभिलाषी महानुभाव इन उपायों को अपने जीवन में चरितार्थ कर वृद्धत्व के भयावह भूत को अपने अन्दर से दूर भगा देंगे। वेद तो यहाँ तक कहते हैं।

शत हिमाः सर्व वीरा मदेभः।

हम सौ वर्ष तक वीर बनकर मस्ती की जिन्दगी व्यतीत करें।

१. अधिक आयु होने पर भी अपने अन्दर वृद्धत्व की भावना को उदित न होने दीजिए।
२. आहार सुपच, सात्त्विक तथा स्वल्प मात्रा में कीजिए। यदि बड़ी आयु के महानुभाव ग्यारह बजे अपनी प्रकृति के अनुकूल स्वल्प आहार, दोपहर को कुछ फल और मेवे तथा रात्रि को केवल दूध ही ले लिया करें तो अत्युत्तम है।
३. भोजन खूब चबाकर तथा प्रसन्न-चित्त होकर करिए।

४. अपनी सामर्थ्य के अनुसार योगासनों का हल्का व्यायाम, सायं-प्रातः भ्रमण तथा दोनों समय 'उज्जायी' नामक प्राणायाम अवश्य कर लिया करें ।
५. प्रतिदिन अथवा सप्ताह में दो-तीन बार तैल की मालिश अवश्य कर लिया करें ।[१]
६. बड़ी आयु होने पर यौवनावस्था के उत्साह तथा उमंग का तो परित्याग न करें, किन्तु पिछली युवावस्था की विलासिता तथा विलासमय जीवन का सर्वथा परित्याग कर दीजिए ।
७. प्रतिदिन कुछ समय भगवद्-भक्ति, स्वाध्याय, सत्संग तथा परोपकार में अवश्य लगाया करें । दूसरे शब्दों में, गार्हस्थ जीवन में रहते हुए भी अपने अन्दर वानप्रस्थ-भावना अर्थात् आध्यात्मिक जीवन की भावना को भी अवश्य जागृत रखिए ।
८. कुछ समय सात्त्विक आमोद-प्रमोद तथा हास-परिहास में भी व्यतीत करें । बालकों के साथ आमोद-प्रमोद करना तथा खिल-खिलाकर अट्टहास के साथ हँसना बुढ़ापे को दूर करने का अत्युत्कृष्ट साधन है ।
९. वृद्धावस्था में जिह्वेन्द्रिय की दो शक्तियों अर्थात् रसना और वाणी के संयम पर पूर्ण ध्यान रखिए, क्योंकि इस आयु में अन्य इन्द्रियों के शिथिल हो जाने पर भी रस-लोलुपता तथा अधिक बोलने की तृष्णा प्रायः बढ़ जाया करती है । लेखक ने स्वयं कई वृद्धों को, बालकों तथा जवानों से भी अधिक रसनेन्द्रिय के दास तथा अश्लील से अश्लील बकवास करते देखा-सुना है । इससे मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक दोनों अवस्थाओं पर बहुत गहरा घातक प्रभाव पड़ता है ।
१०. भरपूर नींद लीजिए । बड़ी आयु में कम सोना स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है ।
११. जहाँ तक हो सके चिन्ता और फ़िक्र को अपने अन्दर से सर्वथा दूर कर दीजिए । यथाशक्ति परिवार की सेवा करते हुए भी पारिवारिक चिन्ता का भार अपने ऊपर से उतारकर फेंक दीजिए ।
१२. मन से इस भावना को सर्वथा निकाल दीजिए कि मैं अब इतने वर्ष का हो गया, इसलिए वृद्ध हो गया हूँ ।

---
१. मालिश के लिए सरसों का तेल बहुत उपयोगी है । तिल्ली के तेल से भी कर सकते हैं ।

१३. मन को सदा यौवन की मधुर कल्पनाओं तथा भव्य-भावनाओं से भरपूर रखिए। इतना भरपूर कि उसमें वृद्धत्व की भयावह भावनाओं को स्थान ही न मिले।

१४. सदा हर्ष, उल्लास तथा आनन्द की दिव्य भावनाओं में रमण करिए।

१५. प्राणिमात्र के प्रति उदारता, विशालता तथा कोमलता के भावों को ही अपने हृदय में स्थान दीजिए।

१६. जीवन को आलसी और निठल्ला न बनाकर, पुरुषार्थी और परिश्रमी बनाइए। परन्तु इतना भी परिश्रम न करिए कि थककर चूर हो जाएँ। बड़ी उम्र में जहाँ आलसी और निठल्लापन हानिकर है, वहाँ अधिक परिश्रम भी नुकसानदेह है।

१७. अपनी रीढ़ की हड्डी को उठते, बैठते तथा चलते समय सदा सीधी रखिए। रीढ़ की हड्डी का सीधा रहना जवानी की, तथा झुका और टेढ़ा रहना वृद्धत्व की निशानी है।

१८. प्रातःकाल उठकर नासिका से पाव-आधापाव जल अवश्य पीजिए।[१] यह वृद्धावस्था के दूर करने का बहुत सुन्दर उपाय है। दिन में भी कई बार जल अवश्य पीजिए।

१९. जहाँ तक हो सके चाय, बीड़ी, सिगरेट, मदिरा, मांस आदि नशीले तथा हानिप्रद पदार्थों के सेवन से दूर रहिए।

२०. चिड़चिड़े और क्रोधी स्वभाव को अपने अन्दर से दूर कर दीजिए, तथा प्रसन्नचित्त रहिए। चिड़चिड़ा और क्रोधी स्वभाव वृद्धपन को शीघ्र आमन्त्रित करता है।

२१. संक्षेपतः अपने जीवन से बुढ़ापे को दूर भगाने के लिए निम्न चार नियमों को कभी न भूलिए—

आधा खाइए, दुगुना सोइए। तिगुना पीजिए, चौगुना हँसिए॥

आशा है अपने को वृद्धपन से दूर रखने के अभिलाषी महानुभाव बुढ़ापे को दूर भगाने के इन अचूक उपायों को अपने जीवन में अवश्य चरितार्थ करेंगे।

---

१. जल गर्मियों में ठण्डा, तथा सर्दियों में ताजा होना चाहिए। संक्षेपतः नासिका द्वारा जल पीने की विधि यह है कि नासिका के पास हथेली रखकर उस पर जल डालते जाइए, तथा गले से गिटकने की क्रिया करते जाइए। जल अपने-आप अन्दर चलता जाएगा। कई लोग जल को जोर से ऊपर खींचते हैं। यह विधि ठीक नहीं है।

तृतीय अध्याय

प्राणायाम

प्राणायाम का महत्त्व, उसके लाभ और उससे उत्पन्न होनेवाली हानियों के कारण तथा उनसे बचने के उपाय

महर्षि पतंजलि ने अपने 'योगदर्शन' में प्रभु-प्राप्ति के लिए योग के आठ अङ्ग बताए हैं, जिन पर आचरण करने से मनुष्य न केवल प्रभुप्राप्ति तथा आत्म-साक्षात् द्वारा मोक्ष को ही प्राप्त कर सकता है, प्रत्युत वह अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति करता हुआ संसार में भी अपने जीवन को सुख तथा शान्तिमय बना सकता है। योग के आठ अंगों में चौथा अंग है—प्राणायाम।

प्राणायाम शरीर तथा मन दोनों को शुद्ध, पवित्र तथा बलवान् बनाता है। इसीलिए योगियों ने इसे सबसे अधिक महत्त्व दिया है। प्राणायाम की महिमा न केवल 'योगदर्शन' अपितु 'मनुस्मृति' आदि दूसरे शास्त्रों ने भी गाई है। आर्यों की सबसे प्राचीन पुस्तक 'वेद' भी प्राणायाम की महिमा को मुक्तकण्ठ से गाता है। ऋग्वेद में प्राणायाम के सम्बन्ध में इस प्रकार से वर्णन आता है—

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु पराऽन्यो वातु यद्रपः ॥

हमारे शरीर में (द्वौ-इमौ-वातौ) दो प्रकार की प्राण और अपान नाम की वायु (वातः) चल रही हैं। उन दोनों में से एक तो (आ + सिन्धोः) सिन्धु अर्थात् हृदय तक चलती है, और दूसरी (आ + परावतः) बाहर के वायुमण्डल तक। हे प्राणायाम के अभ्यासी मनुष्य! उनमें से एक अर्थात् प्राण-वायु तो (ते) तेरे अन्दर (दक्षम्) आरोग्य, बल, उत्साह और जीवन-शक्ति को (आवातु) ले आवे और (अन्यः) दूसरी अर्थात् अपान-वायु (यद्रपः) जो तेरे अन्दर निर्बलता और रोग हैं, उन्हें (परा वातु) शरीर से परे अर्थात् बाहर निकाल देवे।

इस मन्त्र में वेद ने बताया है कि मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की वायु काम कर रही हैं। इनमें एक तो 'प्राणवायु' है, जो बाहर से हृदय तक, और दूसरी 'अपान वायु' है जो हृदय से बाहर तक चलती रहती है। जो मनुष्य प्राणायाम के द्वारा इन दोनों प्राण और अपान शक्तियों को अपने वश में कर लेता है, वह "अपान" शक्ति के द्वारा तो अपने अन्दर से बीमारी, सुस्ती और निर्बलता को बाहर निकाल देता है और "प्राण" शक्ति के द्वारा अपने अन्दर आरोग्य, बल, उत्साह और शक्ति को भर लेता है। पाठक पूछेंगे कि प्राणायाम से इतना महान् लाभ किस प्रकार से होता है? इसका उत्तर यदि पाठक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उपर्युक्त वेदमन्त्र में ही मिल जाएगा, जिसमें हृदय को सिंधु नाम से कहा गया है। सिन्धु समुद्र को भी कहते हैं, अर्थात् वैदिक भाषा में 'सिन्धु' शब्द जहाँ समुद्र का पर्यायवाची है, वहाँ 'हृदय' का भी है। इस साम्यता का एकमात्र कारण यही है कि जिस प्रकार समुद्र में सब नदियाँ आकर गिरती हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर में भी 'रक्तवाहिनी' नाड़ियाँ जिन्हें 'शिरा' कहते हैं, जो दूसरे शब्दों में रक्त की नदियाँ हैं, वे सब की सब नदियाँ हमारे हृदयरूपी समुद्र में आकर गिरती हैं और जिस प्रकार कि सूर्य की किरणें समुद्र के खारे पानी को भी भाप बनाकर आकाश में ले-जाकर उसे मधुर तथा स्वादु बना देती हैं और वापस उसे भूमि पर बरसा देती हैं, इसी प्रकार प्राणायामरूपी सूर्य की किरणों से हमारे हृदयरूपी समुद्र का सारा रक्त फेंफड़ों में जाकर शुद्ध और निर्मल हो जाता है और वह शुद्ध हुआ सारा का सारा रक्त 'धमनी' नाम की नाड़ियों द्वारा शरीर में वापस जाकर उसे स्वस्थ और बलवान् बना देता है। पाठक देखें कि वेद ने हृदय का नाम 'सिन्धु' रखकर कितनी सुन्दरता से प्राणायाम के लाभ को प्रकट कर दिया है! इससे भी अगला मन्त्र और भी अधिक 'प्राणायाम' पर प्रकाश डालता है। पाठकों के लाभार्थ उसे भी हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्व-भेषजो देवानां दूत ईयसे॥

हे (वात) प्राणवायो! तू हमारे अन्दर (भेषजम्) रोगों को नष्ट करनेवाली औषध-शक्ति को (आ-वाहि) ले आ। और हे (वात) अपान वायो! तू (यद्-रपः) जो हमारे अन्दर खराबियाँ अर्थात् अनेक प्रकार के रोग और निर्बलताएँ हैं, उन्हें (वि-वाहि) बाहर लेजा, क्योंकि हे प्राणशक्ति! (त्वम्) तू

(हि) अवश्य (विश्वभेषजम्) संसारभर के सम्पूर्ण रोगों की रामबाण औषध है और तू (देवानाम्) देवताओं अर्थात् दिव्य शक्तियों का दूत बनकर हमारे अन्दर (ईयसे) प्रवेश कर रही है।

इस मन्त्र में प्राणशक्ति को जोकि पूरक प्राणायाम के द्वारा बाहर से अन्दर ग्रहण की जाती है, 'विश्वभेषज' अर्थात् सब रोगों की परम औषध कहा है। वेद के इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि जिस प्राणवायु को हम प्राणायाम द्वारा अन्दर लेते हैं, वह हमारे सब रोगों के नष्ट करने की अपने अन्दर पूरी शक्ति तथा सामर्थ्य रखती है। इतना ही नहीं, प्रत्युत वह प्राणवायु प्राणायाम द्वारा हमारे अन्दर देवताओं अर्थात् दिव्य शक्तियों का संचार भी करती है, अर्थात् वेद के कथनानुसार जहाँ प्राणायाम हमारी सब बीमारियों और निर्बलताओं को दूर करता है, वहाँ वह हमारे अन्दर दिव्य शक्तियों को उत्पन्न करके हमारे शरीर, मन और आत्मा को शुद्ध, पवित्र और बलवान् भी बना देता है। इसीलिए 'प्राणायाम' का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि अपने 'योगदर्शन' में लिखते हैं—

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"

प्राणायाम के करने से हमारे अन्दर जो प्रकाश का 'आवरण' ढकना या बन्धन पड़ा है अर्थात् हमारे शरीर, मन और आत्मा के वास्तविक स्वरूप पर जो बीमारियों, निर्बलताओं और अविद्या का पर्दा पड़ा हुआ है, वह नष्ट हो जाता है और हमारा शरीर, मन और आत्मा स्वस्थ, पवित्र, बलवान् तथा सम्पूर्ण शक्तिया का भण्डार बन जाता है। क्योंकि शरीर के अस्थि, मांस, नसें, नाड़ियाँ, त्वचा, नाखून, केश, दाँत, दिमाग, फेफड़े, जिगर, गुर्दे, आदि सभी महत्त्वपूर्ण अंग रक्त से ही बनते हैं, अतः प्राणायाम द्वारा शुद्ध हुए रक्त से ये सब अंग भी सदृढ़ और पुष्ट ही होंगे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

इसीलिए योग-ग्रन्थों में कहा है—

प्राणायामात् पुष्टिर्गात्रस्य बुद्धिर्तेजो यशोबलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात् प्राणायाममाचरेत्॥

प्राणायाम से शरीर के अंग पुष्ट होते हैं, बुद्धि तीव्र तथा यश और बल की वृद्धि होती है, इसलिए प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द का चार घोड़ोंवाली बग्घी को रोकना, अपने को भूमि से दो-तीन फुट ऊपर उठाकर मकान के चारों ओर चक्कर लगाना और कड़ी

सर्दी में भी केवल अँगूठा दबाने मात्र से अपने शरीर को पसीने से तर-बतर कर देना, तथा राममूर्ति आदि महानुभावों का मोटरों को रोकना, जंजीरों को तोड़ना, छाती पर कई मन का पत्थर रखकर तुड़वाना, यह सब प्राणायाम का ही अद्‌भुत चमत्कार है। इसीलिए उपनिषदों में कहा है—

"प्राणो वै बलं, तत्प्राणे प्रतिष्ठितम्॥'

अर्थात्—प्राण ही बल है, क्योंकि प्राण में ही बल का निवास है।

प्रिय पाठक पूछेंगे कि यदि वेद के कथनानुसार प्राणों के अन्दर ही इतनी शक्ति है कि वह सब रोगों और निर्बलताओं को नष्ट कर हमारे अन्दर आरोग्य, बल और उत्साह का संचार कर देते हैं, तो वे प्राण तो हम बिना 'प्राणायाम' के भी प्रतिदिन अपने अन्दर लेते ही हैं, फिर उनसे हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान् क्यों नहीं बन जाता? इसका उत्तर यह है कि जितना प्राण हम प्रतिदिन बिना प्राणायाम के अपने अन्दर लेते हैं, वह साधारण प्राण हमारे फुफ्फुस अर्थात् फेफड़ों के सब भागों में नहीं पहुँच पाता। हमारे फेफड़ों के मुख्यतया ३ भाग हैं—एक ऊपर का जोकि हमारी गर्दन तक है; दूसरा जोकि हृदय के दोनों ओर है; तीसरा नीचे का, जो नीचे का उदरोद-पटल मांसपेशी जिसे अंग्रेजी में डायफ्राम (Diaphram) कहते हैं, के ऊपर दोनों ओर फैला हुआ है। इनमें से यदि किसी हिस्से में भली प्रकार श्वास नहीं पहुँचता, तो वह हिस्सा बेकार तथा बीमार हो जाता है और उसके बेकार तथा बीमार पड़ जाने के कारण फेफड़ों से सम्बन्ध रखनेवाले रोग, जैसे दमा, खाँसी, राजयक्ष्मा अर्थात् तपेदिक और निमोनिया आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत उस भाग के खराब और बीमार हो जाने पर वह रक्त को भी भली प्रकार से शुद्ध नहीं कर पाता। अतः दूषित अवस्था में ही रक्त वापस फेफड़ों से हमारे शरीर में चला जाता है, जिससे हमारे अन्दर दूषित रक्त से उत्पन्न होने वाले रोग जैसे—फोड़े, फुन्सी, कोढ़ आदि हो जाते हैं। चूँकि शुद्ध रक्त ही फेफड़ों से जाकर हमारे शरीर के सब हिस्सों को स्वस्थ तथा बलवान् बनाता है, अतः फेफड़ों के विकृत हो जाने पर जब वहाँ से शुद्ध रक्त हमारे शरीर में नहीं पहुँच पाता तो हमारा शरीर हमेशा कमजोर और बीमार बना रहता है और कभी भी स्वस्थ तथा बलवान् नहीं बन पाता। इसके विपरीत जो लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक प्राणायाम करते हैं, उन्हें उपर्युक्त तपेदिक, दमा तथा खाँसी आदि रोग और दूषित रक्त-सम्बन्धी रोग हो ही

नहीं सकते। इसलिए इन बीमारियों तथा कमजोरियों से बचने के लिए आवश्यक है कि हम अपने फेफड़ों के प्रत्येक भाग को पूर्णतया श्वास से भरें। यह कार्य हम प्राणायाम द्वारा ही कर सकते हैं। प्राणायाम के करने से हमारे फेफड़ों के सब भाग पूर्णतया प्राणों से भर जाते हैं, और फेफड़े का कोई भी भाग प्राणावायु से वञ्चित नहीं रहने पाता। चूँकि हम उपर्युक्त उद्देश्य को प्राणायाम से ही पूर्ण कर सकते हैं, इसलिए शारीरिक उन्नति के अभिलाषी के लिए यह परम आवश्यक है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक सायं-प्रातः प्राणायाम किया करे। प्राणायाम का अर्थ भी यही है कि 'प्राणानां आयामः' अर्थात् प्राणों को खूब लम्बा करना तथा उससे फेफड़ों को पूर्णतया भर लेना।

एक उदाहरण

यदि किसी शहर में सदा साधारण वायु ही चलती रहे, तो वह शहर कभी भी साफ-सुथरा तथा बीमारियों से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि साधारण वायु न तो उस शहर की गलियों और बाजारों के कूड़ा-कर्कट को पूर्णतया उड़ा ले-जा सकती है, और न ही उस शहर की दूषित और विकृत वायु को शहर से बाहर निकाल उसमें शुद्ध और पवित्र वायु का संचार कर सकती है। किन्तु यदि उस शहर में जोर की आँधी आ जाय तो वह जहाँ उस नगर की दूषित वायु को दूर बहा ले जाएगी, वहाँ उस नगर के गली-कूचों और बाजारों के कूड़ा-कर्कट को भी उड़ा ले-जाकर नगर को साफ-सुथरा बना देगी। इसी प्रकार हमारा शरीर भी आत्मा के रहने की नगरी है। इसीलिए आत्मा को शास्त्रों में पुरुष कहा गया है। पुरुष का अर्थ है—'पुर्याम् शेते यः सः = पुरुषः' अर्थात् जो अपनी शरीररूपी पुरी अर्थात् नगरी में शयन करता है या निवास करता है, वह पुरुष है। वेद में इस शरीररूपी पुरी अर्थात् नगरी का बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। वेद में लिखा है—

अष्टा-चक्रा नव-द्वारा, देवानां पुरोऽयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अर्थात्—"हमारी यह शरीररूपी पुरी मूलाधार आदि आठ चक्रों (जिनका विस्तृत वर्णन आगे आएगा) और नेत्र आदि नौ दरवाजों वाली है, जिसमें देवताओं अर्थात् दिव्य शक्तियों का निवास है और जो अयोध्या है, अर्थात् जिस पर कोई भी शत्रु युद्ध करके विजय प्राप्त नहीं कर सकता, तथा

जिसमें स्वर्ण के समान प्रकाशमान आत्मा का कोश अर्थात् गुप्त स्थान है, जो आनन्द और ज्योति के प्रकाश से आवृत अर्थात् भरा हुआ है।

पाठक देखेंगे कि वेद ने शरीर को कितना बड़ा महत्त्व दिया है। वेद के कथनानुसार सच्चा स्वर्ग-धाम तथा दिव्य शक्तियों का कोई भण्डार है तो वह हमारा शरीर है। इसीलिए इसे दिव्य धाम भी कहते हैं। प्रभु ने हमारे इस शरीररूपी दिव्यधाम में अनन्त गुण तथा शक्तियाँ भर दी हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो एक बड़े नगर के समान भगवान् ने इस शरीररूपी नगर में भी नगर-निरीक्षक, बिजलीघर, डाकखाना, तारघर, सेना, पुलिस चौकी, संगीतशाला, भोजनालय, धोबीघाट, पाकशाला आदि अनेक उपयोगी संस्थाएँ बना दी हैं। एक ओर तो वेद शरीर को इतना महत्त्व देता है, और दूसरी ओर हम हैं कि —"शरीरं व्याधि मन्दिरम्" अर्थात् "शरीर तो व्याधियों का घर है" यह कहकर उसकी कुछ भी परवाह नहीं करते। अस्तु! अब हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम अपनी इस देहरूपी दिव्य नगरी को सदा स्वच्छ और साफ रखें। किन्तु इस शरीररूपी नगरी में यदि साधारण श्वासरूपी वायु चलती रहती है, तो न तो वह शरीर के अन्दर उत्पन्न हुई दूषित वायु को दूर कर सकती है, और न उस शरीररूपी नगरी से सब अंग-प्रत्यंगरूपी गली-कूचों के दोषों-रूपी कूड़ा-कर्कट को दूर बहा ले जा सकती है। इसलिए आवश्यक है कि हम इस शरीररूपी नगरी को सब खराबियों और दोषरूपी कूड़ा-कर्कट को दूर करने के लिए प्राणों की आँधी चलाएँ, जिससे कि वह शरीर के कूड़े-कर्कट को एकदम बहा ले-जाय, और हमारे अन्दर दूषित हुई प्राण-शक्ति को भी जिसके कारण कि हम अनेक रोगों और निर्बलताओं के शिकार बनते हैं, शुद्ध तथा निर्दोष बना दें।

प्राणों अर्थात् श्वासों को खूब लम्बा करके अन्दर लेना ही अपने अन्दर प्राणों की आँधी चलाना है जोकि प्राणायाम के द्वारा ही सम्भव हो सकता है, अतः प्राणायाम करना मानो अपने अन्दर प्राणों की जोर से आँधी चलाना है। इसलिए प्राणायाम से जहाँ हमारी शरीररूपी नगरी सब खराबियों और कमजोरियों से पवित्र होकर सच्चे अर्थों में वेद के शब्दों में 'अयोध्या' अर्थात् 'योद्धुम् अशक्या' बन जाती है, जिस पर कोई भयंकर से भयंकर रोग तथा निर्बलतारूपी शत्रु तथा बलवान् से बलवान् बाह्य शत्रु भी आक्रमण नहीं कर सकता, वहाँ वह देवताओं अर्थात् दिव्य शक्तियों का भण्डार और आनन्द का

केन्द्र भी बन जाती है। इसलिए पूर्व-मन्त्र से प्राणों को देवताओं अर्थात् दिव्य शक्तियों का दूत कहा गया है। अब पाठकों को भली प्रकार से ज्ञात हो गया होगा कि किस प्रकार प्राणायाम से शरीर के सब अवयवों और इन्द्रियों के मल और दोष नष्ट होकर शरीर स्वस्थ और शक्ति-सम्पन्न बन जाता है। इसीलिए वेदों ने प्राण को सबका कल्याण करनेवाला, आरोग्य और शांति प्रदान करनेवाला बताकर उससे अपनी रोगनाशक शक्ति द्वारा जीवन को बलवान्, स्वस्थ और नीरोग बनाने की प्रार्थना की है[१]। भगवान् मनु ने भी प्राणायाम का महत्त्व बताते हुए लिखा है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात्—"जिस प्रकार सोना-चाँदी आदि धातुओं को अग्नि में तपाने से उनके सब मल अर्थात् दोष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के सर्व दोष अर्थात् खराबियाँ नष्ट हो जाती हैं।" प्राणायाम के करने से अन्दर की प्राण-वायु में उष्णता उत्पन्न होती है और जिस प्रकार गर्म जल से स्नान करने पर शरीर का बाह्य मल जल्दी तथा सुगमता से धुल जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम द्वारा उष्ण हुई प्राण-वायु से शरीर के अन्दर सूक्ष्म इन्द्रियों तथा नाड़ियों के मल भी शीघ्र तथा सुगमतापूर्वक नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उष्णता का स्वभाव ही मल को नष्ट करना है। यही महाराज मनु के उपर्युक्त कथन का रहस्य है। अतः जितना भी कोई अपनी सामर्थ्यानुसार अधिक मात्रा में प्राणायाम करके अधिक-से-अधिक शुद्ध वायु अपने अन्दर भरेगा, उतने ही उसके मल और दोष दूर होंगे, मुख की कांति बढ़ेगी और सारे शरीर में शुद्ध रक्त द्वारा विद्युत्-शक्ति का संचार होगा।

प्राणायाम द्वारा बढ़ी हुई उष्णता ही पेट की जठराग्नि के प्रदीप्त करने में भी कारण बनती है और अजीर्ण तथा बद्धकोष्ठता आदि दोष दूर होकर खाया हुआ भोजन भली प्रकार पचने लगता है, तथा शरीर का अंग बनकर शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बना देता है। अतः प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी तथा आरोग्य, बल व दिव्य शक्तियों के अभिलाषी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन नियमपूर्वक अवश्य प्राणायाम करे।

---

१. वात आ वातु भेषजँ् शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र न आयूँषि तारिष॥ —सामवेद।

अब हम पाठकों को यह बताएँगे कि प्राणायाम से "ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य की रक्षा", "आयु की वृद्धि" तथा "चित्त की एकाग्रता" किस प्रकार होती है।

प्राणायाम द्वारा वीर्य-रक्षा

सर्वप्रथम हम "प्राणायाम से ब्रह्मचर्य की रक्षा कैसे होती है" इसका कुछ वर्णन पाठकों के सम्मुख रखते हैं—

पूर्व इसके कि हम यह बताएँ कि प्राणायाम से ब्रह्मचर्य की रक्षा कैसे होती है, यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि, वीर्य कहाँ उत्पन्न होता है और उत्पन्न होकर कहाँ जाता है, तथा उसका क्या उपयोग होता है। पुरुष के अण्डकोष ही वीर्य-उत्पत्ति के मुख्य स्थान हैं जहाँ कि वीर्य उत्पन्न होता है। अण्डकोषों की रचना ही वीर्य-उत्पादन कार्य के लिए की गई है। अण्डकोषों में उत्पन्न होने के पश्चात् वीर्य दो धाराओं में बँट जाता है। एक धारा से वीर्य शुक्र-कोष अर्थात् वीर्याशय में जोकि जननेंद्रिय के मूल में मूत्राशय और मलाशय के मध्य में है, चला जाता है। शुक्र-कोष अर्थात् वीर्याशय में संचित होनेवाला वीर्य सन्तान-उत्पत्ति के कार्य में आता है, और दूसरी धारा में बहनेवाला वीर्य पुरुष के रक्त में जाकर मिलता रहता है। रक्त में मिलनेवाले वीर्य का नाम ओज भी है। इस ओज या रक्तगत वीर्य के कारण ही मनुष्य के शरीर में तेज तथा कांति आती है; शारीरिक बल बढ़ता है और उसके अंग-प्रत्यंगों की वृद्धि होती है; मस्तिष्क का विकास, आरोग्यता, बल और उत्साह प्रकट होते हैं; शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है; शरीर में फुर्तीलापन आता है। यदि मनुष्य का जीवन स्वाभाविक और सदाचारमय हो तो शुक्र-कोषगत वीर्य का उपयोग केवल सन्तान-उत्पत्ति के लिए ही होना चाहिए और उसी के लिए वह खाली होना चाहिए। अन्य समयों में शुक्रकोष भरा रहना चाहिए। शुक्रकोष वीर्य से भरा रहने की अवस्था में अण्डकोषों से आनेवाली वीर्य की धारा का भी प्रवाह बन्द हो जाएगा। जैसे खेत में जब तक क्यारा पानी से भरता नहीं तब तक पानी की धारा का प्रवाह चलता ही रहता है। किन्तु जब क्यारा भर जाता है तो जल की धारा का प्रवाह भी रुक जाता है। ऐसी अवस्था में वीर्य का सारा प्रवाह रक्त में पहुँचनेवाली धारा में बहेगा, जिसका परिणाम यह होगा कि हमारे शरीर की कान्ति, अंग-प्रत्यंग, मस्तिष्क, बल, बुद्धि और उत्साह की वृद्धि होगी। किन्तु खेद है कि हम अपने जीवन को

स्वाभाविक तथा सदाचारमय नहीं रखते। हमारा खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा और संगति चाहे वह व्यक्तियों की हो या पुस्तकों की, ये सब इस प्रकार के होते हैं कि जिनके कारण दिन-रात हमारे अन्दर कु-वासनाएँ तथा बुरे संस्कार जागृत होते रहते हैं, जिसका फल यह होता है कि उन कु-वासनाओं तथा दूषित विचारों के कारण हम या तो जागृत अवस्था में ही अपने वीर्य का जान-बूझकर प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से पात कर लेते हैं या कु-वासनाओं तथा दूषित संस्कारों के दुःस्वप्न के कारण रात्रि में सोते समय अनिच्छन्नपि हमारा शुक्र वीर्याशय से खारिज हो जाता है। इस प्रकार सन्तानोत्पत्ति के लिए ही शुक्रकोष खाली करने का हमारा स्वाभाविक क्रम हमारे हाथ से निकल जाता है। सन्तानोत्पति के अतिरिक्त आगे-पीछे भी हमारा शुक्रकोष बहुत बार खाली होता रहता है, और इसके खाली होते ही इसको भरनेवाली वीर्यवाहिनी नाड़ियाँ अण्डकोषों में उत्पन्न वीर्य को खींचकर लाती हैं और इसे भरने में ही लगी रहती हैं; जिसका परिणाम यह होता है कि रक्त में जानेवाली वीर्य की मात्रा बहुत कम हो जाती है और इस कमी का प्रभाव न केवल हमारे शरीर पर प्रत्युत सारे जीवन पर पड़ता है। हमारे शरीर की कान्ति तथा तेज कम होने लगता है। बल, उत्साह तथा फुर्तीलापन घटने लगता है। जब तक यह अ-स्वाभाविक प्रक्रिया बहुत तेज नहीं होती, तब तक हमें इससे होनेवाली हानि का विशेष अनुभव नहीं होता; किन्तु जब तामसिक पदार्थों के सेवन तथा शृंगारिक विचारों के सोचते रहने पर कामोत्तेजना बढ़ जाती है, तब इस उत्तेजना के बढ़ जाने पर उसे शान्त करने के लिए जब अनेक प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक उपायों से वीर्यपात करने में जो एक क्षणिक तामसिक आनन्द का अनुभव होता है, वह हमें यहीं तक ही नहीं रहने देता। तब हम उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए बार-बार कामोत्तेजक शृंगारिक विचारों को सोचते रहते हैं, और इससे उत्पन्न होनेवाली उत्तेजना को शान्त करने के लिए बार-बार अपने शुक्र का पात करते रहते हैं। यदि हमने स्वयं जान-बूझकर वीर्य का पात नहीं किया और केवल शृंगारिक विचारों के सोचने का आनन्द लेते रहे तो रात्रि को स्वप्नदोष के रूप में हमारा वीर्य नष्ट हो जाता है। परन्तु विलासिता के मार्ग में चलनेवाले व्यक्ति के अन्दर इतना सामर्थ्य कहाँ कि वह रात को स्वप्नों तक ठहर सके ! वह जागते-जागते ही जान-बूझकर अपना सर्वनाश कर लेता है। इस प्रकार यह वीर्यपात का अभ्यास बढ़ता जाता है। साथ ही इस मार्ग में चलने पर अपनी उत्तेजना को शान्त करने के लिए बीसियों प्रकार के वीर्यपात के तरीके सूझते रहते

हैं, और अवस्था यहाँ तक पहुँच जाती है कि दिन-रात में न जाने कितनी बार इस प्रकार का व्यक्ति अपने-आपको तथा दूसरों को नष्ट कर देता है। संसार में ऐसे भी अभागे व्यक्ति हैं, जो दिन में एक बार नहीं, न जाने कितनी बार अपने अमूल्य वीर्य का पात कर देते हैं। इस प्रकार जब यह अ-स्वाभाविक क्रम बहुत बढ़ जाता है तो शुक्रकोष अर्थात् वीर्याशय बार-बार खाली होने लगता है, और अण्डकोषों में उत्पन्न वीर्य शुक्रकोष को पूर्ण करने में ही लगा रहता है। फलतः रक्त में वीर्य भेजनेवाली धारा सर्वथा बन्द हो जाती है और रक्त को वीर्यजन्य ओज न मिलने से हमारे देह की कान्ति जाती रहती है। मस्तिष्क निकम्मा हो जाता है। बल, उत्साह तथा शारीरिक और मानसिक फुर्तीलापन नष्ट हो जाता है। अन्त में अवस्था यहाँ तक पहुँच जाती है कि अण्डकोष वीर्य बनाना ही बन्द कर देते हैं, क्योंकि उन्हें भी ओजपूर्ण रक्त से ही सामर्थ्य और शक्ति मिलती है। रक्त के निकम्मा हो जाने पर वे भी निकम्मे हो जाते हैं। ऐसे आदमी की अवस्था मरे हुए से भी बदतर हो जाती है। मृतक पुरुष को तो कोई कष्ट नहीं सहना पड़ता, किन्तु ऐसे दुर्व्यसनी तथा क्षीणवीर्य पुरुष को संसार का कौन-सा रोग और कौन-सा क्लेश है, जो उसे नहीं सताता! उसका क्षण-क्षण रौरव नरक में सड़ने के समान भयंकर दुःखों से पूर्ण हो जाता है। उसका जीवन, जीवन नहीं रहता। वह तो आत्मा के ऊपर असह्य भार बन जाता है जिसकी यन्त्रणाओं का पूरा अनुभव वे पौरुषहीन अभागे पुरुष ही कर सकते हैं जिन्होंने अपने दुष्कर्मों तथा दुर्व्यसनों द्वारा अपने-आपको अपनी कुटेवों से ऐसा नारकीय जीवन बिताने के लिए विवश कर लिया है। मेरे पास ऐसे नारकीय जीवन बितानेवाले युवकों के बीसियों पत्र आते हैं जिनको पढ़कर उनके नारकीय जीवन पर तरस और दया आती है।

जहाँ उपर्युक्त दुःखमय नारकीय जीवन का कारण हमारे दूषित तथा शृंगारिक विचार हुआ करते हैं, वहाँ हमारा शरीरिक अस्वास्थ्य भी अनेक बार वीर्याशय के खाली हो जाने का कारण बनता है। बहुत थकावट, अति परिश्रम तथा बीमारी आदि से होनेवाली हमारी निर्बलता से ही कई बार शुक्रपात हो जाता है। मूत्राशय तथा मलाशय का यथासमय खाली न होकर भरे रहना वीर्यपात के लिए विशेषकर रात्रि सोते समय, विशेष सहायक है। वीर्य-कोष उपर्युक्त दोनों आशयों के मध्य होने से उनके भरे रहने की अवस्था में उस पर अनुचित प्रभाव पड़ता है और हमारे न चाहते हुए भी जाने-बेजाने वीर्य शुक्राशय से निकल जाता है। इसलिए कब्ज का रहना और पेशाब को रोके

रहना वीर्य की रक्षा के लिए बहुत घातक है। अतः शरीर की रोगग्रस्तावस्था तथा निर्बलावस्था भी हमारे वीर्य को हानि पहुँचाकर हमारे लिए उतनी ही कष्टदायिनी है, जितनी कि शृंगारिक विचारों और विषय-भोगों में फँसा रहना। किन्तु यदि मनुष्य चाहे तो इससे अपना बचाव आसानी से कर सकता है। परन्तु शृंगारिक विचारों और विलासों में फँसे हुए मनुष्य का उद्धार हो सकना बहुत कठिन है। इसके उद्धार का तो एक ही उपाय है कि वह अपने मन को प्रारम्भ में ही शृंगारिक विचारों और कामुक विषयों में न फँसने दे और उस रस की अपने मन को चाट न लगने दे। क्योंकि, रस की एक बार चाट लग जाने के पश्चात् उससे बड़ी कठिनता से छुटकारा हो सकेगा, और वह भी बड़ी हानि सहन करने के पश्चात्। इसलिए अथर्ववेद में कहा है—

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्या॥ १॥
इदं तमति सृजामि तं मा ऽभ्यवनिक्षि॥२॥

अर्थात्—(अपाम्) शरीर में व्याप्त वीर्यरूपी जलों को (वृषभः) बाहर ले जानेवाले, शरीर से अलग कर देनेवाले काम को मैंने परे हटा दिया है, दूर कर दिया है। (दिव्याः अग्नयः) मन को मुग्ध करनेवाली प्रारम्भ में सुखदायी तथा मनोहर लगनेवाली, किन्तु परिणाम म जला देनेवाली कामाग्नियों को मैंने (अतिसृष्टा) सर्वथा दूर कर दिया है। अब मैं इस काम को अपने से सर्वदा दूर फेंकता हूँ। मैं इस आरोग्य, बल, बुद्धि के नाशक काम को कभी भी प्राप्त नहीं होऊँगा।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में हमें उपदेश दिया गया है कि हे मनुष्यो! यदि अपना कल्याण चाहते हो, अपने शरीर, मन, आत्मा को स्वस्थ और बलवान् बनाना चाहते हो तो तुम अपने अन्दर काम को और शृंगारिक विचारों, व्यवहारों और चेष्टाओं को उत्पन्न ही मत होने दो। इन्हें अपने जीवन से निकालकर परे फेंक दो। तुम्हारे शरीर में सर्वत्र फैला हुआ जो यह वीर्य है, जिसके कारण तुम्हारी आरोग्यता, बल, बुद्धि तथा कांति बढ़ती है और शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक, इन सभी प्रकार की शक्तियों का विकास होता है, उस अमूल्य वीर्य को काम की अग्नि में मत पिघलने दो। इस काम-वासनारूपी अग्नि को सदा बुझाए रखो। यदि तुमने इस कामाग्नि द्वारा अपने इस वीर्य को पिघला दिया और उसे नीचे बहने दिया, अर्थात् अपने को उर्ध्वरेता न बनाकर अधोरेता बना दिया तो याद रखो, तुम्हारी बहुत बुरी

हालत होगी ! तुम्हारी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति नष्ट हो जाएगी ! स्वास्थ्य और बल का नाश हो जाएगा ! आत्मा भ्रष्ट और पतित हो जाएगी ! तुम जल जाओगे ! रोगों से जर्जरित हो जाओगे और अल्पकाल में ही विकराल काल के ग्रास बन जाओगे !

वीर्यरक्षा अर्थात् ब्रह्मचर्य-पालन का वेद ने एक बहुत ही सुन्दर उपाय बतलाया है—

इन्द्रस्य वा इन्द्रियेणाभिषिच्येत् ।

अर्थात् हे मनुष्यो ! यदि तुम वीर्यसिंचन ही करना चाहते हो तो अपनी इन्द्रिय को इन्द्र की इन्द्रिय बनाकर सिंचन करो। इन्द्र अर्थात् मेघ जल बरसाता है, अपनी जलधाराओं को भी बहाता है, परन्तु किसलिए? ओषधियों और वनस्पतियों को अंकुरित करने के लिए अर्थात् जन्म देने के लिए। अतः तुम भी अपने वीर्य का तभी सिंचन करो जबकि तुम्हें अपने-जैसे गुणी पुत्र को अंकुरित करना हो अर्थात् जीवन देना हो। अपनी इन्द्रिय को इन्द्र की इन्द्रिय बनाने का एक और भी सुन्दर आशय है। इन्द्र नाम परमात्मा का है, अर्थात् हमें अपनी इन्द्रिय को केवल अपना समझकर उसे जब चाहे मनमाना उपयोग नहीं करना चाहिए, प्रत्युत इसे भगवान् की इन्द्रिय समझकर भगवान् के कार्य के लिए ही इसका उपयोग करना चाहिए। भगवान् ने हमें जननेद्रिय इसलिए प्रदान की है कि हम भगवान् की बनाई सृष्टि को आगे चलाएँ। अतः जब हम इन्द्र का काम करना चाहें अर्थात् जब सन्तान उत्पन्न करना चाहें, तभी हम अपनी जननेन्द्रिय द्वारा वीर्य का सिंचन करें। भगवान् के कार्य के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से वीर्य का स्खलित करना मानो अपने लिए मृत्यु का द्वार खोलना है, क्योंकि जिस मनुष्य के अन्दर आरोग्य, बल, उत्साह और शक्ति नहीं है वह वास्तव में मरे हुए के समान है। और जैसाकि हम पूर्व लिख आए हैं—यह सर्वसम्मत है कि आरोग्य, बल और उत्साह का मुख्य साधन ब्रह्मचर्य ही है। जिसके शरीर में जितनी अधिक मात्रा में वीर्य सुरक्षित होता है, उतनी ही अधिक मात्रा में आरोग्य, बल और उत्साह उसके शरीर में हुआ करता है। जैसे किसी भी संख्या के आगे क्रमशः बिन्दु लगाते जाने से उस संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, उसी प्रकार शरीर में भी वीर्य-बिन्दु को बढ़ाते जाने से उसमें आरोग्य, आनन्द, उत्साह और बल की भी वृद्धि उत्तरोत्तर

होती जाती है। योग-ग्रन्थों में तो यहाँ तक लिखा है—

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले।

अर्थात्—शरीर में यत्नपूर्वक वीर्य-बिन्दु के सिद्ध अर्थात् स्थिर कर लेने पर संसार में क्या नहीं सिद्ध हो सकता! इसके विपरीत जिस मनुष्य के अन्दर वीर्य-बिन्दु सुरक्षित नहीं अर्थात् जो काम के वशीभूत हो अपने वीर्य को नष्ट कर देता है, उसकी क्या दुर्दशा होती है—इसका मार्मिक वर्णन हम अथर्ववेद के शब्दों में ही पाठकों के सम्मुख रखते हैं।

रुजन् परिरुजन् मृणन् परिमृणन्।
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषितस्तनूदूषिः॥

"यह काम (रुजन्) रोगी बनानेवाला है, (परिरुजन्) बहुत बुरी तरह रोगी करनेवाला है। (मृणन्) मार देनेवाला है, (परिमृणन्) बहुत बुरी तरह मारनेवाला है। (म्रोकः) यह टेढ़ी चाल चलता है, (मनोहा) मानसिक शक्तियों को नष्ट कर देता है, (खनः) शरीर में स्वास्थ्य, बल, आरोग्यता आदि को खोदकर बाहर फेंक देता है, (निर्दाह) शरीर की सब धातुओं को जला देता है, (आत्मदूषितः) आत्मा को दोषयुक्त और मलिन बना देता है, (तनूदूषिः) शरीर के वात, पित्त, कफ को दूषित कर उसे कांति तथा तेज से हीन बना देता है।" अतः काम-विकार का शिकार बने कामी मनुष्य का आरोग्य और बल कदापि सुरक्षित नहीं रह सकते, और जहाँ आरोग्य तथा बल नहीं, वहाँ आनन्द और उत्साह कहाँ? और तो क्या, भगवान का पवित्र नाम ओम् या 'ओं' भी बिना बिन्दु के अपने शुद्ध स्वरूप में नहीं रह सकता, और न ही कोई उसे 'ओम्' नाम से पुकार सकता है। फिर भला जिस मनुष्य ने अपने अन्दर से वीर्य बिन्दु को निकाल दिया, वह मनुष्य कैसे अपनी असली हालत में स्थिर रह सकता है। इसीलिए वीर्य को शरीर का सम्राट् कहा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारे शरीर, मन और आत्मा के असली हालत अर्थात् वास्तविक स्थिति में रहने का मुख्य साधन ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-रक्षा ही है।

वीर्य-रक्षा के जहाँ अन्य अनेक साधन हैं, जिनका ऊपर कुछ दिग्दर्शन हो चुका है, वहाँ प्राणायाम भी एक सर्वोच्च तथा मुख्य साधन है। ब्रह्मचर्य का पालन या वीर्य की रक्षा वही मनुष्य कर सकता है जिसका शरीर स्वप्नदोष, प्रमेह आदि रोगों से रहित हो।

अब यह देखना है कि हमारे शरीर के अन्दर ये व्याधियाँ क्यों उत्पन्न होती हैं? जिस वस्तु को हम प्रतिदिन खाते हैं, उसकी रस से लेकर वीर्य-पर्यन्त सात धातुएँ बनती हैं जिनमें 'रक्त' दूसरी तथा 'वीर्य' सातवीं धातु है। पहले बताया जा चुका है कि प्राणायाम के द्वारा 'रक्त' के शुद्ध हो जाने पर उससे क्रमशः उत्पन्न होनेवाला वीर्य भी शुद्ध और गाढ़ा बनता जाता है, तथा वीर्य के शुद्ध और गाढ़ा होने पर न तो हमें स्वप्नदोष सताएगा और न प्रमेह ही संकट पहुँचाएगा। क्योंकि पतले और दूषित वीर्यवाले को ही ये रोग सताया करते हैं, शुद्ध और पुष्ट वीर्यवाले को कदापि नहीं। इसीलिए यजुर्वेद में प्राण को राजा[१] कहा गया है, क्योंकि वह अपने मित्र वीर्यरूपी सम्राट् की रक्षा करता है।

दूसरा, जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है और प्रमेह आदि रोगों से बचना चाहता है, उसे अपने अन्दर वीर्य को शोषण करने की शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। क्योंकि, जब तक हम अपने अन्दर वीर्य को शोषण करने की सामर्थ्य नहीं रखते, तब तक हम चाहे ब्रह्मचर्य के कठोर-से-कठोर नियमों का पालन भी क्यों न करें, किन्तु फिर भी हम वीर्य को अपने अन्दर सुरक्षित नहीं रख सकते। 'वीर्याशय' में एकत्रित हुए वीर्य को यदि हमने अन्दर शोषण नहीं किया तो वह अवश्य किसी-न-किसी प्रकार से वीर्याशय से बाहर निकल जाएगा। यदि हम उसे स्वेच्छा से न भी निकालेंगे तो वह स्वप्नदोष आदि के द्वारा ही बाहर निकल जायगा। यही कारण है कई लोग बहुत संयमपूर्वक रहते हुए भी अपने वीर्य को सुरक्षित नहीं रख सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि हम 'वीर्याशय' में उत्पन्न हुए वीर्य को अपने अन्दर जज्ब करने की शक्ति पैदा करें, जोकि केवल 'प्राणायाम' से ही पैदा हो सकती है, अन्य किसी प्रकार से नहीं।

वीर्य जब वीर्याशय में जाता है तो वह बाहर निकलने के लिए नीचे की ओर गति करता है और इच्छा या अनिच्छा से शरीर के बाहर निकल जाता है। किन्तु यदि हम चाहें तो प्राणायाम के द्वारा वीर्य की अधोगति को रोककर उसे ऊर्ध्वगति में परिणत कर सकते हैं और उसे अपने शरीर का अंग बना सकते हैं। प्राण, मन और वीर्य इन तीनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस

---

१. **राजा मे प्राणः** । यजु० २०।५॥

ओर प्राणों की गति होगी, उसी ओर मन और वीर्य की भी गति होगी। इसीलिए जब हम अपने प्राणों को प्राणायाम के द्वारा नीचे मूलाधार चक्र से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में ले-जाकर स्थिर करते हैं, तो वीर्य भी प्राणों के साथ ऊपर की ओर ही गति करता है, और ऊपर जाकर प्राणायाम की उष्णता से 'ओज' अर्थात् तेज के रूप में परिणत हो जाता है, तथा सारे शरीर में जज्ब होकर शरीर को बलवान्, ओजस्वी और तेजस्वी बना देता है, जैसा कि योग-ग्रन्थों में लिखा है—

मनः स्थैर्ये स्थिरो वायुस्ततः बिन्दुः स्थिरो भवेत्।
बिन्दु-स्थैर्यात् सदा सत्त्वं पिण्डस्थैर्य च जायते॥

अर्थात्—मन के स्थिर होने पर प्राण स्थिर होते हैं और प्राण के स्थिर होने पर वीर्य स्थिर होता है, तथा वीर्य के स्थिर होने पर हमेशा बल, पराक्रम और तेज की वृद्धि तथा सारे शरीर की स्थिरता प्राप्त होती है। इसे हम एक और उदाहरण से स्पष्ट कर देना चाहते हैं—

जैसे, यदि हम दूध को बहुत दिनों तक सुरक्षित रखना चाहें तो वह दूध की हालत में बहुत दिनों तक सुरक्षित नहीं रह सकता, उसमें दुर्गन्ध पड़ जायगी और खटास आ जायगी। किन्तु यदि उसी दूध को घृत के रूप में परिणत कर दें तो वह बहुत दिनों तक सुरक्षित रह जाएगा और खानेवालों के लिए बल और आरोग्यता का कारण बनेगा। ठीक उसी प्रकार वीर्य भी वीर्य की हालत में बहुत दिनों तक सुरक्षित नहीं रह सकता। अतः उसे प्राणायाम द्वारा ओज में परिणित कर देने से वह चिरकाल तक शरीर में स्थिर रहता है और शरीर में आरोग्यता, ओज, तेज और बल की वृद्धि का कारण बनता है।

योगियों के ऊर्ध्वरेता होने और उनके चेहरे तथा शरीर के सब अंगों के तेजस्वी होने का भी यही रहस्य है। यजुर्वेद में लिखा है **"प्राणो वा वीर्यम्"** प्राण ही वीर्य है, क्योंकि प्राण ही शरीर में वीर्य को स्थिर रखने का कारण है।

तीसरा, ऊपर बताया जा चुका है कि मन, वीर्य और प्राणों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए जब हम प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को वश में कर लेते हैं तो हमारा मन भी शनैः-शनैः हमारे वश में हो जाता है, जैसाकि आगे वर्णन किया जाएगा। इसीलिए योग के ग्रन्थों में प्राणायाम को मन के वश में करने की पहली सीढ़ी कहा है। अतः प्राणायाम के द्वारा मन के वश में हो जाने पर हम अपने दूषित विचारों पर भी अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

इसीलिए वे दूषित विचार जो पहले हमारे ब्रह्मचर्य को भंग करने के कारण बनते थे, अब पास फटक भी नहीं सकते। अतः हम सुगमता से ब्रह्मचर्य का पालन कर अपने अमूल्य रत्न वीर्य की रक्षा करने में समर्थ हो जाते हैं। अब पाठकों को भली प्रकार ज्ञात हो गया होगा कि प्राणायाम किस प्रकार से वीर्य-रक्षा करने में पूर्ण सहायक होता है। अब हम अपने पाठकों को संक्षेप में यह बताएँगे कि—

"प्राणायाम द्वारा आयु की वृद्धि" किस प्रकार से होती है?

यह ध्रुव सत्य है कि जहाँ हमारे सुख-दुःखरूपी भोग हमारे कर्मों के अनुसार भगवान् की ओर से निश्चित होते हैं, वहाँ हमारी आयु भी हमारे कर्मों के अनुसार ईश्वर की ओर से निश्चित हुआ करती है। जैसाकि अपने योग-दर्शन में महर्षि पतञ्जलि स्वयं लिखते हैं—

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः"

अपने कर्मों का विपाक अर्थात् फल जीव को मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जाति, आयु तथा सुख-दुःख आदि के रूप में मिला करता है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब आयु भी हमारे कर्मानुसार निश्चित ही है तो हम प्राणायाम आदि साधनों द्वारा उसे कैसे बढ़ा सकते हैं? इसका संक्षेप में समाधान यह है कि परमेश्वर की ओर से जो हमारी आयु निश्चित होती है, उससे तात्पर्य वर्ष नहीं, अपितु 'प्राण' हुआ करते हैं, अर्थात् परमेश्वर की ओर से यह निश्चित नहीं होता कि अमुक प्राणी इतने वर्ष जीकर मर जाएगा, प्रत्युत यह निश्चित होता है कि अमुक प्राणी इतने प्राणों को निकालकर अपने देह का परित्याग कर देगा। अब इन प्राणों को जोकि हमें अपने कर्मों के फलस्वरूप मिले हैं, चाहे तो उन्हें हम शीघ्र समाप्त कर दें चाहे देर से। दृष्टांत के तौर पर जैसे एक बाबू को सौ रुपए मासिक वेतन मिलता है। वह बाबू यदि उन रुपयों को फजूलखर्ची में उड़ा दे तो वे सौ रुपए आधे मास के अन्दर ही व्यय हो जाएँगे। किन्तु यदि उन सौ रुपयों को संयम से व्यय करे तो वही सौ रुपये एक-दो मास में व्यय होंगे और उसे दीर्घ काल तक सुख देने का कारण बनेंगे। इसी प्रकार यदि हम अपने प्राणों को जो कि हमें अपने कर्मानुसार एक निश्चित संख्या में मिले हैं, शीघ्र समाप्त कर देंगे तो आयु कम हो जायगी; और यदि हम देर से समाप्त करेंगे तो आयु बढ़ जायगी।

यदि हम मनुष्येतर प्राणियों की आयु तथा श्वास-गति पर दृष्टि डालें तो इस सिद्धान्त की सत्यता स्पष्ट हो जायगी—मनुष्येतर प्राणियों में कछुआ सबसे कम अर्थात् एक मिनट में केवल पाँच श्वास निकालता है, अतः उसकी आयु सब प्राणियों से अधिक अर्थात् औसतन १५० वर्ष की है। इसके विपरीत खरगोश सबसे अधिक अर्थात् एक मिनट में ३८ प्राण निकालता है, अतः उसकी आयु सबसे कम औसतन ८ वर्ष की है।

स्वस्थ, बलवान् और सदाचारी मनुष्य के प्राण बहुत शनैः-शनैः और शांतिपूर्वक चला करते हैं, तथा निर्बल, रोगी और दुराचारी मनुष्य के प्राण बहुत जल्दी-जल्दी निकलते हैं। यही कारण है कि स्वस्थ, बलवान् तथा सदाचारी मनुष्य दीर्घायु हुआ करते हैं और कमजोर, रोगी तथा आचारहीन मनुष्य अल्पायु। मनुष्य-शरीर की प्राणशक्ति का आयाम (Life Spring) एक विशेष ट्यूब में रहता है। यही आयाम शरीर में बचपन, जवानी और बुढ़ापा लाता है। इसी प्राणशक्ति के द्वारा जीवन की उक्त तीनों स्थितियाँ कायम हैं। प्राणशक्ति का सबसे अधिक नाश विषय-भोग अर्थात् मैथुन-क्रिया से होता है, विशेषकर अप्राकृतिक मैथुन से। महात्मा कबीर ने कहा है—

बैठत बारा चलत अठारा बीस बीसा।
मैथुन करत तेंसठ तुटे कहत दास कबीरा॥

पूर्व बतलाया जा चुका है कि प्राणायाम के द्वारा मनुष्य स्वस्थ, बलवान् तथा सदाचारी बन जाते हैं। अब यदि हम प्राणायाम के द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाएँगे और दुर्वासनाओं में न फँसकर अपने वीर्य की रक्षा करेंगे तो अवश्य हम दीर्घायु बनेंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, इसलिए वेद में कहा है—हे प्राण और अपान शक्तियो! तुम मेरी मृत्यु से रक्षा करो।[१]

दूसरा—जितने समय में हम दस प्राण निकालते हैं उतने ही समय में हम प्राणायाम के द्वारा अपने प्राणों को अन्दर रोककर अर्थात् कुम्भक प्राणायाम करके एक ही प्राण को निकाल सकते हैं। ऐसी अवस्था में नौ प्राण

१. **प्राणापानौ मृत्योर्मा पातम्**॥ अथर्व० २।१६।१॥

हमारे प्राण-कोष में सुरक्षित रह जाते हैं जोकि हमारी दीर्घायु का कारण बनते हैं। योगियों की दीर्घायु का भी यही रहस्य है। इसलिए योग-ग्रन्थों में लिखा है—

यावद् वायुः स्थिरो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रांतिस्ततो वायुं निरोधयेत्॥

अर्थात्—"जब तक शरीर में प्राण स्थित हैं, तब तक ही जीवन है और प्राणों के निकल जाने अर्थात् समाप्त हो जाने का नाम ही मृत्यु है। इसलिए दीर्घायु के अभिलाषी को प्राणायाम द्वारा अपने अन्दर प्राणशक्ति को अवश्य रोकना चाहिए।" आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक' में लिखा है **"प्राणान् पालनाद् दीर्घमायुरवाप्नोति"**, अर्थात् प्राणों को सुरक्षित रखने से मनुष्य दीर्घायु को प्राप्त करता है। उपनिषदों में लिखा है **"आयुर्वै प्राणः"** प्राण ही आयु है। **"प्राणो वा अमृतम्"** प्राण ही अमृत अर्थात् दीर्घायु बनानेवाला है। अतः दीर्घ-आयु के अभिलाषी का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन प्राणों का प्राणायाम के द्वारा अवश्य निरोध करें। आशा है अब पाठकों को भली प्रकार से ज्ञात हो गया होगा कि मनुष्य प्राणायाम के द्वारा कैसे दीर्घायु बन जाया करता है।

प्राणायाम से मानसिक शक्तियों का विकास

प्राणायाम का उद्देश्य केवल मनुष्य को स्वस्थ, बलवान् तथा चिरायु बनाना ही नहीं है, अपितु मनुष्य की मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करना भी है, और यही प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है। हमारे शरीर में पाँच कोश तथा आठ चक्र हैं। इन कोशों के भीतर प्रवेश करने से जहाँ आत्मिक शक्तियों का विकास होता है, वहाँ चक्रों को जागृत करने से मनुष्य की मानसिक शक्तियों का भी विकास होता है। इसके पूर्व कि हम इस बात का वर्णन करें कि चक्र किस प्रकार जागृत होते हैं, पाठकों को यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि चक्र हैं क्या वस्तु। चक्र संख्या में आठ हैं, यथा—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा तथा ब्रह्मरन्ध्र। मूलाधार—गुदा के पास। स्वाधिष्ठान—मूलाधार से चार अंगुल ऊपर। मणिपूरक—नाभि-स्थान में। सूर्य—पेट के ऊपर रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर। अनाहत—हृदय में विशुद्धि कण्ठ में। आज्ञा चक्र—भृकुटि में, तथा ब्रह्मरन्ध्र—ललाट के ऊपर है। योग-ग्रन्थों में इन चक्रों के सम्बन्ध में

बहुत-कुछ लिखा है। किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में तो इनका शरीर से कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवाला बहुत विलक्षण तथा अलौकिक वर्णन किया है। आधुनिक योग-सम्बन्धी ग्रन्थों में प्रत्येक चक्र में ब्रह्मा आदि एक-एक देवता का निवास-स्थान भी माना है। चक्रों का इस प्रकार का वर्णन ही लोगों के हृदय में उनके विषय में अश्रद्धा का कारण बन रहा है। शरीरशास्त्र के वेत्ता जब शरीर में इस प्रकार के चक्रों का अभाव पाते हैं तो उन्हें इन चक्रों के सम्बन्ध में जिनका कि वर्णन वेदों में भी आता है जैसाकि पूर्व बताया जा चुका है, अश्रद्धा होने लगती है। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो न तो ये चक्र कोई अलौकिक वस्तु ही हैं और न ही इनमें किन्हीं ब्रह्मा आदि अलौकिक देवताओं का निवास है। अब पाठक पूछेंगे कि यदि चक्रों का उपर्युक्त स्वरूप नहीं तो ये चक्र क्या वस्तु हैं? इसका वर्णन हम संक्षेप में नीचे देते हैं।

हमारे समस्त शरीर में ज्ञानतन्तु जाल के समान फैले हुए हैं। यही ज्ञानतन्तु हमें रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कराते हैं, तथा अनेक शारीरिक और मानसिक शक्तियों के आधार हैं। ये ज्ञानतन्तु हमारे शरीर-रूपी नगर में, सड़कों के समान, अथवा देहरूपी राष्ट्र में रेल की लाइनों के समान फैले हुए हैं। जैसे शहर में सड़कों के अनेक केन्द्र होते हैं, जहाँ कि कई सड़कें आकर मिलती हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्रत्येक विषय के ज्ञानतन्तुओं के अनेक सेन्टर या केन्द्र हैं, जहाँ कि तत्तत् विषय के ज्ञानतन्तु आकर मिलते हैं। उन्हीं ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों का नाम ही चक्र है। इन चक्रों में अनेक शारीरिक तथा मानसिक दैवी शक्तियाँ निहित हैं, जोकि इन चक्रों के जागृत करने से ही प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य शक्तियों को आजकल के योगियों ने ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वरूप दे दिया है। जिस मनुष्य का जिस विषय का चक्र जागृत होता है, उसके ज्ञानतन्तुओं के जागृत होने से उन-उन ज्ञानतन्तुओं से सम्बन्धित समस्त शारीरिक तथा मानसिक दिव्य शक्तियाँ भी जागृत हो जाती हैं। इन्हीं षट् चक्रों को आधुनिक मेडिकल साइंसवालों ने 'हारमोन्स' के नाम से कहा है, और इन मूलाधार आदि चक्रों के उन्होंने अपनी परिभाषा में निम्न नाम रखे हैं—१. प्रोस्टेट, २. ऑवेरियन, ३. एडेनेलिन, ४. पेनक्रियास, ५. थाइराइड, ६. थाइमॉस और पियूटरी ग्लैण्ड। इन ग्लैण्ड्स के आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने जो-जो प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर बताए हैं

वैसे ही प्रभाव हठयोगियों ने भी षट चक्रों की जागृति के बताए हैं।

उपर्युक्त ज्ञानतन्तुओं के केन्द्रों अर्थात् मूलाधार आदि चक्रों को जागृत करने का मुख्य साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का पूर्ण अभ्यासी जिस चक्र को जागृत करना चाहता है, उसमें प्राणायाम के द्वारा प्राणों को केन्द्रित कर उस चक्र को जागृत कर लेता है। योगियों की अनेक प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों के, जिन्हें कि हम सिद्धियों के नाम से पुकारते हैं, विकसित होने का भी यही रहस्य है।

मानसिक शक्तियों के विकास का दूसरा साधन चित्त की एकाग्रता है। जिसका जितना चित्त एकाग्र होगा, उसकी उतनी ही मानसिक शक्तियाँ विकसित होंगी। किन्तु चित्त या मन का सहसा एकाग्र होना बहुत कठिन है, क्योंकि भौतिक जगत् में चित्त सबसे अधिक सूक्ष्म तथा चंचल वस्तु है। सूक्ष्म वस्तु का रोकना बहुत कठिन हुआ करता है। यही कारण है कि हम बिना अभ्यास के यदि चाहें तो अपने चित्त को दो-चार मिनट तक भी बाह्यवृत्तियों से रोककर एकाग्र नहीं कर सकते। इन चित्तवृत्तियों के रोकने के लिए ही योग का प्रादुर्भाव हुआ है और यह बात भी ध्रुव सत्य है कि हम बिना चित्त की एकाग्रता के न तो लौकिक उन्नति ही कर सकते हैं और न ही पारलौकिक। श्री वेदमूर्ति पं० सातवलेकर जी एक अभिनन्दनीय ग्रन्थ में लिखते हैं : "मेरे साथी एक-एक भीम के समान बलवान् थे जिनमें केवल मैं ही एक निर्बल था। मेरे साथी बलवान् होते हुए भी व्यसनों से भी दूर थे। पर इनमें से मेरा एक भी साथी चालीस-पैंतालीस वर्ष तक जीवित नहीं रहा; वे सब-के-सब ४५ वर्ष पूर्व ही समाप्त हो गए। मुझसे चार-पाँच गुणा बलवान् होते हुए भी वे ४५ वर्ष की आयु में ही समाप्त हो गए, किन्तु मैं अत्यन्त निर्बल होते हुए भी ९० वर्ष की आयु में भी कार्य करने में समर्थ हूँ। यदि यह चमत्कार है तो यह केवल प्राणायाम आदि योग का ही चमत्कार है। यदि मेरी प्रवृत्ति योगसाधना की ओर न झुकी रहती तो मेरा इतनी आयु तक जीवित रहना भी असम्भव था। जिसका जितना अधिक चित्त एकाग्र होगा, उतना उसके चित्त में अधिक बल, पराक्रम तथा नाना प्रकार की दिव्य शक्तियों का विकास होगा, जिनके द्वारा वह संसार के महान्-से-महान् कार्यों को भी बड़ी सुगमता से पूर्ण कर सकेगा और प्रभु-भक्ति तथा आत्म-चिंतन में भी उसका मन भली प्रकार लग सकेगा।" विक्षिप्त अर्थात् चंचल मन न तो

किसी सांसारिक महत्त्वपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है और न ही भगवद्‌भक्ति आदि आध्यात्मिक कार्यों में। एकाग्रचित जहाँ उस बड़ी नहर के समान है, जिसके कि जल के वेग में एक महान् शक्ति निहित है, वहाँ चंचल मन उस नहर से नाना दिशाओं में फूटे हुए उन छोटे नालों के समान है, जिन नालों के जल के वेग में नहर के वेग की अपेक्षा शतांश भी सामर्थ्य तथा शक्ति नहीं। अतः सांसारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के अभिलाषी का यह सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह अपने चित्त को एकाग्र करे। अब यह प्रश्न होता है कि ऐसा विक्षिप्त तथा चंचल चित्त, जिसकी कि महात्माओं ने पारे से उपमा दी है, किस प्रकार से एकाग्र हो? चित्त को शुद्ध तथा एकाग्र करने का सबसे मुख्य तथा सरल साधन है—प्राणों को अपने वश में करना। प्राणायाम एक प्रकार का मानसिक स्नान है। जैसे शरीर को शुद्ध करने के लिए स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन को शुद्ध और एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। जैसाकि पूर्व बताया जा चुका है, प्राण और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, मानो ये दोनों एक ही पेड़ के तने से निकलने वाली दो शाखाएँ हैं। यदि प्राण चंचल और अस्थिर हैं, दूसरे शब्दों में हमारे वश में नहीं हैं तो मन हमारे वश में कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार बाह्य जगत् में वायु के चलने पर वृक्षादि सब पदार्थ चलने तथा हिलने लगते हैं और वायु के बन्द होने पर वे स्थिर हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के अन्दर की प्राण वायु जब तक चलायमान रहती है, तब तक इन्द्रियाँ और मन भी चलायमान, चंचल रहते हैं। प्राणायाम द्वारा उनके स्थिर हो जाने पर मन भी स्थिर, शांत और एकाग्र हो जाता है। इसीलिए योग-ग्रन्थों में कहा है—

चले वाते चलं चित्तं, निश्चले निश्चलो भवेत्।

अर्थात् प्राणों के चलायमान होने पर मन भी चलायमान हो जाता है, तथा प्राणों के निश्चल होने पर मन भी चंचलता को छोड़कर निश्चल हो जाता है। शरीररूपी घड़ी का मनरूपी पुरजा जब हिल जाता है, अर्थात् अपने वास्तविक स्थान को छोड़ चंचल हो जाता है, तो इस घड़ी के मन, चित्त, बुद्धि आदि पुरजे भी अपने स्थान को छोड़ देते हैं। तब यह शरीररूपी घड़ी भी ठीक समय देना बन्द कर देती है। और यह विचार भी बिल्कुल सत्य है कि सूक्ष्म पदार्थ की अपेक्षा स्थूल पदार्थ जल्दी वश में हो जाता है। प्राण चूँकि मन की अपेक्षा अधिक स्थूल है, इसलिए प्राणों को अपने वश में करने में

इतनी कठिनता नहीं होती जितनी मन को वश में करने में होती है। प्राणों का चूँकि मन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, अतः जहाँ प्राणों की गति होगी, वहाँ मन की भी होगी। प्राण और मन के सम्बन्ध को योग-ग्रन्थों में कैसी सुन्दरता से दर्शाया गया है, यथा—

दुग्धाम्बुवत् सम्मिलितावुभौ तौ तुल्य-क्रियौ मानसमारुतौ हि।
यतो मरुत्तत्र मनः प्रवृत्तिर्यतो मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्तिः॥

अर्थात्—"(हि) निश्चय से (मानसमारुतौ) मन और प्राण (दुग्धाम्बुवत्+सम्मिलितौ) दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं। इसीलिए (तौ, उभौ) वे दोनों (तुल्य-क्रियौ) एक-साथ क्रिया अर्थात् गति करनेवाले हैं। इसलिए (यतः+मरुत्) जहाँ प्राण होंगे (तत्र+मनः+प्रवृत्तिः) वहीं मन की भी प्रवृत्ति होगी। और (यतः+मनः) जहाँ मन होगा (तत्र+मरुत्+प्रवृत्तिः) वहीं प्राणों की भी गति होगी।" इसलिए मन की चञ्चलता अर्थात् गति को रोकने के अभिलाषी को पहले अपने प्राणों की गति को रोकना अर्थात् उसे अपने वश में करना चाहिए। प्राणों के वश में होते ही मन या चित्त स्वयं वश में हो जायगा। प्राण चूँकि प्राणायाम के द्वारा ही वश में हो सकते हैं, इसीलिए चित्त की एकाग्रता का, दूसरे शब्दों में चित्त की दिव्य शक्तियों के विकास का, प्राणायाम ही सबसे मुख्य तथा सरल साधन है। इसीलिए योग के समाधिपाद में जहाँ चित्त की एकाग्रता के अनेक साधन लिखे हैं, वहाँ प्राणायाम को भी चित्त की एकाग्रता का मुख्य साधन बताया है, जैसाकि योग-दर्शन में लिखा है—

"प्रच्छर्दन-विधारणाभ्यां वा प्राणस्य"

अर्थात्—"प्राणों के बाहर लेने तथा अन्दर रोकने से भी चित्त एकाग्र हो जाता है।" अतः चित्त को एकाग्र करने, मानसिक शक्तियों के विकास करने तथा शारीरिक स्वास्थ्य, बल तथा आरोग्यता प्राप्त करने और दीर्घायु के लाभ करने का यदि कोई मुख्य तथा सर्वोत्तम साधन है तो वह प्राणायाम ही है। संक्षेपतः प्राणायाम मन को शान्त, एकाग्र और बलवान् बनाता है; मन की प्रसुप्त दैवी शक्तियों को जागृत करता है; शरीर को शुद्ध, पवित्र तथा बलवान् बनाकर उसे तेजस्वी तथा कान्तिमय बना देता है; शरीर के सब दोषों तथा मलों को प्रदीप्त अग्नि के समान जला देता है और रेचक द्वारा शरीर के सब विकारों को बाहर फेंक देता है। प्राणायाम छाती की प्रत्येक पेशी को पुष्ट

करता है और शरीर में घूमनेवाले सब रक्त को शुद्ध कर देता है। वीर्य के विकारों को दूर कर उसे निर्दोष और गाढ़ा बना आयु, तेज, बल तथा पौरुष की वृद्धि कर मनुष्य के जीवन को सुखमय बना देता है। इसीलिए प्राणों को वेद में पिता, भ्राता और मित्र के नाम से पुकारा गया है, जैसाकि वेद में लिखा है—

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥

—सामवेद

अर्थात्—हे प्राण ! तू ही हमारा पिता, भ्राता और मित्र है। अतः तू ही हमें दीर्घ जीवन के लिए समर्थ बना।

प्राणायाम हमारे लिए कितना आवश्यक और लाभप्रद है, यह पाठकों को ऊपर के वर्णन से भली प्रकार ज्ञात हो गया होगा। किन्तु प्राणायाम के इतने लाभप्रद होने पर भी हम प्रायः लोगों के मुख से यह सुना करते हैं कि प्राणायाम ने हमें अमुक हानि पहुँचाई। कोई कहता है—प्राणायाम से अमुक मनुष्य पागल हो गया, अमुक मनुष्य के सिर में चक्कर आने लगे, अमुक के दिमाग में तथा शरीर में गर्मी बढ़ गई, अमुक का शरीर कमजोर हो गया, अमुक की रीढ़ की हड्डी दुखने लगी, इत्यादि। इन बातों को सुनकर यदि किसी की प्राणायाम पर श्रद्धा भी होती है तो वह भी जाती रहती है। ऐसे मनुष्य सदा प्राणायाम को ही कोसा तथा बदनाम किया करते हैं। अब हमें विचार करना है कि क्या प्राणायाम से ही उपर्युक्त हानियाँ होती हैं? मेरे विचार में प्राणायाम को विधिपूर्वक न करना तथा प्राणायाम के प्रति पूर्ण अज्ञानता ही इसमें मुख्य कारण है। प्राणायाम करने में जिन नियमों का पालन करना चाहिए तथा जिन गलतियों से हमें बचना चाहिए, प्रायः लोग न तो उन नियमों का ही पालन करते हैं और न ही उन गलतियों से बचने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि प्राणायाम लोगों को बजाय लाभ के हानि पहुँचाने का कारण बन जाता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि विधिपूर्वक प्राणायाम किया जाय तो उससे पूर्ण लाभ ही होगा; हानि तो किसी अवस्था में हो ही नहीं सकती। मैंने लगभग दो-तीन सौ सज्जनों को प्राणायाम सिखाया है। इनमें से प्रत्येक को किसी-न-किसी प्रकार का लाभ ही हुआ है; हानि बिल्कुल नहीं। इनमें से एक सज्जन ने भी आकर यह नहीं कहा कि प्राणायाम

से मुझे अमुक हानि हुई। अतः प्राणायाम के अभिलाषियों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि यदि वे प्राणायाम से पूर्ण लाभ चाहते हैं तो वे विधिपूर्वक प्राणायाम करें और उन गलतियों तथा उदान्त भूलों से बचें कि जिनके कारण प्राणायाम बजाय लाभ के हानि का कारण बन जाता है।

प्राणायाम के मर्मज्ञ योगियों ने स्वयं लिखा है—

प्राणायामादि-युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यास-योगेन सर्व-रोग-समुद्भवः॥

अर्थात्—विधिपूर्वक प्राणायाम आदि योगाभ्यास करने से सब शारीरिक तथा मानसिक रोगों का क्षय अर्थात् नाश होता है, तथा अविधिपूर्वक अभ्यास करने से सब रोग पैदा हो जाते हैं।

प्राणायाम में होनेवाली गलतियाँ तथा उनसे बचने के उपाय

अब हम उन गलतियों तथा त्रुटियों का वर्णन करेंगे, जिनके कारण कि लोग अमृततुल्य प्राणायाम से भी बजाय लाभ के हानि उठा लिया करते हैं। उनसे हमें कैसे बचना चाहिए—इसका भी हम साथ-साथ दिग्दर्शन कराते जाएँगे। आशा है पाठक इस महत्त्वपूर्ण प्रकरण को बहुत सावधानी से पढ़ेंगे।

१. पहली गलती : अयोग्य-आहार

प्राणायाम के अभ्यासी को शुद्ध, सात्त्विक, पौष्टिक तथा स्निग्ध आहार का ही सदा सेवन करना चाहिए और वह भी परिमित मात्रा में, तथा निश्चित समय पर होना चाहिए। कोई भी प्राणायाम का अभ्यासी यदि प्राणायाम करते समय भोजन के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातों का ध्यान नहीं रखता, वह कभी भी प्राणायाम से लाभ नहीं उठा सकता। इतना ही नहीं, प्रत्युत अयोग्य आहार से प्राणायाम द्वारा हानि भी होने की पूर्ण सम्भावना है। प्राणायाम करने से जठराग्नि भी प्रदीप्त होती है तथा भूख भी बढ़ती है। ऐसी अवस्था में यदि हमारी जठराग्नि को सात्त्विक, स्निग्ध तथा पौष्टिक आहार मिल गया तो, वह उसे पचाकर जहाँ शरीर की सब धातुओं को पुष्ट कर उसे नीरोग, बलवान् तथा कान्तिमय बना देती है, वहाँ वह स्वयं भी—जैसे अग्नि पर घृत आदि स्निग्ध पदार्थ डालने से वह और अधिक प्रदीप्त हो जाती है, वैसे ही—पहले से अधिक प्रदीप्त हो जाती है। किन्तु यदि प्राणायाम द्वारा प्रदीप्त अग्नि को

सड़ा, गला, रूखा-सूखा भोजन मिला तो उससे जहाँ वह स्वयं मन्द पड़ जाएगी, वहाँ शरीर की सब धातुएँ भी दूषित और क्षीण होंगी और शरीर उल्टा निर्बल तथा रोगी बन जाएगा। अतः प्राणायाम करते समय उसके उपयोगी आहार का न करना यह पहली गलती है, जो कि प्राणायाम के अभ्यासी को अवश्य दूर करनी चाहिए। योगाभ्यासी अर्थात् प्राणायाम करनेवाले का आहार कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्ध में योग-ग्रन्थों में लिखा है—

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं सर्वधातु-प्रपोषणम्।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्॥

अर्थात्—योगी को सदा शरीर को पुष्ट करनेवाला, मधुर, स्निग्ध, जिसमें गाय का दुग्ध, घृत आदि पदार्थ हों, और जो शरीर की सब धातुओं का पोषण करनेवाला हो, रुचिकर तथा अपनी प्रकृति के अनुसार हो, ऐसा भोजन करना चाहिए।

अतः प्राणायाम के अभ्यासी को सड़े, गले, रूक्ष, अधिक मिर्च-मसाले वाले, चरपरे तथा बहुत खट्टे पदार्थों वाले भोजन का परित्याग कर, उपर्युक्त श्लोक में वर्णित भोजन ही करना चाहिए।

२. दूसरी गलती : संयम का अभाव

प्रायः लोग प्राणायाम के महत्त्व तथा लाभों को सुनकर या पढ़कर प्राणायाम प्रारम्भ तो कर देते हैं, किन्तु प्राणायाम करते समय उन्हें जिस संयम से चलना चाहिए, उस पर वे बिल्कुल ध्यान नहीं देते। वे चाहते हैं कि हम प्राणायाम भी करते जाएँ और साथ ही हमसे संसार की इन्द्रिय-लोलुपता भी न छूटे। ऐसे मनुष्यों को प्राणायाम बजाय लाभ के हानि पहुँचाएगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं, क्योंकि प्राणायाम के अभ्यासी के लिए वीर्य-रक्षा परम आवश्यक है। प्राणायाम के करने से शरीर में स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न होती है। वह उष्णता जहाँ जठराग्नि को प्रदीप्त करती है, वहाँ यदि प्राणायाम के अभ्यासी के अन्दर वीर्य आदि धातुएँ सुरिक्षत होती हैं तो वह उष्णता उन्हें और अधिक निर्दोष तथा पुष्ट बनाकर उसके द्वारा सारे शरीर को नीरोग तथा कान्तिमय बना देती है। इसके विपरीत जिस असंयमी मनुष्य ने अत्यधिक विषय-भोग द्वारा अपने को निर्वीर्य बना लिया है, वह यदि प्राणायाम करता है,

तो उसके अन्दर प्राणायाम की उष्णता और अधिक बढ़कर शरीर की धातुओं को सुखा देती है, जिससे शरीर कमजोर, रूखा तथा निस्तेज बन जाता है। पाठकों ने कई ऐसे प्राणायाम करनेवालों को देखा होगा। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

अर्थात्—"संयम-रहित विषय-लोलुप मनुष्य से प्राणायाम आदि योग-साधन का होना अत्यन्त कठिन है, यह मेरा निश्चित मत है।" फिर उसके फल की प्राप्ति का तो कहना ही क्या ! इसके विपरीत—

युक्ताहार-विहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगा भवति दुःखहा॥

अर्थात् प्राणायाम करने के इच्छुक को अपने आहार-व्यवहार में अवश्य संयमी बनना चाहिए, विशेषकर ब्रह्मचर्य-पालन की ओर तो विशेष ध्यान देना चाहिए। दुःख की बात तो यह है कि कई लोग प्राणायाम आदि साधन करते ही इसलिए हैं कि इससे वे स्वेच्छाचारी बनकर संसार के विषय-भोग भोगने में और अधिक समर्थ हो सकें। मैं जिस आश्रम में योगाभ्यास सीखता था, वहाँ एक पूना कॉलिज में प्रोफेसर महोदय इस उद्देश्य से योगाभ्यास करने आए कि उनकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाए। इससे पूर्व उनको हमेशा तीसरे-चौथे दिन स्वप्नदोष हो जाता था, किन्तु प्राणायाम आदि अभ्यास से उनके आश्रम में आने के बीस दिवस तक स्वप्नदोष नहीं हुआ। एक दिन मैंने उनसे पूछा, "आप विवाहित हैं या अविवाहित?" उसने उत्तर दिया "अविवाहित।" मैंने फिर पूछा, "क्या आप भविष्य में शादी करेंगे?" उसने कहा, "एक नहीं तीन करूँगा और वह भी इंगलैंड में जाकर, इसीलिए तो मैं कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि जिससे मैं शक्ति प्राप्त कर अधिक-से-अधिक विषय-भोग भोगने में समर्थ हो सकूँ।" आगे चलकर उस प्रोफेसर ने कहा—"मुझे तो प्राणायाम आदि के करने से उल्टी एक और चिंता पैदा हो गई है।" मैंने पूछा—"वह क्या?" उसने कहा—"पहले मुझे हमेशा तीसरे-चौथे दिन स्वप्नदोष हो जाता था, किन्तु अब तो मुझे यहाँ आ जाने पर प्राणायाम आदि करते हुए बीस दिन हो गए, किन्तु एक दिन भी स्वप्नदोष नहीं हुआ। इससे मुझे यह चिन्ता है कि कहीं मेरे अन्दर से विषय-भोग का मार्ग तो बन्द नहीं हो गया?" अब पाठक स्वयं

विचार करें कि ऐसे काम के कीड़ों को यदि प्राणायाम हानि पहुँचाए तो आश्चर्य ही क्या है ! पाठक इसका यह तात्पर्य न लगाएँ कि पूर्ण ब्रह्मचारी ही प्राणायाम का अधिकारी है। प्रत्युत संयमपूर्वक गृहस्थाश्रम का भोग करता हुआ मनुष्य भी प्राणायाम को कर सकता है, तथा उससे पूर्ण लाभ उठा सकता है।

३. तीसरी गलती : बिना सीखे प्राणायाम करना

बिना किसी पूर्ण अनुभवी से सीखे अपने-आप पुस्तकों आदि को पढ़कर प्राणायाम करने लग जाना, यह प्राणायाम की तीसरी गलती है। प्रायः लोग बिना किसी अनुभवी योगी से सीखे अपने-आप ही पुस्तकों आदि की सहायता से अथवा इधर-उधर से सुन-सुनाकर प्राणायाम आदि करने लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वे प्राणायाम की विधि को न समझ सकने के कारण उसे उलटा-सुलटा करने लगते हैं और उससे बजाय लाभ के हानि उठा लेते हैं। पुस्तकों आदि को देखकर लोग प्राणायाम से किस प्रकार हानि उठा लेते हैं, इसका एक रोचक उदाहरण पाठकों की जानकारी तथा मनोरंजन के लिए हम नीचे देते हैं।

आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व मैं एक ब्रह्मचर्याश्रम में संस्कृत अध्ययन करता था। उसी आश्रम में एक वानप्रस्थी महोदय भी रहते थे। एक दिन हमारे गुरुजी टहलते-टहलते वानप्रस्थीजी के कमरे की ओर जा निकले। वहाँ उनको एक ऐसी आवाज सुनाई दी कि मानो कोई साँड अरड़ा रहा है। किन्तु जब उन्होंने चारों ओर देखा तो उन्हें कोई भी साँड या भैंसा नजर न आया। वे बड़े आश्चर्य में पड़ गए कि बात क्या है? वह चलते-चलते वानप्रस्थीजी के कमरे के सामने जा पहुँचे। वहाँ वे क्या देखते हैं कि वानप्रस्थीजी भैंसे की तरह अरड़ा कर मुख से जोर-जोर से श्वास अन्दर ले तथा बाहर निकाल रहेहैं। वानप्रस्थीजी से गुरुजी ने पूछा "आप यह क्या कर रहे हैं?" वानप्रस्थीजी ने उत्तर दिया, "प्राणायाम कर रहा हूँ।" गुरुजी ने कहा, "इस प्रकार भैंसे की तरह अरड़ाकर मुख से श्वास लेने तथा निकालने का प्राणायाम हमने तो न आज तक सुना है न पढ़ा है।" तब तत्काल वानप्रस्थी ने कहा, "आप यह कैसे कहते हैं कि इस प्रकार का प्राणायाम हमने कहीं नहीं सुना या पढ़ा? देखिए, स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा

है—"जैसे वमन को जोर से बाहर निकाल देते हैं, वैसे ही प्राण को भी जोर से बाहर निकाल दें। अतः वमन चूँकि मुख से निकाली जाती है और उस समय जोर से आवाज भी होती है, इसीलिए मैं जोर-जोर से चिल्लाकर मुख से प्राणायाम कर रहा हूँ।" पाठक देखेंगे कि लोग किस प्रकार लेखक के आशय को न समझकर उसके सर्वथा विपरीत उलटी-सुलटी तरह से प्राणायाम आदि क्रियाएँ करने लगते हैं। ऐसे नासमझ लोगों को यदि प्राणायाम हानि पहुँचाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या? फिर आजकल कई ऐसे भी लोग हैं, जो स्वयं तो प्राणायाम आदि के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, किन्तु केवल पैसा कमाने के उद्देश्य से इधर-उधर से कुछ मैटर लेकर प्राणायाम के सम्बन्ध में पुस्तकें लिख देते हैं। मैंने प्राणायाम के सम्बन्ध में कई ऐसी पुस्तकें देखी हैं, जो प्राणायाम के विषय की बहुत प्रसिद्ध पुस्तकें मानी जाती हैं, किन्तु उनमें प्राणायाम करने की विधियाँ बिल्कुल गलत दी गई हैं। इस प्रकार की पुस्तकों को पढ़कर प्राणायाम करने से सिवाय हानि के लाभ कदापि नहीं हो सकता। अतः जो सज्जन प्राणायाम से पूरा लाभ उठाना चाहते हैं और हानियों से बचना चाहते हैं, उनका यह तीसरा कर्त्तव्य है कि वे किसी योगानुभवी महानुभाव से ही विधिपूर्वक प्राणायाम सीखकर उसे करें। इधर-उधर से पढ़-पढ़ा या सुन-सुनाकर नहीं।

४. चौथी गलती : प्राणायाम की पूर्व-तैयारी को न करना

प्राणायाम करने के पूर्व उसकी पूर्व-तैयारी करना परम आवश्यक है। पूर्व-तैयारी से तात्पर्य है—अपने-आपको प्राणायाम के योग्य बनाना। जो मनुष्य प्राणायाम करने से पूर्व अपने-आपको प्राणायाम करने के योग्य नहीं बना लेता, वह चाहे किसी अनुभवी से सीखकर ही क्यों न प्राणायाम करे, तब भी उसे हानि ही पहुँचेगी, लाभ कदापि नहीं। वह पूर्व-तैयारी क्या है? इसे हम संक्षेप से पाठकों के सम्मुख रखते हैं। हमारे पीछे रीढ़ की हड्डी में सूर्य, चन्द्र और सुषुम्ना नाम की तीन सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं जिन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना भी कहते हैं, जोकि मूलाधार चक्र से लेकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र चक्र तक चली गई हैं। हम जब प्राणायाम करते हैं तो हमारे प्राण इन तीनों नाड़ियों में से होकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र की ओर जाते हैं। प्राणायाम करते समय प्राण सुगमतापूर्वक तभी जा सकते हैं, जब कि उपर्युक्त नाड़ियाँ पूर्णतया शुद्ध हों,

अर्थात् उनमें किसी प्रकार का भी मल या दोष न हो। अतः प्राणायाम करने के अभिलाषी को प्राणायाम करने के पूर्व नाड़ी-शुद्धि कर लेना परमावश्यक है। यदि उपर्युक्त तीनों नाड़ियाँ पूर्णतया शुद्ध होती हैं, तो प्राणायाम करते समय प्राण बड़ी सुगमता से मूलाधार से उठकर इन नाड़ियों के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थिर हो जाते हैं, और साधक की शारीरिक तथा मानसिक उन्नति का कारण बनते हैं। यदि इन नाड़ियों में किसी प्रकार की खराबी या मल होता है तो प्राणायाम करते समय हमारे प्राण उपर्युक्त नाड़ियों के दूषित मलयुक्त स्थान में जाकर रुक जाते हैं, और वहाँ किसी-न-किसी प्रकार की हानि पहुँचाकर आगे निकल जाते हैं। यदि मल की अत्यधिकता के कारण नाड़ियों का मार्ग बिल्कुल बन्द होता है तो प्राण जाकर वहीं रुक जाते हैं, और ऐसी अवस्था में और भी अधिक हानि पहुँचाने का कारण बनते हैं। इस विषय को हम पाठकों के सुबोध के लिए एक उदाहण से समझाते हैं।

एक इंजन को प्रयाग से काशी को जाना है। यदि प्रयाग से काशी तक लाइन बिल्कुल साफ है, तो इंजन बड़ी सुगमता से चलकर काशी पहुँच जाता है। किन्तु यदि लाइन साफ नहीं है, अर्थात् लाइन के बीच में कोई ऐसी वस्तु आ जाय कि जिसको इंजन हटा न सके तो इंजन उससे टकराकर चकनाचूर हो जाता है, और यदि हल्की वस्तु बीच में आ जाय तो इंजन उसे दूर फेंककर या कुचलकर आगे निकल जाएगा। पहली अवस्था में इंजन को हानि पहुँचती है, और दूसरी अवस्था में उस वस्तु को जिसको कि इंजन ने उठाकर फेंक दिया या कुचल डाला है। इसी प्रकार हमारे प्राणरूपी इंजन के आने-जाने की नाड़ियाँरूपी लाइनें यदि बिल्कुल शुद्ध और निर्मल हैं तो प्राणरूपी इंजन बड़ी सुगमता से इनके अन्दर से गुजरकर अपने उद्दिष्ट स्थान अर्थात् ब्रह्मरंध्र तक पहुँच जाता है; और यदि इन नाड़ीरूपी लाइनों में किसी प्रकार की खराबी या मल एकत्रित होता है तो यह प्राणरूपी इंजन या तो वहीं रुक जाता है, या मल को इधर-उधर धकेलकर आगे चला जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में शरीर को बजाय लाभ के हानि पहुँच जाती है, इसीलिए योगियों ने प्राणायाम करने के पहले नाड़ी-शुद्धि पर बहुत जोर दिया है। योग-ग्रन्थों ने लिखा है—

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।

अर्थात्—मल से युक्त नाड़ियों में प्राण, सुषुम्ना नाड़ी में कभी भी भली प्रकार प्रवेश नहीं कर सकता, जोकि प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है। फिर एक

स्थान पर लिखा है—

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाड़ी-चक्रं मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राण-संग्रहणे क्षमः॥

अर्थात् मल से युक्त जब सब नाड़ी-चक्र बिलकुल शुद्ध हो जाते हैं, तभी योगी प्राणायाम द्वारा प्राणों को भली प्रकार अन्दर धारण करने अर्थात् कुम्भक करने में समर्थ होता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति योग के स्वास्थ्यप्रद आसन तथा न्यौली-बस्ती आदि क्रियाओं से भली प्रकार हो सकती है। अतः प्राणायाम करने से पूर्व कुछ समय तक योग के शीर्ष, सर्वांग आदि आसन तथा बस्ती, न्यौली आदि क्रियाएँ अवश्य कर लेनी चाहिएँ। इन आसनों तथा बस्ती, न्यौली आदि क्रियाओं से जहाँ शारीरिक रोग और निर्बलता आदि दूर होकर शरीर स्वस्थ तथा बलवान् बन जाता है, वहाँ शरीर की सब नाड़ियाँ भी शुद्ध तथा दोष-रहित हो जाती हैं। नाड़ियों के शुद्ध तथा दोषरहित हो जाने पर ही प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिए और वह भी प्रारम्भ में कुम्भक अर्थात् प्राणों को रोके बिना।

प्राणायाम के तीन भाग हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। अतः शुरू में केवल 'पूरक' अर्थात् प्राणों को नासिका द्वारा खूब लम्बा करके अन्दर लेना और उसे रोके बिना ही 'रेचक' अर्थात् शनैः-शनैः खूब लम्बा करके प्राण को बाहर निकाल देना चाहिए। इस प्राणायाम से यदि आसन आदि क्रियाओं के करने के पश्चात् भी प्राणवाहिनी नाड़ियों में कुछ सूक्ष्म मल या खराबी रह जाती है, तो वह भी दूर होकर प्राणवाहिनी नाड़ियाँ बिल्कुल शुद्ध हो जाती हैं। सम्भवतः पाठक पूछेंगे—हम यह कैसे समझें कि अब हमारी नाड़ी-शुद्धि हो गई? इसका संक्षेप में उत्तर यही है कि जब नाड़ी-शुद्धि हो जाती है तो केवल पूरक और रेचक प्राणायाम करते-करते आगे चलकर प्राण अपने-आप शनैः-शनैः अन्दर स्वयं रुकने लगते हैं, और अन्दर से कुम्भक करने की एक स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होने लगती है। जब साधक इस स्थिति को पहुँच जाए, तब उसे समझना चाहिए कि अब मेरी नाड़ी-शुद्धि हो गई। तब प्राणायाम के अभ्यासी को 'कुम्भक' अर्थात् प्राणों को अन्दर रोकना प्रारम्भ कर देना चाहिए, और वह भी बहुत धीरे-धीरे, अर्थात् जितना सुगमतापूर्वक प्राण अन्दर रुक सके उतना ही रोकना चाहिए, जबरदस्ती से नहीं; और अन्दर

रोकने के अभ्यास को अर्थात् कुम्भक के समय को शनैः-शनैः बढ़ाते जाना चाहिए। जबरदस्ती से प्राण को रोकने से बहुत हानि होने की सम्भावना है। कई लोग जब पुस्तकों में पढ़ते हैं कि जितने समय में पूरक किया जाए, उससे डेढ़ गुणा समय में रेचक और दुगने समय में कुम्भक करना चाहिए। इतना पढ़ते ही वे बिना विचारे प्रारम्भ में ही पूरक से दुगुने समय में कुम्भक अर्थात् प्राणों को अन्दर रोकना प्रारम्भ कर देते हैं, और वह भी बिना नाड़ी-शुद्धि किए। यदि इनसे पूरक से दुगुने समय में प्राण अन्दर नहीं रुकते तो वे उसे जबरदस्ती रोकने का प्रयत्न करते हैं; तिस पर भी नहीं रुकते तो वे नासिका के द्वार को खूब जोर से अँगुलियों से पकड़कर बन्द कर देते हैं। ऐसा करने से उन्हें बहुत भयंकर हानि पहुँच जाती है, और वे अपनी नासमझी और अज्ञानता को दोष न देकर प्राणायाम को दोषी ठहराने लगते हैं।

वास्तव में पुस्तकों में जो प्राणायाम के कुम्भक आदि का समय दिया होता है वह प्राणायाम की परिपक्वावस्था का समय है, अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करते-करते जब साधक का प्राण पूरक से दुगुने समय तक अन्दर सरलतापूर्वक रुकने लग जाय, अर्थात् कुम्भक होने लग जाय, तब समझना चाहिए कि अब मेरा प्राणायाम परिपक्वावस्था तक पहुँच गया है। किन्तु इस बात को न तो पुस्तकों के लेखक ही खोलकर लिखते हैं और न पढ़नेवाले भली प्रकार समझने का यत्न करते हैं। यही कारण है कि वे प्रारम्भ में ही प्राणों को पूरक से दुगुने समय तक जबरदस्ती रोकना प्रारम्भ कर देते हैं, और प्राणायाम से हानि उठा लेते हैं।

५. पाँचवीं गलती : अपनी प्रकृति के अनुसार प्राणायाम का न करना

प्राणायाम कई प्रकार के हैं, जैसे—सूर्यभेदी, उज्जायी, लोमविलोम, भस्त्रिका, शीतली और प्लाविनी इत्यादि। इनमें से कई प्राणायाम तो ऐसे हैं जो शरीर में गर्मी पैदा करते हैं। कई प्राणायाम शरीर में ठण्डक पैदा करते हैं और कई न विशेष ठण्डक न गर्मी। प्राणायाम के अभ्यासी को अपनी प्रकृति को देखकर ही प्राणायाम करना चाहिए, अर्थात् यदि उसकी प्रकृति सर्द है तो शरीर में उष्णता उत्पन्न करनेवाला प्राणायाम करना चाहिए, और यदि गर्म है तो शरीर में ठण्डक उत्पन्न करनेवाला प्राणायाम करना चाहिए। किन्तु खेद है कि प्राणायाम सिखानेवाले और करनेवाले इस बात का बिल्कुल ध्यान नहीं

रखते। जिसने जैसा एक-आध प्राणायाम कहीं से पढ़ या सीख लिया, वैसा ही बिना साधक की शारीरिक स्थिति को पूर्णतया जाने, सबको बतलाना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे महानुभाव 'नीम हकीम खतरा-ए-जान' की किंवदन्ती को अक्षरशः चरितार्थ करते हैं। क्योंकि जैसे कोई वैद्य या डॉक्टर बिना रोगी की वात, पित्त और कफ प्रकृति को जाने औषध देने लग जाए तो उससे रोगी का रोग बजाय कम होने के अधिक बढ़ेगा ही। यही अवस्था सिखानेवालों की होती है, जो बिना साधक की प्रकृति को जाने, उसे जैसा-तैसा प्राणायाम बतला देते हैं। एक बार राजपूताने के एक राजाधिराज ने मुझे प्राणायाम तथा योग की अन्य ध्यान, धारणा आदि क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ पूछने के लिए बुलाया। जब मैं उनसे इस विषय पर बात कर रहा था, उस समय एक कॉलिज के प्रोफेसर महानुभाव भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने कहा, "मुझे अमुक महानुभाव ने इस प्रकार का प्राणायाम बतलाया है।" मैंने उनसे कहा, "इस प्राणायाम से आपको जो लाभ हुआ होगा वह तो आप ही जानें, किन्तु इससे जो आपको हानि हुई है, वह मैं बता देता हूँ," मैंने उस प्राणायाम के करने से जो उन्हें दो तीन हानियाँ बताईं, उन्होंने कहा "बिल्कुल यही हानियाँ मुझे इस प्राणायाम करने से हुई हैं।" इसलिए प्राणायाम के अभ्यासी का यह पाँचवाँ कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रकृति के अनुसार प्राणायाम करे, इससें विपरीत कभी नहीं।

६. छठी गलती : आसन और बन्धों के ज्ञान का अभाव

आसन और बन्धों का ज्ञान न होना, यह प्राणायाम के सम्बन्ध में छठी और अन्तिम गलती है। इस गलती के कारण भी लोगों को प्राणायाम से यथेष्ट लाभ नहीं होता। इतना ही नहीं, प्रत्युत कभी-कभी हानि भी उठानी पड़ती है। ऊपर बताया जा चुका है कि प्राणायाम करते समय प्राण सूर्य, चन्द्र और सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर ब्रह्मरन्ध्र की ओर गति करता है। अतः इन नाड़ियों का प्राणायाम करते समय बिल्कुल सीधा और समरेखा में रहना परम आवश्यक है, जिससे प्राण का सरलतापूर्वक इनके द्वारा ऊर्ध्व-गमन हो सके। यह तभी हो सकता है जब हमारा शरीर प्राणायाम के समय बिल्कुल सीधा और समरेखा में रहे। इसीलिए भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

समं काय-शिरो-ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

संपेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

अर्थात्—"योगाभ्यासी को चाहिए कि वह प्राणायाम आदि योगाभ्यास करते समय इधर-उधर देखना छोड़कर और अपनी नासिका के अग्रभाग आदि किसी भी स्थान में अपने चित्त को एकाग्र करके, अपने सिर, गर्दन और छाती आदि सब शरीर को बिल्कुल सीधा और निश्चल रखकर और भली प्रकार स्थिर होकर अभ्यास में बैठे।" अतः सारे शरीर को बिल्कुल सीधा और अचल रखने के लिए आवश्यक है कि प्राणायाम का अभ्यासी किसी विशेष स्थिति में बैठकर प्राणायाम करे। उसी विशेष स्थिति का नाम ही योगियों ने 'आसन' रखा है, और इसके लिए कई प्रकार के आसनों को निश्चित किया है, जैसे—सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन इत्यादि। अतः प्राणायाम के अभ्यासी को किसी आसन-विशेष पर बैठकर ही अभ्यास करना चाहिए, जैसे-तैसे उलटे-सीधे बैठकर नहीं।

आसनों के सम्बन्ध में एक और बात का ध्यान रखना भी परम आवश्यक है। ऊपर बताया जा चुका है कि प्राणायाम कई प्रकार के हैं। इनमें से कई प्राणायाम तो ऐसे हैं जो किसी निश्चित आसन पर बैठकर ही किए जा सकते हैं, जैसे—उज्जायी, लोमविलोम आदि सिद्धासन पर बैठकर करने चाहिएँ और भस्त्रिका, कपालभाती आदि पद्मासन पर बैठकर। किन्तु आजकल के प्राणायाम के करनेवाले तथा सिखानेवाले इस बात पर प्रायः बहुत कम ही ध्यान देते हैं—जैसा किसी को आसन आया, उसी पर बैठकर प्राणायाम कर लिया, चाहे वह आसन उस प्राणायाम के अनुकूल हो या न हो। यही कारण है कि साधकों को प्राणायाम के अभ्यास से यथेष्ट लाभ नहीं मिलता।

प्राणायाम करते समय जिस दूसरी बात का ध्यान रखना परम आवश्यक है, वह है 'बंध'। प्राणायाम के तीन भाग हैं, यह ऊपर बताया जा चुका है, अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचक। इनमें से प्रत्येक भाग को करते समय किसी विशेष प्रयत्न के करने की आवश्यकता होती है जिससे प्राणायाम का अभ्यास भली प्रकार सुगमतापूर्वक होकर यथेष्ट लाभ पहुँच सके। उसी विशेष प्रयत्न का नाम योगियों ने 'बंध' रखा है। बंध मुख्यतया तीन प्रकार के हैं—मूल-बन्ध, जालन्धर-बन्ध और उड्डियान-बन्ध। प्रथम तो लोग इन बन्धों को ही भली प्रकार नहीं जानते। फिर प्राणायाम के कौन-से अंग में कौन-सा

बन्ध करना चाहिए, इसका ज्ञान तो बहुत कम लोगों को है। यही कारण है कि प्राणायाम से लोग बहुत कम लाभ उठाते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत अनेक प्रकार की हानियाँ भी उठा लेते हैं। अतः प्राणायाम से पूर्ण लाभ उठाने तथा उससे होनेवाली हानियों से बचने के लिए प्राणायाम के अभ्यासी को उपर्युक्त बतलाई त्रुटियों और गलतियों से बचने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

प्राणायाम-विधि

अब हम पाठकों के लाभार्थ शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने, और मानसिक शक्तियों को जागृत करनेवाले कुछ अत्यन्त उपयोगी प्राणायाम बता रहे हैं, यथा—

(१) शरीर में वीर्य को सुरक्षित करने तथा शीघ्रपतन आदि वीर्यदोषों को दूर करनेवाला अत्यन्त उपयोगी—

वीर्यरक्षक प्राणायाम

विधि—सिद्धासन में बैठ जाएँ पैर की एड़ी सीवन में भली प्रकार सटी रहे। सिर, छाती और गर्दन बिल्कुल सीधे रहें। जिस नासिका-छिद्र से श्वास भली प्रकार चल रहा हो, उससे खूब लम्बा करके मूलबन्ध के साथ अर्थात् गुदा और मूलेन्द्रिय को ऊर्ध्व-आकर्षण करते हुए श्वास को प्रथम पेट और पुनः छाती में भरें और मूलबन्ध को बिना छोड़े श्वास को अन्दर ही रोककर, जालन्धर बन्ध करके पेट को आगे-पीछे अर्थात् अन्दर और बाहर निकालें, और जितनी सुगमतापूर्वक यह क्रिया कर सकें करें। फिर शनैः-शनैः लम्बा करके श्वास को बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में ऐसे पाँच बार प्राणायाम करें। एक सप्ताह में दो-दो प्राणायाम बढ़ाते-बढ़ाते बीस तक ले जाएँ। यह स्मरण रहे कि मूलबन्ध पूरक, कुम्भक तथा रेचक इन तीनों अवस्थाओं में लगा रहे। इतना ही नहीं, प्रत्युत प्राणायाम के प्रारम्भ करने से लेकर समाप्ति तक चाहे जितनी बार भी प्राणायाम किया जाय, मूलबन्ध दृढ़तापूर्वक लगा रहना चाहिए। प्राणायाम के बीच में एक बार भी नहीं छूटना चाहिए।

लाभ—यह प्राणायाम वीर्य-रक्षा तथा स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि वीर्य-दोषों को दूर करने में अत्यन्त लाभकारी है।

(२) पाचन यन्त्रों को बलवान् बनाने तथा कुण्डलिनी जागृत करने का सर्वोत्तम—

क्षुधावर्द्धक प्राणायाम

विधि—पद्मासन में बैठकर पहले तीन बार इक्कीस-इक्कीस संख्या-वाली कपालभाती क्रिया करें, फिर सिद्धासन लगाकर हाथों को पीठ पीछे ले जाकर एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई को पकड़ लें और इसी हालत में दोनों नथनों से श्वास को पूरक द्वारा नाभि-प्रदेश में ले-जाएँ और फिर माथे को आगे की ओर भूमि पर ले-जाकर टेक दें, ऊपर के पैर की एड़ी नाभि के साथ भली प्रकार से सटी रहे। इसे योगमुद्रा भी कहते हैं। इसी अवस्था में कुम्भक के साथ-साथ चित्त नाभि-प्रदेश में एकाग्र कर यह प्रबल भावना करें कि मेरे सब पाचन-यन्त्र स्वस्थ तथा बलवान् हो रहे हैं और कुण्डलिनी-शक्ति की जागृति हो रही है। जितनी देर तक सुगमतापूर्वक रोक सकें, उतनी देर तक प्राणों को रोके रहें, और फिर प्राणों को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। फिर पूरक और कुम्भक करें। इस प्रकार पाँच प्राणायाम करें, और हर सप्ताह में एक-एक बढ़ाते हुए दस तक ले जाएँ। सिर प्राणायाम की समाप्ति तक भूमि पर ही लगा रहे।

(३) छाती, हाथ तथा पेट को बलवान् बनानेवाला प्राणायाम

बलवर्द्धक प्राणायाम

विधि—सूर्य की ओर मुख करके सीधे खड़े हो जाएँ। दोनों हाथों को कड़े करके तथा हथेलियों को ऊपर करके, दोनों हाथों को ऊपर ले जाएँ तथा ऊपर ले-जाकर दोनों हाथों को मिला दें। हाथों के ऊपर जाने के साथ-साथ ही नासिका द्वारा प्राणों को अन्दर भरते जाएँ और एड़ियों भी ऊपर उठाते जाएँ। फिर हथेलियों को नीचे करके, श्वास निकालते हुए हाथों को शनैः-शनैः नीचे ले आएँ, और साथ ही एड़ियों को नीचे ले जाएँ। इस प्रकार जितनी बार सुगमतापूर्वक कर सकें, करें। प्राणों को अन्दर लेते समय भावना करें कि प्राणों द्वारा सूर्य की किरणें मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर शरीर को नीरोग बनाकर शक्ति का संचार कर रही हैं। प्राणों को बाहर निकालते समय यह भावना करें कि मेरे शरीर में से अपानवायु के साथ-साथ

सम्पूर्ण रोग तथा निर्बलताएँ निकल रही हैं।

(४) शारीरिक दोषों को दूर करने, क्षुधा बढ़ाने तथा नाड़ी-शुद्धि करने वाला बिना कुम्भक—

उज्जायी प्राणायाम

विधि—सिद्धासन में बैठ जाएँ, फिर दोनों नासिका-छिद्रों से बलपूर्वकभीतर के श्वास को बाहर निकाल दें। शनैः-शनैः दोनों छिद्रों से जैसे मनुष्य निद्रा में श्वास लेते तथा निकालते समय आवाज करता है, वैसे कण्ठ से सूक्ष्म ध्वनि करते श्वास को लबा करके शनैः-शनैः अन्दर भरें, तथा अन्दर लेते समय छाती को भली प्रकार फुलाएँ, जिससे फेफड़ों के सभी भागों में श्वास भली प्रकार से भर जाए। फिर बिना कुम्भक किए श्वास को दोनों नासिकाओं से शनैः-शनैः लम्बा करके तथा कण्ठ से सूक्ष्म ध्वनि करते हुए बाहर निकाल दें। यह प्राणायाम अत्यन्त लाभदायक होते हुए भी बहुत सुगम है। इसको चलते-फिरते, सोते-बैठते सब अवस्थाओं में कर सकते हैं। इसी प्राणायाम का नाम पाश्चात्य विद्वानों ने 'Deep breathing' रखा है।

(५) शारीरिक उष्णता को दूर कर सुन्दर तथा पुष्ट बनानेवाला और दाँतों के रोगों को दूर करनेवाला—

शीत्करी प्राणायाम

विधि—दाँतों की दोनों पंक्तियों को एक-दूसरे से मिला दें, और पद्मासन से बैठकर जीभ को दाँतों के साथ सटाकर सीत्कार जैसी आवाज करते हुए मुख से शनैः-शनैः श्वास को अन्दर भरें और फिर यथाशक्ति अन्दर ही रोककर नासिका से शनैः-शनैः श्वास को बाहर निकाल दें।

(६) शारीरिक शक्ति को विकसित तथा स्थिर रखनेवाला—

शक्ति-स्थापक प्राणायाम

विधि—बद्ध पद्मासन में बैठकर नासिका से श्वास को भली प्रकार अन्दर भरें, और फिर जालन्धर बन्ध करके माथे को पैर के किसी भी घुटने के

साथ लगा दें, और उसी अवस्था में जितनी देर तक श्वास को सुगमतापूर्वक रोक सकें, रोकें। फिर माथे को सीधा ले-जाकर वापस नासिका से श्वास को शनैः-शनैः निकाल दें। यह ध्यान रहे कि प्राणायाम प्रारम्भ करने से लेकर समाप्ति तक मूलबन्ध भली प्रकार लगा रहे।

(७) शरीर में शुद्ध रक्त का संचार कर शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग बनानेवाला—

लोम-विलोम प्राणायाम

विधि—सिद्धासन में बैठकर दाईं नासिका से श्वास को शनैः-शनैः अन्दर भरें, अर्थात् पूरक करें। फिर यथाशक्ति अन्दर रोककर अर्थात् कुम्भक करके फिर बाईं नासिका से बाहर निकाल दें। फिर बाईं नासिका से श्वास लेकर और कुम्भक करके दाईं नासिका से श्वास बाहर निकाल दें, तब दाहिनी नासिका से श्वास लें और इसी प्रकार अदल-बदलकर प्राणायाम करते जाएँ।

(८) शरीर में स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न करने, और वात-व्याधि, कृमि-रोग आदि को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला—

सूर्यभेदी प्राणायाम

पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर दाहिनी नासिका अर्थात् सूर्य-नाड़ी से प्राणों को भली प्रकार अन्दर भरें, अर्थात् पूरक करें, फिर यथाशक्ति अन्दर रोककर अर्थात् कुम्भक करके पुनः बाईं नासिका अर्थात् चन्द्रनाड़ी से श्वास शनैः-शनैः बाहर निकाल दें और इसी प्रकार आगे भी करें।

(९) वात, पित्त, कफ दोषों को दूर कर जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला तथा कुण्डली शक्ति को जागृत करनेवाला—

भस्त्रिका प्राणायाम

विधि—पद्मासन पर बैठकर दोनों नासिकाओं से श्वास इस प्रकार से जल्दी-जल्दी तथा बलपूर्वक निकालें तथा अन्दर लें जिस प्रकार कि लुहार धौंकनी चलाता है। श्वास को बाहर निकालते समय पेट अन्दर, तथा अन्दर लेते समय पेट

को बाहर ले जाएँ। इसे कपालभाती भी कहते हैं। इक्कीस बार श्वास को इस प्रकार लेने तथा निकालने के पश्चात् दाहिनी नासिका से पूरक करें, अर्थात् श्वास को लम्बा करके भली प्रकार अन्दर भरें, फिर दोनों नासिकाओं को अंगूठे तथा अनामिका और कनिष्ठा अँगुली से बन्द करके तथा जालन्धर बन्ध करके कुम्भक करें, कुम्भक के पश्चात् जालन्धर बन्ध छोड़कर बाईं नासिका से रेचक करें, अर्थात् शनैः-शनैः श्वास को बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार प्रारम्भ में पाँच प्राणायामों से शुरू करके सप्ताह में एक प्राणायाम बढ़ाते हुए इक्कीस प्राणायाम तक ले जाएँ।

प्राणायाम में ध्यान रखने योग्य आवश्यक बातें

१. किसी भी प्रकार के प्राणायाम करने से पूर्व अन्दर से श्वास को नासिका द्वारा बलपूर्वक बाहर निकाल देना चाहिए और फिर पूरक आदि प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिए।
२. पूरक करते समय मूलबन्ध अर्थात् गुदा और मूलेन्द्रिय का ऊपर आकर्षण, कुम्भक करते समय जालन्धर बन्ध अर्थात् ठोड़ी को गले के पास के खड्डे में लगा देना, और रेचक करते समय उड्डियान बन्ध अर्थात् यथाशक्ति पेट वो अन्दर ले-जाना चाहिए। मूलबन्ध को पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों में स्थिर रखना चाहिए।
३. पूरक करते समय छाती को भली प्रकार फुलाना चाहिए, जिससे फेफड़ों के सब अवयव प्राणों से भली प्रकार भर जाएँ।
४. श्वास शनैः-शनैः और लम्बा करके अन्दर लेना चाहिए।
५. प्राणायाम करते समय शीतली आदि कुछ विशेष प्राणायामों को छोड़कर श्वास नासिका से ही लेना तथा निकालना चाहिए। मुख हमेशा बन्द रखना चाहिए।
६. कुम्भक के समय प्राणों को 'आज्ञा चक्र' अर्थात् भृकुटि-देश में ले जाकर ठहराना चाहिए और वहीं मन को भी एकाग्र करना चाहिए। इससे जहाँ प्राण देर तक स्थिर रहते हैं, वहाँ मन की भी एकाग्रता बढ़ती है, जिससे मानसिक शक्तियों का विकास तथा आत्मा में शांति और आनन्द की अनुभूति होती है।
७. प्राणायाम व्यायाम करने के पश्चात् दस-पन्द्रह मिनट विश्राम लेकर

करना चाहिए ।

८. प्राणायाम खुली तथा स्वच्छ वायु में करना चाहिए । किन्तु जिस ओर से वायु के जोर से झोंके आ रहे हों, उस ओर मुख करके नहीं करना चाहिए ।

९. प्राणायाम के अभ्यासी को घृत, दुग्ध आदि स्निग्ध पदार्थों का सेवन यथाशक्ति अवश्य करना चाहिए ।

१०. प्राणायाम के समय जितना पेट हल्का और आँतें मल से रहित होंगी, उतना ही प्राणायाम करने में सुगमता तथा लाभ की प्राप्ति होगी, अतः इस बात का अभ्यासी को विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

११. प्राणायाम के अभ्यासी का आहार सात्त्विक, पौष्टिक तथा सुपच होना चाहिए । अधिक मिर्च-मसालेवाले तथा खट्टे पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए ।

१२. यदि प्राणायाम करनेवाले सज्जन प्रातःकाल जलनेती तथा वस्त्रनेती या इन दोनों में से कोई एक कर लिया करें तो अच्छा है । इससे जहाँ जुकाम, सिरदर्द, नेत्र-रोगों की निवृत्ति होती है, वहाँ नासिका के छिद्र साफ तथा मल-रहित होने से प्राणायाम करने में बहुत सुगमता होती है ।

१३. प्राणायाम के अभ्यासी को यम-नियमों के पालन का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए, और विशेषकर ब्रह्मचर्य-पालन का विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

१४. प्राणायाम न तो एकदम भोजन के पश्चात् और न अधिक भूख-प्यास की अवस्था में करना चाहिए ।

१५. यदि शरीर में किसी प्रकार का कष्ट हो, या शरीर बहुत थका हुआ हो अथवा क्रोध, शोक, चिन्ता आदि की अवस्था हो, तो प्राणायाम नहीं करना चाहिए ।

१६. प्राणायाम के अभ्यासी को हमेशा नासिका से ही श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए, मुख से नहीं, और सदा [गह]रे श्वास लेने की आदत डालनी चाहिए ।

१७. ज्वर आदि की अवस्था में प्राणायाम नहीं करना चाहिए ।

चतुर्थ अध्याय

यौगिक चिकित्सा

प्राक्कथन—पूर्व इसके कि हम शरीर में उत्पन्न होनेवाले विविध रोगों की 'यौगिक चिकित्सा' को लिखें, यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि हमारे शरीर में रोग उत्पन्न क्यों होते हैं। शरीर में विजातीय तत्त्वों का इकट्ठा हो जाना ही रोग का मुख्य कारण है, और विजातीय तत्त्वों के इकट्ठे होने का मूल कारण है पाचन-यन्त्रों का ठीक न होना, विशेषकर पेट और आँतों की खराबी। अतः शरीर में किसी प्रकार का रोग उत्पन्न न हो, इसके लिए मनुष्य को अपने पाचन-यन्त्र हमेशा स्वस्थ और नीरोग बनाए रखने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। पाचन-यन्त्रों के स्वस्थ और निर्विकार बनाने का यदि कोई सबसे उत्तम और अचूक उपाय है तो वह है योग के आसन और प्राणायाम आदि क्रियाएँ। अतः नियमपूर्वक यौगिक क्रियाएँ करनेवाला मनुष्य कभी बीमार ही नहीं पड़ता, और बीमार मनुष्य भी यौगिक चिकित्सा द्वारा अपनी बीमारी को सदा के लिए दूर कर शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ कर लेता है। जैसे मैले पर मिट्टी डालने से मैला दब तो जाता है, किन्तु हमेशा के लिए नष्ट नहीं हो जाता, उसी प्रकार ऐलोपैथिक आदि ओषधियाँ रोगों को शरीर में ही दबा देती हैं। उन्हें शरीर से सर्वथा बाहर नहीं निकाल सकतीं। जैसे मैले के ऊपर से मिट्टी के दूर हो जाने पर फिर मैला प्रकट हो जाता है और दुर्गन्धि का कारण बनता है, उसी प्रकार कारण पाकर शरीर में दबी हुई बीमारियाँ फिर कई रूपों में प्रकट हो जाती हैं, और शरीर को रोगी तथा निर्बल बनाने का कारण बनती हैं। अतः रोगों को सदा के लिए अपने शरीर से विदा करने की यदि कोई

अचूक चिकित्सा

हो सकती है, तो वह यौगिक चिकित्सा ही है। पाठक यदि इसे स्वयं अनुभव

करके देखेंगे तो उन्हें इस तथ्य का अवश्य ही साक्षात्कार हो जायगा। रोगों से छुटकारा पाने का एक और उपाय लिख देना भी उचित समझता हूँ। वह यह कि आप कभी भूलकर भी अपने रोग की विज्ञप्ति न कीजिए, अर्थात् उसका सब जगह ढिंढोरा न पीटिए। जब आप अपनी बीमारी का सर्वत्र प्रचार करते हैं, तो बीमारी और खुश होती है। भला कौन व्यक्ति अपनी प्रसिद्धि नहीं चाहता? इसलिए वह बीमारी खुश होकर आपके शरीर को अपना घर बनाकर सदा के लिए वहाँ बैठ जाती है। उसे आपके घर से निकलने का जी भी नहीं करता। इसलिए भूलकर भी अपने सिरदर्द, पेट-पीड़ा अथवा अन्य किसी शारीरिक कष्ट या रोग की महिमा का बखान दूसरों के सम्मुख न करिए। बीमारी की हालत में भी शोक और चिन्ता को छोड़कर सदा प्रसन्न रहिए। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार आपके रोग अपना निरादर समझकर अपने-आप आपसे दूर भाग जाएँगे।

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का परस्पर सम्बन्ध

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः जो मनुष्य यौगिक चिकित्सा द्वारा अपने रोग को दूर करना चाहता है, उसे यौगिक चिकित्सा के साथ-साथ अपने आहार-व्यवहार आदि को प्राकृतिक बनाना तथा प्रकृति के जल, वायु, प्रकाश आदि तत्त्वों का उचित मात्रा में सेवन करना परमावश्यक है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने गीता में कहा—

युक्ताहार-विहारस्य युक्त-चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात्—योग तभी मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक रोगों और निर्बलताओं को दूर करके दुःख हरने का कारण बनता है, जबकि मनुष्य का आहार, व्यवहार, सोना, जागना तथा अन्य शरीर की चेष्टाएँ और कर्म, युक्त अर्थात् प्रकृति के अनुकूल हों। अतः अपने जीवन को प्रकृति के अनुकूल बनाकर उससे लाभ उठाना ही—

प्राकृतिक चिकित्सा

है जोकि मेरे विचार में यौगिक चिकित्सा का पूर्व-रूप है। अतः केवल प्राकृतिक चिकित्सा इतना लाभ नहीं पहुँचा सकती, जब तक उसे यौगिक

चिकित्सा का अंग न बनाया जाय। उदाहरण के लिए एक मनुष्य की पाचन-शक्ति बहुत कमजोर है। अब उपवास, फलाहार, मिट्टी की पट्टी आदि प्राकृतिक उपाय उसके पक्वाशय तथा आँतों के मल को बाहर निकालकर पाचन-यन्त्रों को साफ तो कर देंगे, किन्तु उन्हें सशक्त तथा बलवान् बनाने में यह उपाय तब तक सहायक नहीं बन सकते जब तक कि उपर्युक्त उपायों के साथ-साथ आसन, प्राणायाम आदि यौगिक उपायों को काम में न लाया जाय। यदि थोड़ी देर के लिए उपर्युक्त प्राकृतिक उपायों से रोग ठीक भी हो गया, तो भी उसे हमेशा ठीक बनाए रखने के लिए यौगिक व्यायाम तथा प्राणायाम आदि क्रियाओं का आश्रय लेना ही परमावश्यक है। क्योंकि कोई भी मनुष्य न तो हमेशा उपवास ही रख सकता है, न ही मिट्टी की पट्टी आदि का ही प्रयोग कर सकता है, और न ही वर्तमान परिस्थिति के अनुसार बहुत दिनों तक केवल शाकाहार या फलाहार ही खाकर रह सकता है। उसे आगे चलकर अपनी शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाए रखने के लिए, शरीर में उपयोगी सभी प्रकार के विटामिनों को जन्म देने के लिए विविध प्रकार की दालों तथा घृत, दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करना भी परमावश्यक है। क्योंकि केवल शाक आदि आहार मनुष्य के शरीर को रोगमुक्त तो कर सकता है, किन्तु उसे बलवान् तथा हृष्ट-पुष्ट नहीं बना सकता, जब तक कि उसके साथ अन्य पौष्टिक पदार्थों का सेवन न किया जाय, और पौष्टिक पदार्थों को पचाकर उन्हें शरीर का अंग बनाना योग के आसन-प्राणायाम आदि क्रियाओं का ही काम है।प्राकृतिक चिकित्सा में यदि वे यौगिक चिकित्सा को भी सम्मिलित कर लें तो वे रोगी संसार का बहुत अधिक उपकार कर सकते हैं।

'प्राकृतिक चिकित्सा क्या है?

प्राकृतिक आहार तथा चिकित्सा-सम्बन्धी कुछ भूलें—

प्राकृतिक आहार और चिकित्सा के सम्बन्ध में आजकल कुछ ऐसी भूलें हो रही हैं, जिनके कारण कभी-कभी रोगी को लाभ के बजाय बहुत हानि उठानी पड़ती है। उन भूलों का थोड़ा-सा दिग्दर्शन हम पाठकों के सम्मुख करा देना आवश्यक समझते हैं, जिससे प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमी उन भूलों को छोड़कर प्राकृतिक चिकित्सा से स्वयं तथा अन्यों को पूर्ण लाभ पहुँचा सकें—

१. आजकल प्राकृतिक चिकित्सक महोदय प्रायः सभी प्रकार के रोगियों को अन्य सब-कुछ छुड़ाकर शाकाहार अथवा फलाहार करने की ही अनुमति

देते हैं। और तो क्या, स्वस्थ मनुष्य को भी विविध प्रकार की दालें और घृतादि छोड़ देने का आग्रह करते हैं, चाहे शाकाहार रोगी के रोग किंवा प्रकृति के अनुकूल हो या न हो, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति समान नहीं होती। कोई मनुष्य प्रकृति से वातप्रधान होता है, कोई पित्तप्रधान तथा कोई कफ-प्रधान। सभी को शाकाहार ही अनुकूल हो—ऐसा नहीं कहा जा सकता। हो सकता है वात या कफ प्रकृतिवाले के लिए शाकाहार इतना अनुकूल न हो जितना मूँग की दाल या दुग्ध, घृत आदि। ऐसी अवस्था में उसे वही पदार्थ देना चाहिए जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो, अतः प्राकृतिक भोजन या औषध का मेरे विचार में यही अर्थ होना चाहिए कि "जो आहार या औषध जिसकी प्रकृति के अनुकूल है, वही उसके लिए प्राकृतिक है।" फर्ज करो किसी को बहुत पुराना कोष्ठबद्धता का रोग है। अब यौगिक या प्राकृतिक चिकित्सा प्रारम्भ करने से पहले उसकी आँतों तथा पेट को साफ करना है। किन्तु उसे हरे शाक का रस या मेवे खिलाने पर भी शौच खुलकर नहीं आया, एनिमा या बस्ती से भी सफलता नहीं मिली। अब यदि उसके पेट को साफ करने के लिए रात्रि को दूध या गर्म जल के साथ त्रिफला का चूर्ण दे दिया जाय, या गुलाब के फूल, सनाय की पत्ती और मुनक्का का जुशांदा बनाकर दे दिया जाय और उससे दो-तीन दस्त खुलकर आ जाने से उसका पेट बिल्कुल साफ हो जाय तो मेरे विचार में हरे शाकों के उबले हुए रस या एनिमा की अपेक्षा उपर्युक्त औषध ही उस रोगी के लिए प्राकृतिक है। किन्तु आजकल का प्राकृतिक चिकित्सक अनेक प्रकार के शाकों को मिलाकर और उन्हें खूब उबालकर उसके रस को तो प्राकृतिक समझता है, किन्तु गुलाब और मुनक्का के जुशांदे को या बिना उबाले अपनी असली हालत में दिए गए त्रिफला के चूर्ण को झट अप्राकृतिक कह देता है। मेरे विचार में यह भूल है।

इसी प्रकार जो खाद्य पदार्थ जिस रोगी या स्वस्थ मनुष्य की प्रकृति के अनुकूल हों, वही उसके लिए प्राकृतिक हैं और उन्हीं का उसे सेवन करना चाहिए। इसके विपरीत कोई पदार्थ कितना भी उपयोगी और लाभप्रद क्यों न हो, यदि किसी मनुष्य की प्रकृति के वह अनुकूल नहीं है तो वह अन्यों के लिए प्राकृतिक होता हुआ भी उसके लिए अप्राकृतिक ही है। यह तो हुआ औषध और भोजन के सम्बन्ध में। अब हम आजकल की एक और प्राकृतिक चिकित्सा की भूल का निर्देश कर देना भी आवश्यक समझते हैं।

२. चिकित्सा वही अधिक लाभप्रद तथा गुणकारी होती है जो रोगी के बलाबल को देखकर की जाए, जैसे एक मोटे-ताजे मनुष्य के लिए उपवास आदि चिकित्सा बहुत लाभप्रद है और उससे उसको किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं, क्योंकि उपवास की अवस्था में आहार न मिलने से उसकी जठराग्नि उसके शरीर में अधिक मात्रा में बढ़ी हुई चर्बी को ही पचाकर उसके शरीर को आकर्षक बना देती है, और अग्नि को ईंधन मिलते रहने के समान वह बुझती नहीं, और मंद भी नहीं पड़ती। किन्तु एक पतले-दुबले मनुष्य को या बालक को, जिसके शरीर में अधिक तो क्या उचित मात्रा में भी चर्बी नहीं है, यदि उसे कुछ दिन लगातार उपवास कराया जाए तो चर्बी के अभाव में वह जठराग्नि उसके शरीर की अन्य धातुओं को ही जलाना प्रारम्भ कर देगी और शरीर की सब धातुओं को सुखाने के पश्चात् स्वयं भी मंद पड़ जायगी। एक तो वह पहले ही पतला-दुबला, ऊपर से उपवास द्वारा उसकी धातुओं का क्षय हो जाने के कारण वह और भी अधिक दुबला तथा शक्तिहीन बन जायगा और लाभ के बजाय उल्टा हानि उठा लेगा। इसी प्रकार एक मनुष्य कमजोर तो नहीं किन्तु वह शारीरिक परिश्रम खूब करता है, अतः उस परिश्रम से उत्पन्न हुई शारीरिक उष्णता तथा थकान की कमी को दूर करने के लिए आवश्यक है कि वह दुग्ध, घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन करे। यदि ऐसे मनुष्य की किसी बीमारी को दूर करने के लिए उसे उपवास या केवल शाकाहार पर रखा जाय तो उस मनुष्य की भी वह अवस्था होगी जो पूर्व-वर्णित दुबले-पतले मनुष्य की।

३. आजकल के प्राकृतिक चिकित्सक एक और भी भारी भूल करते हैं। वे जिस पदार्थ को अपनी बुद्धि के अनुसार प्राकृतिक समझते हैं, उसके अवगुणों को छोड़कर केवल गुणों का बखान छेड़े रहते हैं; और जिसे वे अप्राकृतिक समझते हैं; उसके गुणों को छोड़कर केवल दोषों का इतना बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करते हैं कि उस पदार्थ का वास्तविक स्वरूप ही छिप जाता है। उदाहरणार्थ, वह गुड़ के गुणों को तो इतना बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करेंगे जिससे कि वह अमृत से भी बढ़कर प्रतीत होने लगेगा, और इसके विपरीत शक्कर की इतनी बुराई करेंगे कि वह लोगों को साक्षात् हलाहल प्रतीत होने लगती है। इतना ही नहीं, प्रत्युत वे स्वयं उसे White Poison अर्थात् सफेद विष तक कहते तथा अपनी पुस्तकों में लिख देते हैं। उनका

यह कथन कहाँ तक सत्य है, उसका निर्णय तो स्वयं भुक्तभोगी पाठक ही करें, किन्तु इससे जो एक भारी मनोवैज्ञानिक हानि होती है उसका हम यहाँ कुछ दिग्दर्शन कराना उचित समझते हैं। जब एक भावुक व्यक्ति उनके ऐसे लेखों पर विश्वास कर लेता है तो वह गुड़ का इतना अति मात्रा में सेवन करने लगता है कि वह गर्मी आदि रोगों का शिकार होकर बजाय लाभ के उल्टा हानि उठा लेता है, और यदि उसे कहीं विवाह, शादी, दावत आदि के अवसर पर न चाहते हुए भी शक्कर या शक्कर के पदार्थों का सेवन करना पड़ गया तो उस भावुक के अन्दर बैठी हुई यह भावना कि शक्कर तो White Poison अर्थात् सफेद जहर है, यदि वह व्हाइट पाइज़न न भी हो, तो भी उसके लिए तो वह व्हाइट पाइजन ही बन जाती है और वह दोनों वस्तुओं से भारी हानि उठा लेता है, गुड़ से भी और शक्कर से भी। यह बात स्पष्ट समझ लें कि व्हाइट पाइज़न चीनी है, गुड़-शक्कर नहीं।

४. आजकल के प्राकृतिक चिकित्सकों की मनोवृत्ति में एक और भारी दोष आ गया है। वह यह कि प्राकृतिक चिकित्सा के अतिरिक्त यदि अन्य कोई चिकित्सा—एलौपैथी या आयुर्वेद—कोई उपयोगी बात भी बताती है, तो प्राकृतिक चिकित्सक महानुभाव उसका भी अवश्य खण्डन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। उदाहरणार्थ, आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है कि शीत ऋतु में चूँकि बाहर की ठण्डक शरीर के अन्दर की उष्णता को बाहर निकलने से रोक देती है, अतः उस उष्णता से शीत-काल में जठराग्नि तेज होकर भूख बढ़ जाती है। इसीलिए आयुर्वेद ने इस ऋतु में अनेक प्रकार के पाक आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन कर शरीर को पुष्ट तथा बलवान् बनाने का वर्णन किया है, और पाठकों को स्वयं भी यह अनुभव होगा कि वास्तव में शीत ऋतु में भूख अवश्य बढ़ती है। किन्तु गोरखपुर से निकलने वाले 'आरोग्य' नामक प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी पत्र में एक प्राकृतिक चिकित्सा-समर्थक महानुभाव ने इस बात को सिद्ध करने के लिए कि सर्दियों में भूख नहीं बढ़ती, प्रत्युत गर्मियों में बहुत बढ़ती है, एक लम्बा-चौड़ा लेख लिख डाला। अब जो इस लेख पर विश्वास करेगा उसकी यदि सर्दियों में भूख बढ़ती भी होगी, तो भी कदापि नहीं बढ़ेगी, क्योंकि मानसिक विचारों तथा भावनाओं का प्रभाव शरीर पर बहुत गहरा पड़ता है। किन्तु हमारे प्राकृतिक चिकित्सक महानुभाव इन बातों पर तनिक भी विचार नहीं करते।

अन्त में मेरी प्राकृतिक चिकित्सक महानुभावों से प्रार्थना है कि वे प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में मेरे उपर्युक्त विचारों पर अवश्य दृष्टिपात करें, और जो प्राकृतिक चिकित्सा में उपर्युक्त कारणों से दोष आ गए हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें, जिससे जनता प्राकृतिक चिकित्सा से वास्तविक लाभ उठा सके। मुझे चूँकि प्राकृतिक चिकित्सा से प्रेम है और मैं चाहता हूँ कि यह चिकित्सा जनता को अधिकाधिक लाभ पहुँचाए, इसलिए मैंने प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखना उचित समझा है। आशा है प्राकृतिक चिकित्सक महानुभाव मेरे इन शब्दों पर विचार करेंगे और प्राकृतिक चिकित्सा को जनता के लिए वास्तव में लाभप्रद बनाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा-विधि

प्राकृतिक चिकित्सा के मुख्य तीन भाग हैं—१. उपवास-चिकित्सा, २. स्नान-चिकित्सा, तथा ३. मिट्टी-चिकित्सा। हम पाठकों के परिचय के लिए इन तीनों का संक्षेप में यहाँ वर्णन करते हैं।

उपवास-चिकित्सा

शारीरिक दोषों, रोगों तथा विजातीय तत्त्वों को नष्ट करने का उपवास एक परम सुन्दर उपाय है। इससे जहाँ उपर्युक्त दोषादि समूल नष्ट हो जाते हैं, वहाँ पाचन-यन्त्रों को विश्राम मिलकर वे अपना-अपना पाचन-सम्बन्धी कार्य करने के लिए अधिक सक्षम हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा-शास्त्रियों ने संक्षेप में उपवास के निम्न लाभ बतलाये हैं—

१. शरीर स्वस्थ तथा नीरोग बनता है। २. शरीर से हानिकारक विजातीय तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। ३. इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होकर वे स्वाधीन तथा कार्यक्षम बन जाती हैं। ४. विशेषकर जिह्वा की लोलुपता नष्ट होकर वह आपके काबू में हो जाती है। ५. मन की चंचलता नष्ट होकर मन शांत और पवित्र बन जाता है। ६. उपवास के समय मन शांत होने से वह अपने गुणों-अवगुणों का भली प्रकार से चिन्तन कर सकता है। ७. अवगुणों का परित्याग तथा गुणों के ग्रहण करने से उपवासकर्त्ता का जीवन पवित्र और महान् बन जाता है। इसीलिए आर्यशास्त्रों में इसे व्रत के नाम से पुकारा गया है। ८. ईश्वर-भक्ति, स्वाध्याय, सत्संग आदि पवित्र कार्यों में चित्त लगता है।

९. हृदय शुद्ध, पवित्र तथा मानसिक चिन्ताओं से मुक्त होकर सदा शांत रहता है। १०. अलौकिक दैवी शक्तियों का विकास होता है।

इसलिए सप्ताह में अथवा पक्ष में एक दिन या कम-से-कम एक समय का उपवास अवश्य करना चाहिए। उपवास के समय एनिमा अवश्य लेना चाहिए। इससे आँतों में पूर्व-संचित मल दूर होकर आँतें स्वच्छ हो जाती हैं। जल का प्रयोग अधिक करना चाहिए। यदि जल में नींबू डालकर पिया जाय तो बहुत अच्छा है। उपवास के पश्चात् एकदम अधिक तथा गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए। पहले फलों तथा हरे शाकों का रस, फिर दूध तथा हरी पत्ती के शाक, फिर फल तथा मेवा, पश्चात् अन्न का सेवन करना चाहिए। विशेषकर किसी रोग को दूर करने के लिए अधिक दिनों के उपवास के पश्चात् तो उपर्युक्त भोजन-क्रम को अपनाना अत्यावश्यक है। प्रारम्भ में यदि केवल दूध न लेकर उसमें आधा जल डाल, उसे गर्म कर फिर ठण्डा करके उसमें शक्कर के स्थान पर थोड़ा मधु डालकर लिया जाय तो बहुत अच्छा है। दूध गर्म करते समय उसमें पाँच-सात मुनक्का के दाने डाल देना भी बहुत अच्छा है। मुनक्का के दाने खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिए।

जो वृद्ध किंवा कमजोर व्यक्ति उपवास में सर्वथा अन्न का परित्याग नहीं कर सकते, वे फलों तथा तरकारियों के रस किंवा उपर्युक्त तरीके से गर्म किए हुए दूध पर रहकर भी अपना उपवास पूरा कर सकते हैं।

निम्नांकित स्थितियों में उपवास नहीं करना चाहिए—

१. हृदय की कमजोरी में।

२. मस्तिष्क की कमजोरी तथा पागलपन में।

३. स्त्रियों की गर्भावस्था में।

४. दस वर्ष से कम आयु तथा अति वृद्धावस्था में।

५. बहुत कमजोर मनुष्यों को।

स्नान-चिकित्सा

जल पंच-भूतों में से प्रभु की एक अमूल्य देन है। जल के बिना प्राणी-जगत् का जीवित रहना नितान्त असम्भव है। शीतलता, शंति और आरोग्यता प्रदान करना जल का मुख्य गुण है। जल के अन्दर रोग-नाश करने की अद्भुत शक्ति है। यदि हम जल का ठीक तरीके से उपयोग करें तो यह

हमें न केवल शीतलता तथा शांति ही प्रदान करता है प्रत्युत आरोग्य, बल, शक्ति तथा स्फूर्ति भी देता है। जल के अन्दर प्रायः सभी रोगों को नष्ट करने के परमाणु विद्यमान हैं। विशेषकर दाह (जलन), वीर्य-विकार, उदर-विकार, बवासीर, रक्त-विकार आदि रोगों पर तो यह जादू का-सा असर करता है। आर्यों के पवित्र ग्रन्थ वेद में लिखा है—

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्"

अर्थात्—(अप्सु + अन्तरम्) जलों के अन्दर अमृत है और अमृत जलों में सर्वरोग-विनाशिनी रामबाण औषध है। वेद तो यहाँ तक कहता है—

"आपः शिवाः शिवतमाः"

"जल प्राणीमात्र के लिए केवल शिव ही नहीं, अपितु 'शिवतम' अर्थात् अत्यन्त कल्याणकारी है।" अतएव स्वस्थ, नीरोग तथा बलवान् बनने के अभिलाषी को जल के यथार्थ उपयोग को जानकर उससे अवश्य लाभ उठाना चाहिए। जल-चिकित्सा के प्रसिद्ध डॉक्टर 'लुई कुहेनी' ने रोगों से मुक्त होने के लिए कई प्रकार के 'बाथ' अर्थात् स्नान लिखे हैं, जिनमें से चार प्रकार के बाथ प्रसिद्ध हैं। प्रिय पाठकों के लाभार्थ उनकी संक्षिप्त विधि हम नीचे दे रहे हैं।

पेडू स्नान (हिप-बाथ) की विधि

विधि—एक टब या नाँद में ताजा जल भरें। फिर इस प्रकार से बैठें कि सिर व पैर न भीगने पावें। कमर और उसके आस-पास का भाग पानी में रहे। फिर एक मोटे खुरदरे तौलिए से पेट को दाएँ-बाएँ रगड़ें। समय १० से १५ मिनट तक। प्रारम्भ में ५ मिनट ही पर्याप्त हैं। १५ मिनट से अधिक जल में न बैठें। यदि आवश्यक समझें तो तत्काल स्नान कर लें। फिर गर्म कपड़े पहनकर अथवा सर्दी अधिक न हो तो सादे कपड़े पहनकर धूप में टहलें, अथवा हल्का यौगिक व्यायाम करें। जो रोगी अधिक कमजोर हैं वे हिपबाथ के पश्चात् एक गर्म कपड़ा पेडू के चारों ओर लपेट लें, इससे गर्मी शीघ्र आ जाएगी।

लाभ—यह बाथ पेट के समस्त रोगों के लिए लाभकारी है। विशेषकर बवासीर के लिए तो अत्यन्त हितकर है। रक्त-दोष तथा वीर्य-विकार भी दूर करता है। स्त्रियों के प्रदर आदि रोग भी इससे दूर होते हैं। यदि बाथ के

लिए वर्षा का ऊपर से लिया हुआ जल मिले तो सर्वोत्तम है, अथवा कुएँ या नल के ही जल से बाथ लेना चाहिए।

इन्द्रिय-स्नान (सिट्ज़बाथ)

विधि—एक टब में ठण्डा पानी भरें। जल जितना ठण्डा होगा उतना अधिक लाभप्रद होगा। किन्तु सर्दियों में अधिक ठण्डा नहीं लेना चाहिए। उस पानी में एक चौकी रखकर उस पर कपड़े उतारकर बैठ जाएँ। पानी कमर तक रहे। लिंग की खाल को बाएँ हाथ के अँगूठे और उसके पास की अँगुली से इस प्रकार से खींच लें कि सुपारी अन्दर छुप जाए। फिर उस खाल को दाहिने हाथ के अँगूठे तथा उसके पास की अँगुली से खुरदरा तौलिया लेकर पन्द्रह मिनट तक रगड़ें। समय १५ मिनट से आधे घण्टे तक। जिनकी खाल आगे न बढ़ी हुई हो अर्थात् सुपारी खुली रहती हो, वे अण्डकोश और गुदा के बीच के भाग अर्थात् सीवन को कपड़े को पानी से भिगोकर रगड़ें। स्त्रियाँ भी इसी प्रकार अपने गुदास्थान को मोटे कपड़े को पानी से भिगोकर शनैः-शनैः रगड़ें।

लाभ—इन्द्रिय-स्नान से मूत्र-सम्बन्धी सब विकार दूर हो जाते हैं। विशेषकर स्वप्नदोष, आतशक, सुजाक को यह बाथ आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। स्त्रियों के प्रदर-दोष, मासिक धर्म की खराबी तथा गर्भाशय के सब रोग दूर होते हैं। स्त्रियों को मासिक धर्म के दिनों में यह इन्द्रिय-स्नान नहीं करना चाहिए। इन्द्रिय-स्नान के पश्चात् शरीर में गर्मी लाने के लिए वही उपाय काम में लाएँ जोकि हिपबाथ में लिख चुके हैं।

वाष्प-स्नान (स्टीम-बाथ)

यह वाष्प-स्नान जल की भाप से किया जाता है। तीन-चार बटलोहियों के ऊपर ढक्कन रखकर पानी को खूब गर्म करें। फिर बाण की बुनी चारपाई पर रोगी को नंगा करके चित लिटा दें, और ऊपर कम्बल ओढ़ा दें। अब गर्म पानी की बटलोहियों में से एक छाती के नीचे, एक कमर के नीचे तथा एक पैरों के नीचे रख दें। चारपाई को इस प्रकार से डालें कि भाप बाहर न निकलने पावे। कम से कम १५ मिनट तक वाष्प-स्नान लें। पसीना आने पर अन्दर-ही-अन्दर खुरदरे तौलिए से पोंछते जाएँ। यदि स्टीम-बाथ के समय

निर्बलता या बेचैनी अधिक प्रतीत हो तो सिर पर और छाती पर ठण्डे पानी में भिगोई-निचोड़ी पट्टी रख दें। बेचैनी दूर हो जाएगी।

यदि विशेष-विशेष स्थानों के गठिया आदि दर्दों को दूर करना हो तो कुर्सी पर इस प्रकार नंगे होकर बैठें कि मुख कुर्सी की पीठ की ओर रहे। फिर खूब खौलते हुए पानी की बटलोही कुर्सी के नीचे रख दें। रोगी तथा कुर्सी को चारों ओर से कम्बल से ढाँप दें और बटलोही का ढक्कन खोलकर धीरे-धीरे दर्द के स्थान पर भाप लगने दें। पसीना आने पर पोंछते जाएँ।

वाष्प-स्नान के पश्चात् हिप-स्नान करना भी आवश्यक है। हिप-स्नान के पश्चात् शरीर में गर्मी पहुँचाने के लिए वही साधन काम में लाएँ जो पहले लिखे जा चुके हैं।

लाभ—यह स्नान कठिन से कठिन रोगों को भी अन्दर से उभार तथा जड़मूल से उखेड़कर बाहर फेंक देता है। इस बाथ से गठिया आदि दर्द, बवासीर, मूत्र-सम्बन्धी रोग, त्वचा-सम्बन्धी रोग, पेडू और पेट-सम्बन्धी रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

विशेष—यह स्नान अति निर्बल, दमा, मस्तिष्क तथा हृदय के रोगी को नहीं करना चाहिए।

सूर्य-स्नान (सन-बाथ)

सूर्य सकल विश्व का जीवन है। सूर्य से ही सकल प्राणी जीवन, शक्ति, स्फूर्ति, तेज और प्रकाश को प्राप्त करते हैं। वेद का वचन है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

"यह सूर्य ही चेतन जगत् तथा जड़ जगत् का आत्मा अर्थात् जीवनाधार है।" जो प्राणी सदा सूर्य का सेवन करते हैं, वे हमेशा स्वस्थ, बलवान् और नीरोग रहते हैं। उन्हें कोई बीमारी नहीं सताती। नियमपूर्वक सूर्य का सेवन करनेवाले दीर्घजीवी होते हैं। वेद का वचन है—

उद्यन् सूर्यः हरतु मृत्युपाशान्।

अर्थात् 'प्रातःकाल उदय होता हुआ सूर्य तेरे मौत के बन्धनों को तोड़ दे।' वास्तव में जो जन प्रातःभ्रमण आदि के द्वारा सूर्य का सेवन करते हैं, वे सदा नीरोग तथा बलवान् बनकर अवश्य असमय मौत के बन्धनों को तोड़

देते हैं। वे दीर्घजीवी होते हैं। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रातः सूर्य के सम्मुख बैठकर ही संध्यावन्दन आदि दैनिक कृत्य करने का विधान किया है। प्रातःकाल का सूर्य-स्नान अनेक भयंकर रोगों को नष्ट कर देता है। अतः हम प्रिय पाठकों के लाभार्थ सूर्य-स्नान की विधि नीचे दे रहे हैं।

विधि—धूप में बिल्कुल नंगे होकर इस प्रकार से लेटें कि सारे शरीर पर सूर्य की किरणें पड़कर उसे गर्मी पहुँचे और खूब पसीना आए। शरीर को नीम या केले के पत्तों से ढाँप लेना चाहिए और सिर को छाया में रखना चाहिए। यदि नीम या केले के पत्ते न मिलें तो वैसे ही धूप में लेट जाना चाहिए। घण्टे-आध घण्टे के पश्चात् पसीना आना प्रारम्भ हो जाएगा। यदि अधिक पसीना निकलना प्रारम्भ हो जाए तो तौलिए से पोंछ दें। गर्मियों में प्रातः ७ बजे तक तथा सर्दियों में १२ बजे तक सन-बाथ लिया जा सकता है। सन-बाथ के पश्चात् हिप-बाथ अवश्य लेना चाहिए। इससे रोगों का बहुत शीघ्र नाश होता है। जिनका हृदय तथा मस्तिष्क निर्बल हैं, या जो दमा के रोगी हैं, उन्हें सूर्य-स्नान नहीं लेना चाहिए।

लाभ—रक्तदोष, उदर-सम्बन्धी रोग, तपेदिक तथा त्वचा-रोगों में यह बाथ शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

मिट्टी का इलाज

प्रभु ने हमें स्वस्थ, नीरोग तथा बलवान् बनाने और इस जीवन-यात्रा को सुखमय व्यतीत करने के लिए अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी इन पंच भूतों (तत्त्वों) का निर्माण किया है। इन पाँच महाभूतों के अन्दर अनेक जीवनीय तत्त्व विद्यमान हैं। यह जीवन-शक्ति का अखण्ड भण्डार है। जहाँ यह ब्रह्माण्ड पंच महाभूतों को विस्तार है, वहाँ हमारा शरीर भी इन्हीं पंच महाभूतों से ही बना है। अतः ब्रह्माण्ड के इन अग्नि आदि पंच तत्त्वों को उत्तम आहार, भ्रमण, व्यायाम, प्राणायाम आदि के द्वारा अपने अन्दर पर्याप्त मात्रा में ग्रहण कर शरीर के पाँचों तत्त्वों को ठीक अर्थात् शुद्ध, निर्विकार तथा सबल बनाए रखना ही शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने का सर्वोत्तम साधन है। इन पाँचों तत्त्वों में पृथ्वी अर्थात् मिट्टी सबसे अधिक स्थूल तत्त्व है, अतः शेष चारों जलादि तत्त्व भी इसके अन्दर रमे हुए हैं। मिट्टी के अन्दर सब तत्त्वों की जीवनीय शक्ति तथा रोग-निवारक शक्ति विद्यमान है। यही कारण है कि

मिट्टी सब रोगों की एक रामबाण औषध है। रक्तविकार, वीर्यविकार, प्रदर, वात-पित्त-कफ की खराबी, मूत्ररोग, सिरदर्द, ज्वर, पेट-दर्द, मूत्रकृच्छ, विष, गठिया, कब्ज, चोट, नेत्रविकार आदि रोगों की मिट्टी अचूक औषध है। शरीर में से सब विजातीय तत्त्वों तथा रोगों को उखाड़कर बाहर फेंक देना तथा उसे स्वस्थ और नीरोग बना देना इसका एक अद्‌भुत करिश्मा है। एक बार मैं अपने खेत में कुएँ पर बैठा था। वहाँ एक सुतार लकड़ी का काम कर रहा था। अचानक उसके पेट में बहुत जोर का दर्द शुरू हुआ। यहाँ तक कि वह काम छोड़कर लेट गया और दर्द से कराहने लगा। मैं चिन्ता में पड़ गया कि क्या किया जाय? क्योंकि वहाँ से गाँव भी काफी दूर था। मेरे मन में एकदम मिट्टी का ध्यान आ गया। मैंने कोई आधा सेर मिट्टी जल्दी-जल्दी पानी से गूँधकर उसके पेट के ऊपर रख दी। पाँच मिनट के पश्चात् पूछने पर उसने कहा—अब दर्द कम है। और दस मिनट के पश्चात् वह उठकर बैठ गया और कहा—अब दर्द बिल्कुल नहीं है। अपना काम यथापूर्व करना प्रारम्भ कर दिया। मिट्टी के इस चमत्कार को देखकर मैं भी आश्चर्य करने लगा। अतः शरीर के किसी भी अंग में बीमारी हो, वहाँ मिट्टी की पट्टी बाँधना अत्यन्त लाभकारी है। जंगली जातियाँ आज भी घाव आदि पर मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग करती हैं। अब हम मिट्टी की पट्टी बाँधने की विधि दे रहे हैं।

मिट्टी की पट्टी

अच्छी चिकनी, स्वच्छ मिट्टी यदि एक-दो हाथ नीचे की खुदी हो तो और भी अच्छा है। उसमें से आवश्यकतानुसार लेकर तथा छानकर पट्टी बाँधने के कम-से-कम चार-पाँच घण्टे पूर्व एक कोरी मिट्टी की हाँडी या सकोरे में भिगो दें। फिर उसे खूब गूँधकर पेट आदि स्थान पर जहाँ भी रोग निवृत्त्यर्थ पट्टी बाँधनी हो, एक अँगुली मोटी तह जमा दें, ऊपर एक भीगा हुआ मलमल का कपड़ा निचोड़कर उसकी तीन-चार तह बनाकर रख दें। उसके ऊपर सूखा कपड़ा, सर्दियों में गर्म कपड़ा बाँध दें। पट्टी न अधिक कसकर बाँधें न बहुत ढीली, और कम-से-कम दो घण्टे तक मिट्टी बँधी रहे। यदि सोने में कष्ट न हो तो रात को बाँधकर प्रातः खोल देनी चाहिए। रोग की सख्त तकलीफ हो तो हर घण्टे बाद अथवा उससे पहले भी पट्टी खोलकर पुनः बाँध सकते हैं। पट्टी खोलने के पश्चात् टब-बाथ लेने से बहुत जल्दी

लाभ होता है। किन्तु यदि रोगी की टब-बाथ लेने की इच्छा न हो तो उसे नहीं देना चाहिए।

पानी की पट्टी

जो लोग बहुत कमजोर हों, मिट्टी की पट्टी को सहन न कर सकते हों, वे केवल पानी की पट्टी अपने रोगी अंगों पर बाँध सकते हैं।

विधि—जमीन या तख्त पर एक या दो कम्बल बिछाकर उसके ऊपर जल से भीगी चद्दर थोड़ी निचोड़कर बिछा दें, और उसके ऊपर रोगी को लिटाकर पहले उस पर भीगी चद्दर भली प्रकार से लपेट दें, फिर उसके ऊपर कम्बल लपेट दें। कम्बल और चद्दर इस प्रकार से लपेटें कि मुख खुला रहे। सिर पर मुख और नाक को खुला रखकर भीगे तौलिए को लपेट दें, और उस पर दूसरा ऊनी कपड़ा लपेट दें। इसी अवस्था में आधे घण्टे से लेकर एक घण्टे तक रोगी को पड़ा रहने दें। फिर कम्बल तथा चद्दर हटाकर स्वच्छ कपड़े से सारा शरीर पोंछ दें और साफ कपड़े पहनाकर थोडी देर के लिए अलग लिटा दें। एक सप्ताह तक इस प्रकार करने से रोगी को आश्चर्यजनक लाभ होगा। रोग की प्रबलता यदि न हो तो तत्-तत् स्थानों पर मिट्टी की पट्टी की तरह छोटी-छोटी पट्टियाँ भी बाँध सकते हैं। टब-बाथ आदि में यदि रोगी ठण्डा जल सहन न कर सके तो शरीर के तापमान का जल भी ले सकते हैं। अत्यन्त कमजोरी की अवस्था में थोड़ा गुनगुना जल भी लिया जा सकता है।

अब हम पाठकों के सम्मुख कतिपय प्रसिद्ध रोगों की यौगिक चिकित्सा का वर्णन करेंगे। आशा है पाठक इस यौगिक चिकित्सा से लाभ उठाकर अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने का प्रयत्न करेंगे।

विविध रोगों की यौगिक चिकित्सा

किसी भी रोग की चिकित्सा से पूर्व उसका लक्षण तथा कारण जान लेना परमावश्यक है, अतः हमने प्रत्येक रोग की चिकित्सा से पूर्व उसके लक्षण तथा कारण भी लिख दिए हैं। आशा है पाठकों को अपने रोग पहचानने तथा उसकी निवृत्ति में इससे पर्याप्त सहायता मिलेगी।

१. जुकाम

लक्षण—नाक से थोड़ी-थोड़ी देर में या निरन्तर कफ अथवा जल-सा निकलना, शरीर में आलस्य तथा भारीपन का होना। भूख का कम हो जाना। कभी-कभी कुछ ज्वर-सा भी मालूम होना।

कारण—खाया हुआ भोजन भली प्रकार न पचने के कारण उससे उत्पन्न हुआ दूषित तथा विषाक्त रस मस्तिष्क तथा शरीर के अन्य भागों में फैल जाता है, जिसे प्रकृति रोम-छिद्रों के द्वारा प्रतिदिन बाहर निकालती रहती है। किन्तु जब मनुष्य गर्मी से एकदम सर्दी में आ जाता है तो शरीर के रोम-छिद्र एकदम बन्द हो जाते हैं। अतः दयालु प्रकृति मस्तिष्क आदि में फैले दूषित तथा विषाक्त द्रव्य को नासिका के द्वार निकालना प्रारम्भ कर देती है। इसी प्रकार जब मनुष्य सर्दी से एकदम गर्मी में प्रवेश करता है तो मस्तिष्क आदि में जमा हुआ दूषित पदार्थ तरल हो जाता है और नासिका के द्वारा बहने लग जाता है। इसीको सर्द-गर्म होना कहते हैं। अतः जुकाम का मूल कारण सर्द-गर्म नहीं, अपितु पेट की खराबी ही है। सर्द-गर्म तो केवल निमित्त मात्र ही बन जाता है। कभी-कभी संकुचित, अधिक जनाकीर्ण तथा धूलि और धुआँ-युक्त स्थानों में भी यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा—रोग के कारण में कहा जा चुका है कि जुकाम का मुख्य कारण पेट की खराबी ही है। अतः जुकाम होते ही पेट के साफ करने तथा भूख के बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। जुकाम के प्रारम्भ होने पर कम-से-कम एक दिन का उपवास रखकर दूसरे दिन हल्का भोजन दलिया, खिचड़ी, हरे शाक तथा फलादि अपनी प्रकृति के अनुसार स्वल्प मात्रा में लेने चाहिएँ। जब तक जुकाम दूर न हो, प्रतिदिन प्रातःकाल योग की बस्ती क्रिया करनी चाहिए। यदि बस्ती का अभ्यास न हो तो एनिमा ले सकते हैं। दिन में दो-तीन बार थोड़े गर्म जल में थोड़ा-सा नमक डालकर नेती-क्रिया करनी चाहिए, या नासिका से नमक-मिला गर्म जल पीकर मुख से निकाल देना चाहिए। चीनी मिट्टी या पत्थर के पात्र में खौलता पानी डालकर उसमें आधा नींबू निचोड़कर धीरे-धीरे पी लें। एक या दो समय भोजन मत खाएँ, अथवा अमरूद के ६-७ हरे कोमल पत्तों को पानी में अच्छी तरह उबाल लें, फिर छानकर दूध और शक्कर डालकर पी लें। यदि लसोड़े के भी ५-७ कोमल

पत्ते डाल दिए जाएँ तो और भी अच्छा है। इससे रुका हुआ जुकाम, जकड़ा हुआ कफ, सीने का दर्द तथा खाँसी बहुत जल्द ठीक हो जाते हैं। दूध में हल्दी खूब औटाकर पीने से नया जुकाम ठीक हो जाता है। क्षुधा को बढ़ानेवाले हल्के योगासन, जैसे—उत्तानपाद, भुजंग, पश्चिमोत्तान, हस्तपादांगुष्ठ, पवनमुक्त तथा नाभ्यासन आदि करने चाहिएँ। इनके साथ-साथ प्रातः भस्त्रिका प्राणायाम करने तथा प्रातः हाथ-मुँह धोने के पश्चात् नाक में दस-बारह बार पानी भरने और तुरन्त निकाल देने से जुकाम बहुत जल्दी ठीक हो जाता है।

२. खाँसी

लक्षण—मुख से सहसा फूटी काँसी की तरह आवाज निकलना। अधिक बढ़ जाने पर या शरीर के दुर्बल होने पर छाती में पीड़ा होना। खाँसी में कफ साथ आने पर गीली, और बिना कफ के सूखी खाँसी कहलाती है।

कारण—छाती में अधिक वायु के चले जाने, या ठण्ड लग जाने, किंवा कफ के भर जाने से श्वास-प्रणाली संकुचित होती तथा रुक जाती है। जब श्वास-प्रणाली से श्वास ऊपर उठने लगता है तो प्रणालिका के संकुचित होने या कफ से बन्द होने के कारण श्वास बाहर निकलने के लिए जोर लगाता है, और इसीलिए आवाज करता हुआ और छाती को पीड़ा पहुँचाता हुआ बाहर निकल पाता है। इसी का नाम खाँसी है।

चिकित्सा—खाँसी प्रारम्भ होते ही तेज वायु तथा अधिक ठण्ड से बचना चाहिए। श्वास-प्रणाली को कफ से साफ करना चाहिए तथा ऐसा उपाय करना चाहिए कि दुबारा श्वास-प्रणाली में कफ पैदा न हो। इसके लिए बस्ती-क्रिया या एनिमा से पहले दो-तीन दिन पेट को साफ करें। गरिष्ठ तथा कफकारक भोजन न करें। जल या वस्त्र-धौती के द्वारा प्रतिदिन प्रातःकाल श्वास-प्रणाली को साफ करना चाहिए और संकुचित प्रणाली को विकसित करने के लिए भस्त्रिका प्राणायाम या कपालभाती करनी चाहिए तथा जुकाम की चिकित्सा में वर्णित हल्के योगासन करने चाहिएँ। आसन करने से पूर्व कवोष्ण जल से तौलिया को गीला कर उससे छाती और गले को खूब रगड़कर स्नान करना चाहिए। गर्म दूध में २ माशे आँवले का चूर्ण मिलाकर खाने से सूखी खाँसी ठीक हो जाती है।

३. अतिसार तथा संग्रहणी

लक्षण—कुछ दर्द के साथ या वैसे ही बार-बार पतला दस्त आना, अतिसार कहलाता है। बड़ी आँत में घाव या सूजन पैदा होकर उसमें से रक्त या आँव भी निकलने लगती है। जब दस्तों के साथ आँव आती है तो पेट में ऐंठन भी होती है। संग्रहणी में ५, ७, १० या १५ दिन में दस्त के दौरे होते हैं और जितना खाया जाता है, वह पेट में फूलकर निकलने के कारण मल का परिमाण मर्यादा से अधिक हो जाता है। मुख में अरुचि तथा क्षुधा मन्द हो जाती है।

कारण—अति गरिष्ठ या अधिक मात्रा में अथवा अधिक चटपटे मिर्च-मसालेवाले पदार्थ खाने पर जब खाया हुआ भोजन भली प्रकार नहीं पचता तो वह आँतों में सड़ने लगता है। दस्त खुलकर न आने के कारण आँतों में मल अधिक परिमाण में एकत्रित हो जाता है। रस, रक्त, मेद, मज्जा आदि धातुएँ भी दूषित हो जाती हैं और कफ, पित्त की प्रबलता हो जाती है। तब दयालु प्रकृति उसे बार-बार और अधिक जोर से बाहर निकालने का कार्य प्रारम्भ कर देती है। इसी का नाम अतिसार है। जब दस्तों के साथ आँव का आना भी प्रारम्भ हो जाता है तो वह संग्रहणी कहलाती है। कभी-कभी मल-मूत्र के वेग को रोकने तथा शराब आदि मादक द्रव्यों का अधिक सेवन करने तथा ऋतु-परिवर्तन के कारण पेट में पैदा हुए विकार से भी दस्त प्रारम्भ हो जाते हैं।

चिकित्सा—दस्त प्रारम्भ होते ही उन्हें बन्द करने का प्रयत्न न कर, आँतों में एकत्रित हुए अधिक मल तथा दूषित पदार्थों को निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। अतः रोगी को कवोष्ण जल में नींबू निचोड़कर पिलाएँ या प्रतिदिन बस्ती या एनिमा कराएँ। प्रातःकाल पाव-डेढ़ पाव कवोष्ण जल में नमक तथा नींबू का रस डालकर पी लें और फिर नौली क्रिया करें। इससे दस्त खुलकर आने से आँतें साफ हो जाती हैं। किन्तु यदि दस्तों के साथ आँव आता हो तो नौली क्रिया न करें। भोजन में हरी पत्ती के शाक, हरी या सूखी धनिया, जीरा, मक्खन-निकली छाछ, दलिया, खिचड़ी, सन्तरे और मोसम्बी आदि का सेवन करना चाहिए। पुराने चावलों के भात के साथ पुरानी इमली की गुड़-डाली चटनी, या क्रीम-निकले हुए दूध व दही को बिलोकर

तथा उतना ही पानी मिलाकर उसमें थोड़ा सैंधा नमक और एक माशा बारीक पिसी हुई सोंठ डालकर दिया जाय तो बहुत उत्तम है। यदि दस्त प्रारम्भ होते ही दो-तीन दिन उपवास कर केवल छाछ का सेवन किया जाय और फिर छाछ के साथ हल्के पदार्थों का सेवन किया जाए तो दस्त शीघ्र ही बन्द हो जाते हैं। टब-बाथ भी इस बीमारी के लिए बहुत लाभदायक है। आधी कच्ची आधी पक्की सौंफ तथा मीठे इन्द्रजौ को पीसकर उसमें ईसबगोल की भूसी तथा शक्कर मिलाकर दिन-रात १०-१२ बार देने से पुराने अतिसार तथा संग्रहणी भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। आम की गुठली को भून लें और उसके गूदे को कूटकर उसमें दही और काला नमक डालकर दिन में तीन-चार बार देने से पुरानी से पुरानी संग्रहणी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है। रोग के दूर हो जाने पर क्षुधावर्द्धक, कोष्ठबद्धता-नाशक योगासनों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार करना प्रारम्भ कर देना चाहिए, जैसे—भुजंग, उत्तानपाद, अर्द्धशलभ, हस्तपादांगुष्ठ, ताड़ासन, नाभ्यासन, पश्चिमोत्तान, पवनमुक्त, सर्वांग, योगमुद्रा, अर्द्धमत्स्येन्द्र आदि। यदि अतिसार में दाह और जलन होती हो, प्यास बहुत लगती हो, शरीर में खुश्की मालूम हो तो रोगी को बकरी के दूध में पानी मिलाकर और उसे औटाकर पिलाना चाहिए। इससे जहाँ उपर्युक्त कष्टों की निवृत्ति होती है, वहाँ दस्त बन्द होने में भी पर्याप्त सहायता मिलती है।

४. सिर-दर्द

लक्षण—पूरे सिर में या आधे सिर में पीड़ा का होना।

कारण—सिर-दर्द मुख्यतया पेट की खराबी से ही उत्पन्न होता है। जब खाया हुआ भोजन भली प्रकार नहीं पचता, और दस्त खुलकर नहीं आता, तब वहाँ से पैदा हुई दूषित तथा विषाक्त वायु पेट की सड़ाँद और गर्मी से गैस बनकर ऊपर उठती है और सिर के पूरे स्नायुमंडल की चेतनता छीन लेती है। इसी कारण कभी सिरदर्द और कभी जुकाम या नजला आदि विकार उठ आते हैं। सिर में रक्त की अधिकता या न्यूनता के कारण भी सिरदर्द हो जाता है। कभी-कभी मस्तिष्क-सम्बन्धी अधिक परिश्रम करने, चिन्ता और शोक से ग्रसित रहने के कारण भी सिरदर्द हो जाता है। स्त्रियों को कभी-कभी सर्दी लग जाने से तथा मासिक धर्म खुलकर न होने के कारण भी सिरदर्द हो जाता है।

चिकित्सा—यदि पेट की खराबी से सिरदर्द हुआ हो तो कवोष्ण जल में नींबू डालकर बस्ती तथा जलधौती करनी चाहिए। यदि गर्मी के कारण सिरदर्द हो तो जलनेती करनी चाहिए, और प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन उषःपान अर्थात् नाक से ठण्डा जल पीना चाहिए, और शीतली प्राणायाम करना चाहिए। यदि रक्त की कमी के कारण सिरदर्द हो तो सर्वांगासन, शीर्षासन, विपरीतकरणी तथा हलासन करना चाहिए। यदि रक्त की अधिकता से सिरदर्द हो तो सिर के ऊपर थोड़ी देर तक ठण्डा जल डालना चाहिए या ठण्डे जल से पट्टी भिगोकर अथवा मिट्टी की पट्टी सिर पर रखनी चाहिए, और पैरों को दस मिनट तक गर्म जल में रखना चाहिए, और उज्जायी प्राणायाम करना चाहिए। पेट को बस्ती आदि से साफ रखना सब प्रकार के सिर-दर्द में लाभदायक है। जिन्हें सूर्य निकलने के साथ सिरदर्द शुरू हो जाता है, उन्हें दर्द से पहले ही १ तोला गुड़ में ६ माशा गाय का घृत मिलाकर खा लेना चाहिए।

५. निद्रा का न आना

लक्षण—सिर का भारी होना, सिरदर्द, चक्कर आना, अंगों का टूटना, आँखों में जलन तथा आलस्य आदि भी निद्रा न आने के कारण उपस्थित हो जाते हैं।

कारण—कब्ज, गैस, तथा तेज ज्वरादि विकारों के कारण निद्रा नहीं आती। अधिक मानसिक परिश्रम, चिन्ता तथा चाय आदि नशीली वस्तुओं के प्रयोग करने से भी निद्रा नहीं आती।

चिकित्सा—अनिद्रा दूर करने के लिए सबसे पहले बस्ती आदि से पेट साफ कर लेना चाहिए, तथा पेट-दर्द में बताए आसन करने चाहिएँ। रात्रि को सोते समय ठण्डे जल से हाथ-पैर तथा सिर को धोकर सोना चाहिए; सर्दियों में ताजे कुएँ के जल से या उतने गर्म जल से, धोने चाहिएँ। इससे जहाँ निद्रा ठीक आती है, वहाँ बुरे स्वप्न भी नहीं आते। प्रातः-सायं ठण्डे जल से जलनेती करनी चाहिए। टब-बाथ तथा मिट्टी की पट्टी भी इसके लिए लाभकारी है। प्रातःकाल ओस-भीगी घास के ऊपर चलने से भी निद्रा अच्छी आती है। आँवले या ब्राह्मी के तेल की मालिश तथा नारियल के तेल में थोड़ा जल मिलाकर पैरों के तलुओं में मलने से भी निद्रा आ जाती है।

अनिद्रा के रोगी को चाय आदि नशीली वस्तुओं का परित्याग कर देना चाहिए।

सोने से पूर्व बिछौने पर बैठकर कम-से-कम ११ बार उज्जायी प्राणायाम करके, ओम् या गायत्री का जप करना चाहिए, तथा जप करते ही लेट जाना चाहिए और शवासन के समान सोते-सोते ही मन का शरीर से सम्बन्ध हटाकर जप में ही लगा देना चाहिए। इससे जप करते-करते ही निद्रा आ जायगी। हमेशा प्रकाश-रहित खुले हवादार स्थान में सोना चाहिए।

निद्रा-नाश का एक उत्तम प्रयोग—डेढ़ सेर जल में ६ माशे सोंठ, ६ माशे धनिया डालकर उबालें। जब पानी आधा रह जाए तो मल तथा छानकर उसमें ६ माशे बादाम-रोगन और मिश्री डालकर दोनों समय पीएँ। निद्रा-नाश का रोग शीघ्र दूर होगा, और दिमाग की कमजोरी भी जाती रहेगी। ठण्डे पानी या दूध में शहद डालकर पीने से खूब नींद आती है। यदि एक मास तक केवल पालक, करमकल्ला, गाजर, मूली, शलजम, अमरूद, खजूर, केला, तथा सूखे मेवे ही खाए जाएँ तो खूब नींद आएगी और मस्तिष्क की कमजोरी भी जाती रहेगी।

६. मूर्छा

लक्षण—एकदम बेहोशी का आ जाना मूर्छा कहलाती है।

कारण—मूर्छा का मुख्य कारण मस्तिष्क में रक्त की कमी है। इसीलिए यह रोग प्रायः स्त्रियों तथा निर्बल मनुष्यों को अधिक होता है।

चिकित्सा—मूर्छा होते ही रोगी को अर्द्ध-सर्वांगासन कराना चाहिए, अर्थात् उसे किसी ऐसे तख्त पर लिटा देना चाहिए जो पैरों की ओर से दो फुट के लगभग ऊँचा तथा सिर की तरफ से नीचा हो। सुलाने के पश्चात् उसके मुख पर ठण्डे जल के छींटे देने चाहिएँ। इस उपचार से मूर्छा रोग शीघ्र ही दूर हो जाता है। मूर्छा दूर हो जाने पर रोगी को कुछ देर तक अर्द्ध-सर्वांगासन की अवस्था में ही सुलाए रखना चाहिए। उसे एकदम बैठा नहीं देना चाहिए, तथा स्वस्थ अवस्था में सिरदर्द में बताए आसन और उज्जायी प्राणायाम करना चाहिए, और पेट को बस्ती आदि से साफ रखना चाहिए। इस रोग के लिए टब-बाथ भी लाभकारी है।

७. बद्धकोष्ठता (कब्ज)

लक्षण—मल न निकलना, या सूखी हुई अवस्था में आना, अथवा बिल्कुल न आना बद्धकोष्ठता कहलाती है।

कारण—अनुचित आहार या अत्याहार से बद्धकोष्ठता उत्पन्न होती है। किन्ही मनुष्यों में वायु की विषम स्थिति के कारण स्वाभाविक रूप से भी बद्धकोष्ठता होती है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा बहुत शीघ्र करनी चाहिए क्योंकि कब्ज सब रोगों का मूल है। हमारी आँतों के अन्दर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ हैं, जो आँतों में से निरन्तर रस खींचती रहती हैं। जब खाया हुआ भोजन भली प्रकार पचकर मल खुलकर निकल जाता है तो वे ग्रन्थियाँ आँतों में से उत्तम रस को खींचकर और सारे शरीर में फैलाकर शरीर को नीरोग तथा स्वस्थ बना देती हैं। किन्तु जब मल खुलकर नहीं निकलता तो आँतों में सड़ाँद तथा विषाक्त रस उत्पन्न हो जाते हैं, तथा वही ग्रन्थियाँ उस विषाक्त रस को आँतों में से खींचकर और सारे शरीर में फैलाकर शरीर को रोगी और निर्बल बना देती हैं। अतः शरीर में कब्ज का रहना मानो अन्य रोगों को भी निमन्त्रण देना है।

कब्ज के रोगी को पहले दो-तीन दिन उपवास रखना चाहिए, तथा उपवास के दिनों में कवोष्ण जल में नींबू निचोड़कर दिन में तीन-चार बार पीना चाहिए, तथा बस्ती या एनिमा सायं-प्रातः, अथवा केवल प्रातः-समय लेना चाहिए। यदि कब्ज बहुत पुराना हो और एनिमा या बस्ती से भी पेट अच्छी तरह साफ न हो सके, तो रात्रि को सोते समय मुनक्का, गुलाब के फूल और सनाय के पत्तों का जुशांदा बनाकर दो-तीन दिन तक पीना चाहिए। इससे दस्त खुलकर आएगा और दो-तीन दिन में पेट तथा आँतें बिल्कुल साफ हो जाएँगी। यदि उपवास के दिनों क्षुधा सहन न हो सके और शरीर में निर्बलता प्रतीत होने लगे तो फलों का रस या रसदार फल और हरे पत्तों का शाक खाना चाहिए। प्रातःकाल बस्ती लेने से पूर्व जलधौती तथा उसके पश्चात् नौली क्रिया कर ली जाय तो दस्त खुलकर आने में बहुत सहायता मिलती है। यदि रोगी इन दिनों १० मिनट तक टब-बाथ ले लिया करे तो बहुत अच्छा है। टब-बाथ न लेने की अवस्था में स्नान करते समय मोटे खुरदरे

तौलिए को पानी में भिगो-भिगोकर २-३ मिनट तक पेट को खूब मलना चाहिए। तीन दिन के उपवास के पश्चात् नमक या गुड़ का दलिया, चोकर-सहित मोटे आटे की अंगारों पर सिकी हुई रोटी, हरे पत्तों का शाक या फल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लेना प्रारम्भ कर देना चाहिए। पपीता और अंजीर भी कब्ज दूर करने के लिए बहुत उपयोगी हैं। प्रातः शौच जाने से पूर्व उषःपान अर्थात् गर्मियों में ठण्डा जल तथा सर्दियों में कुएँ का ताजा जल डेढ़ पाव के लगभग नासिका अथवा मुख से पी लेना चाहिए, और फिर बिस्तरे पर लेटकर इसी अवस्था में किए जा सकनेवाले योग के तीन-चार सुगम आसन करने चाहिएँ, तथा इसके पश्चात् कुछ मिनट चल-फिरकर पुनः शौच जाना चाहिए। स्नान के पश्चात् प्रातःकाल अथवा दोनों समय उत्तानपाद, पवनमुक्त, नाभ्यासन, पश्चिमोत्तान, पादांगुष्ठासन, चक्रासन, धनुरासन, हलासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, योगमुद्रा, तथा अन्य जो आसन रोगी को अनुकूल प्रतीत हों, करने चाहिएँ। पाव-डेढ़ पाव गर्म जल में नमक डालकर पीने और ऊपर से नौली क्रिया करने से कब्ज का रोग बहुत जल्दी ठीक हो जाता है। उपवास के पश्चात् भी जब तक कि रोगी पूर्णतया ठीक न हो जाय, सप्ताह में एक-दो बार बस्ती या एनिमा अवश्य ले लेना चाहिए। तले हुए तथा अन्य गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। कब्ज के रोगी को भोजन के मध्य में थोड़ा-थोड़ा जल अवश्य पीना चाहिए। गेहूँ के मोटे आटे में थोड़ा-सा चोकर मिलाकर रोटी बनाकर खाने से कब्ज में बहुत लाभ होता है।

जिन्हें दूध पीने से कब्ज होती हो उन्हें दूध में पाँच-सात दाने मुनक्का के डालकर और उसमें कुछ जल डालकर उसे उबाल लेना चाहिए तथा दूध में उबले मुनक्का के दाने खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिए। जिन्हें दूध पीने से पतले दस्त आते हों, उन्हें कुछ पानी-मिले दूध में एक-दो माशे बारीक पिसी सोंठ डालकर और उसे उबालकर पीना चाहिए। यदि दूध में शक्कर की बजाय थोड़ा-सा शुद्ध शहद डाला जाय तो बहुत ही उत्तम है। कब्ज के लिए पेट पर गीली मिट्टी का प्रयोग भी बहुत लाभप्रद है।

मल-त्याग के समय शारीरिक जोर लगाने की अपेक्षा मानसिक बल से काम लेना चाहिए, अर्थात् मन में यह प्रबल भावना करनी चाहिए कि मुझे दस्त खुलकर आएगा।

८. श्वास (दमा)

लक्षण—श्वास का उखड़ जाना, सारे शरीर में व्याकुलता का होना आदि।

कारण—श्वास या दमा भी पेट की खराबी से पैदा होता है। खाया हुआ भोजन जब भली प्रकार नहीं पचता तो पक्वाशय में विकृत रस पैदा होकर पेट की उष्णता से ऊपर उठता है और श्वास-प्रणाली में आकर एकत्रित हो जाता है। इससे श्वास-प्रणाली रुक जाती है। श्वास जब श्वास-प्रणाली द्वारा ऊपर उठना चाहता है तो श्वास-प्रणाली में एकत्रित हुआ कफ उसे ऊपर उठने में बाधा डालता है, इसीलिए श्वास उखड़ जाता है। श्वास के उखड़ जाने का नाम ही दमा है।

चिकित्सा—श्वास के रोगी को सर्वप्रथम पेट और श्वास-प्रणाली को साफ करने का प्रयत्न करना चाहिए। अतः पहले एक-दो दिन उपवास रखकर फिर तीन दिन फलों के रस पर रहे। फिर चौथे दिन $\frac{1}{2}$ हिस्सा चोकर मिलाकर खमीर उठे हुए आटे की मोटी रोटी खूब सेककर लौकी, मूली, पालक, परवल, पपीता आदि के साथ खाएँ।

दमावाले को तम्बाकू पीना सर्वथा छोड़ देना चाहिए। नींबू के रस में शहद मिलाकर पिएँ। उपवास के दिनों में बस्ती या एनिमा और वस्त्र-धौती अवश्य करनी चाहिए। वस्त्र-धौती तो जब तक रोग ठीक न हो प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रातःकाल अवश्य ही कर लेनी चाहिए, क्योंकि दमा रोग के लिए वस्त्र-धौती बहुत ही लाभप्रद है। उपवास के पश्चात् खाँसी की चिकित्सा में बताए योग-आसन अपनी सुविधा तथा शक्ति अनुसार प्रतिदिन नियमपूर्वक करने चाहिएँ। आसनों के पश्चात् उज्जायी प्राणायाम करना चाहिए। मत्स्यासन तथा सर्वांगासन दमा के लिए विशेष लाभदायक हैं। दमा के रोगी के लिए प्रातः-भ्रमण बहुत लाभकारी है। भ्रमण में बीच-बीच में रुककर दो-तीन बार श्वास को इस प्रकार से बाहर निकालें कि पेट खाली हो जाए।

९. रक्त-विकार

लक्षण—शरीर में फोड़ा, फुन्सी, खुजली, दाद, कुष्ठ आदि का होना।

कारण—रक्तदोष का मूल कारण भी पेट की खराबी ही है। जब खाया हुआ पदार्थ भली प्रकार से नहीं पचता या रक्त को दूषित करनेवाले

खट्टे तथा अधिक मिर्च-मसालोंवाले या अधिक मात्रा में गुड़ आदि मीठे पदार्थों का सेवन किया जाता है, तो उस भोजन से बना विकृत रस दूषित कीटाणुओं से युक्त हो जाने से उस दूषित रस से उत्पन्न हुआ रक्त भी दूषित तथा विकारयुक्त हो जाता है। यही विकृत रस सारे शरीर में फोड़ा-फुन्सी आदि रोगों को जन्म देने का कारण बनता है।

चिकित्सा—रक्त-दोष के रोगी को सबसे पहले खट्टे, तीव्र, अधिक मिर्च-मसालों वाले, तेल से तले पदार्थों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। हरे शाकों, फलों और चोकर-सहित मोटे आटे की रोटी तथा दलिया का सेवन करना चाहिए। प्रारंभ में कुछ दिन तक गर्म जल में नींबू निचोड़कर बस्ती करनी चाहिए, तथा ऐसा ही जल पीकर नौली क्रिया भी करनी चाहिए। प्रथम दो-तीन दिवस तक यदि अन्नाहार न करके फल और शाकाहार लिया जाय तो बहुत उत्तम है। इसके पश्चात् रक्त को शुद्ध करनेवाले, क्षुधा को बढ़ाने और कब्ज को दूर करनेवाले योगासन अपनी सामर्थ्यानुसार प्रारम्भ कर देने चाहिएँ यथा उत्तानपाद, पश्चिमोत्तान, पवनमुक्त, चक्रासन, हस्तपादांगुष्ठ, धनुरासन, भुजंग, सर्वांग, हलासन, नाभ्यासन, शीर्षासन, योगमुद्रा नं० २, आसनों के पश्चात् कपालभाती तथा उज्जायी प्राणायाम भी अवश्य करना चाहिए। प्राणायाम रक्त-शुद्धि के लिए बहुत लाभप्रद है। पेडू पर रखी मिट्टी की पट्टी भी रक्त-शुद्धि के लिए बहुत लाभकारी है। साफ चिकनी मिट्टी कोरे मिट्टी के पात्र में भिगो देवें। बाद में मिट्टी मसलकर दो अंगुल मोटी तह पेट पर रखकर ऊपर निचोड़ा हुआ गीला कपड़ा रखकर, उसके ऊपर सूखे कपड़े को रखकर बाँध दें। सुबह-शाम दो-दो घण्टे रखें। यदि इन दिनों गेहूँ, जौ या चने की मोटी रोटी सेककर मक्खन या घी के साथ खाएँ और नमक बिल्कुल न खाएँ तो १५ दिन में हमेशा के लिए चर्म-रोग नष्ट हो जाएँगे।

रक्त-शुद्धि का एक अत्युत्तम प्रयोग—लहसुन की एक कली को कुचलकर निगल जाएँ, चबाएँ नहीं। दूसरे दिन दो, इसी प्रकार दस दिन तक एक-एक कली बढ़ाते जाएँ। ग्यारहवें दिन से एक-एक कम करते हुए वापस एक तक पहुँच जाएँ। इस प्रयोग से रक्त बिल्कुल शुद्ध हो जायगा। रक्त की न्यूनाधिकता भी जाती रहेगी। गठिया आदि रोग भी दूर होंगे।

चर्म-रोग के लिए अत्यन्त सरल तथा चमत्कारिक प्राकृतिक प्रयोग—रोगी को किसी बन्द कमरे में, जहाँ वायु का झोंका न लगे, सहने योग्य गर्म जल से

नहलाइए, और भली प्रकार से मलिए। फिर तत्काल ठण्डे पानी से नहला दीजिए और शरीर को भली प्रकार से पोंछ दीजिए। खाने में मिर्च-मसाला की चीजें न खिलाइए। यदि हरा कच्चा शाक खाया जाय तो बहुत उत्तम है। इस प्रकार केवल चार-पाँच दिन तक स्नान करने से चर्म रोग बिल्कुल चला जाएगा।

अनाज और मधु का लाभप्रद प्राकृतिक प्रयोग—गेहूँ-चने या जौ-चने की मोटी रोटी को खूब सेककर उसे खालिस घृत या दूध के साथ खाएँ। दिन में चार बार एक छटाँक पानी में नींबू का रस या शहद डालकर पी लिया करें। इस प्रकार ४० दिन करने से शरीर के सब रक्त-दोष दूर होकर शरीर बिल्कुल शुद्ध हो जाएगा।

१०. गठिया

लक्षण—घुटनों, हाथ-पैरों के जोड़ों तथा पुट्ठों में दर्द और सूजन का होना। कभी-कभी गठिया के प्रारम्भ में ज्वर आ जाना।

कारण—अनुचित आहार-व्यवहार से रक्त में अम्ल-भाग अर्थात् खट्टापन बहुत अधिक बढ़ जाता है और रक्त में तरलता न रहकर सरेश के समान गाढ़ापन आ जाता है जिससे रक्त का संचार भली प्रकार नहीं हो सकता, और जहाँ रक्त का संचार रुक जाता है, वहाँ पीड़ा तथा सूजन हो जाती है और जोड़ों में सख्ती आ जाती है।

चिकित्सा—गठिया के रोगी को सर्वप्रथम अपने रक्त को शुद्ध और निर्दोष बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए रक्त-विकार की चिकित्सा में बताए साधनों को काम में लाना चाहिए और आसनों में उत्कटासन, अर्द्ध या सम्पूर्ण उत्तानपादासन, पश्चिमोत्तानासन, हस्तपादांगुष्ठासन, ताड़ासन, नाभ्यासन करने चाहिएँ। गठिया के रोगी के लिए मीठा सन्तरा, मीठा नींबू, मोसम्बी, अनन्नास, सीताफल, चकोतरा जैसे फल बहुत लाभप्रद हैं। अतः गठिया के रोगी को इन फलों या इनके रसों का अवश्य सेवन करना चाहिए। दर्द या सूजन के स्थान पर चिकनी मिट्टी बाँधनी चाहिए। एरन्ड के बीज का छिलका उतारकर सफेद गुल्ली को एक दिन एक, दूसरे दिन दो—इस प्रकार सात दिन तक सात और फिर आठवें दिन से एक-एक कम करते हुए, दाँतों से कुचलकर प्रातः निगल जाया करें। गठिया बिल्कुल चला जाएगा।

कच्चे प्याज को निचोड़कर उसके रस में नमक मिलाकर गर्म करके दिन

में चार बार पीने से गठिया में बहुत शीघ्र आराम होता है। उसी प्रकार पत्थर, चीनी या मिट्टी के पात्र में खौलते पानी में एक यो दो नींबू का रस निचोड़कर एक मास तक पीने से भी गठिया दूर हो जाता है। ताजे बथुए के एक तोला पत्ते प्रातः नित्य दो मास तक खाने से गठिया बिल्कुल चला जाएगा। सूजन या दर्द के स्थान पर बिजली की मोटर में काम आनेवाला तेल अथवा मालकांगणी का तेल मलना चाहिए। पुराने गठिया में एक तोला सोंठ या अदरक कुचलकर एक पाव पानी में उबाल लें। जब जल आधा रह जाए तो छानकर उसमें जरा-सा शहद डालकर गर्म-गर्म पीकर रात को कम्बल ओढ़कर सो जाएँ। इससे गठिया में बहुत शीघ्र लाभ होता है।

११. नेत्रों की कमजोरी

लक्षण—नेत्रों से कम दीखना, जलन का होना, नेत्रों से पानी का गिरना आदि।

कारण—मस्तिष्क की उष्णता तथा निर्बलता से आँखें कमजोर हो जाती हैं। आँखों से पठन-पाठन आदि का काम अधिक लेने तथा बहुत तेज रोशनी में पढ़ने और पेट की खराबी से भी आँखें कमजोर हो जाती हैं। इनके अतिरिक्त निम्न कारणों से भी आँखें कमजोर हो जाती हैं।

१. पलकों की अनुचित क्रिया, आँखें अधिक खोलकर या घूरकर देखना, अथवा पलक झपकाना।
२. पढ़ने, लिखने, सीने, पिरोने, सिनेमा देखने आदि में आँखों का दुरुपयोग करना।
३. डर, चिन्ता, क्रोध व शारीरिक असुविधाओं का होना।
४. दोषयुक्त कल्पनाएँ और दूषित विचार।
५. कामवासना की अधिकता।
६. बिना आवश्यकता के ऐनक का प्रयोग।
७. भयावह स्वप्नों का देखना।
८. आँखों को तेज गर्मी, तेज बिजली आदि का प्रकाश, धूल और सूर्य की ओर खुला रखना
९. पौष्टिक भोजन का अभाव।
१०. सदा कब्ज का बना रहना।

चिकित्सा—यदि मस्तिष्क की कमजोरी से आँखें कमजोर हो गई हों तो प्रतिदिन प्रातःकाल जलनेती या उषःपान करना चाहिए। आँखों पर तथा मस्तिष्क पर ठण्डे जल के छींटे देने चाहिएँ। शीतली या शीतकारी प्राणायाम करना चाहिए। यदि मस्तिष्क की निर्बलता के कारण आँखें कमजोर हो गई हैं तो जलनेती के साथ-साथ वस्त्रनेती भी करनी चाहिए। आँखें यदि थोड़ी कमजोर हों तो शीर्षासन से भी लाभ होता है। शीर्षासन के पश्चात् यदि थोड़ा-सा गाय का शुद्ध घृत गर्म करके नासिका द्वारा पी लिया जाय तो नेत्रों के लिए बहुत लाभकारी है। किन्तु आँखों की अधिक कमजोरी की अवस्था में शीर्षासन कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसे सज्जनों को शीर्षासन के स्थान पर सर्वांगासन करना चाहिए। कब्ज की चिकित्सा में जो आसन बताए गए हैं, वे सब आसन भी प्रतिदिन अवश्य करने चाहिएँ, जिनसे पेट साफ रहे। योग की त्राटक क्रिया भी आँखों के लिए लाभकारी है। किन्तु वह भी आँखों की अधिक कमजोरी की अवस्था में नहीं करनी चाहिए।

आँखों के लिए लाभकारी व्यायाम

सीधे खड़े हो जाएँ, आँखों की पुतली को जितना-ऊपर नीचे ले जा सकें ले जाएँ, फिर दाएँ और बाएँ ले जाएँ, फिर चारों तरफ घुमाओ—ये तीनों व्यायाम प्रारम्भ में कम-से-कम दस बार करें और शनैः-शनैः बढ़ाते हुए २१ बार तक ले जाएँ। इस व्यायाम के पश्चात् आँखों को कुछ देर तक दोनों हाथों से इस प्रकार बन्द करें कि उन पर हाथों का दबाव न पड़े। इसके पश्चात् छोटी मक्खी का शुद्ध शहद जस्त की सलाई[१] के द्वारा आँखों में डालकर दस मिनट तक प्रातःकाल सूर्य के सामने बैठें। इसके पश्चात् रात्रि को मिट्टी के कोरे पात्र में भिगोकर रखे हुए त्रिफले के जल से (आई ग्लास) से आँखों को धो डालें, फिर कुछ देर तक आँखों को हाथ से बन्द रखें, फिर किसी भी भाषा के अक्षरों के चित्र-पट को कुछ दूर टाँगकर उन अक्षरों को बड़े से लेकर छोटे अक्षर तक पढ़ने का प्रयत्न करें, और पूर्व-बताई जल-नेती

---

१. यदि नीम की टहनी की बहुत चिकनी और साफ सलाई बनाकर उससे आँखों में शहद डाला जाय तो इससे बहुत शीघ्र लाभ होता है। किन्तु स्मरण रहे कि नीम की सलाई की जिस नोक से जिस आँख में शहद डालो, दूसरी आँख में उस नोक से न डालकर हमेशा दूसरे सिरे की नोक से ही शहद डालना चाहिए।

आदि क्रियाओं को भी साथ-साथ जारी रखें। ऐसा करने से आँखों की कमजोरी को आशातीत लाभ होता है। प्याज को दबाकर निकाले रस में थोड़ा सेंधा नमक डालकर आँख में टपकने से रतौंधी दूर हो जाती है। प्याज के रस में शहद डालकर लगाने से आँखों की ज्योति बढ़ती है और फूला कट जाता है।

१२. अपचन (बदहजमी)

लक्षण—भोजन का न पचना, भूख न लगना, पाखाना अपनी ठीक अवस्था में न आकर कभी सख्त और कभी बहुत पतला आना, कभी दस्त लग जाना, खट्टी डकारें आना, जी का मिचलाना तथा शरीर में आलस्य रहना, हृदय में जलन का होना, कभी-कभी आँतों में पीड़ा का अनुभव होना।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि रोग के सभी लक्षण सदैव उपस्थित नहीं होते।

कारण—भोजन का अधिक मात्रा में खाना, अथवा सड़े, गले, बासी, तले हुए, अधिक मिर्च-मसालेवाले और अपनी प्रकृति से प्रतिकूल पदार्थों के खाने और भोजन खूब चबाकर न खाने से अपचन का रोग हो जाता है।

चिकित्सा—बदहजमी के रोगी को इसके कारण में बताए उपर्युक्त सभी पदार्थों को एकदम छोड़ देना चाहिए। हल्के तथा सुपच पदार्थ जैसे—दलिया, खिचड़ी, बिना चोकर निकाले हाथ से पिसे आटे की आग पर सिकी रोटी, हरी पत्ती के शाक तथा फलों आदि का सेवन उचित मात्रा में करना चाहिए, तथा रोगनाशक आसन तथा क्रियाएँ सदैव करनी चाहिएँ। आसन—सर्वांग, उत्तानपाद, मत्स्य, पश्चिमोत्तान, भुजंग, मयूर, धनुर, शीर्षासन, हस्तपादांगुष्ठ, चक्रासन, नाभ्यासन, ताड़ासन, हलासन, योगमुद्रा, नौली तथा उज्जायी और भस्त्रिका प्राणायाम करने चाहिएँ। जिस दिन पेट खुलकर साफ न हो, उस दिन बस्ती किंवा एनिमा ले लेनी चाहिए। भोजन खूब चबाकर करना चाहिए। यदि बदहजमी के साथ कब्ज रहती हो तो भोजन के मध्य में पानी अवश्य पीना चाहिए। प्रातःकाल भी पाव-भर के लगभग जल नासिका द्वारा अथवा मुख द्वारा पी लेना चाहिए।

पेट के समस्त रोगों का एक अत्युत्तम प्राकृतिक प्रयोग—एक कोरी हाँडी में पाँच तोला चने डाल दें। रोज पानी और मिट्टी को बदलते रहें।

तीसरे दिन अंकुर निकल आने पर शुद्ध जल से धो डालें और एक-एक दाना चबाकर खाएँ। पानी बिल्कुल न पिएँ। इस प्रकार ४० दिन खाने पर पेट के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर तेजस्वी बनता है।

१३. पेट-दर्द

लक्षण—पेट में पीड़ा और ऐंठन होना, दर्द कभी निरन्तर और कभी दौरे के साथ होना।

कारण—पेट साफ न होने के कारण बड़ी आँतों में मल एकत्रित होकर खुश्क हो जाता है और वह आँतों में चुभने लगता है। कभी-कभी पेट में वायु का प्रकोप होने से भी दर्द होने लगता है।

चिकित्सा—पेट-दर्द में सबसे पहले बस्ती-क्रिया या एनिमा द्वारा अपना पेट साफ कर लेना चाहिए और फिर निम्न आसन तथा क्रियाएँ करनी चाहिएँ—शीर्षासन (यदि भली प्रकार करने का अभ्यास हो), सर्वांगासन, विपरीतकरणी, हलासन, हस्तपादांगुष्ठासन, नासाग्रासन, पश्चिमोत्तानासन, पवनमुक्तासन, नौली तथा कपालभाती इन सब क्रियाओं को निरन्तर करते रहने से हमेशा रहनेवाला पेट-दर्द भी सदा के लिए बन्द हो जाता है। तात्कालिक पेट-दर्द में यदि सभी क्रियाएँ न की जा सकें तो शीर्षासन, सर्वांगासन, कपालभाती आदि कोई दो-तीन क्रियाएँ ही कर लेनी चाहिएँ। पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी रखने से भी दर्द बन्द हो जाता है।

१४. अर्श (बवासीर)

लक्षण—गुदा-स्थान पर मस्सों का होना। मस्से दो प्रकार के होते हैं—खूनी और बादी। खूनी मस्सों से खून गिरता है। बादी में खून तो नहीं गिरता, किन्तु जब ये फूल जाते हैं तो जलन और पीड़ा होती है, जिससे बड़ी बेचैनी रहती है।

कारण—यह रोग प्रायः कब्ज से उत्पन्न होता है। जिसको हमेशा कब्ज रहती है, तथा मल खुलकर नहीं निकलता तो भोजनप्रणाली के अन्तिम भाग में सुकड़न पैदा होने से रक्त का संचार भली प्रकार से नहीं होता। इससे या तो मस्से फूल जाते हैं और जलन पैदा करते हैं, या उनमें एकत्रित हुआ दूषित खून जोर पड़ने पर बाहर निकलने लगता है।

चिकित्सा—बवासीर के रोगी को पहले एक-दो दिन उपवास करके फिर दो-तीन दिन तक फलाहार आदि हल्का भोजन करना चाहिए। तब कुछ दिन तक एक समय फल और शाक तथा एक समय हाथ की चक्की के पिसे मोटे आटे की रोटी खानी चाहिए। अधिक मीठा तथा मिर्चीं आदि का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। उपवास तथा अर्द्ध-उपवास के दिनों में कुएँ के ताजे जल या उतनी उष्णतावाले जल में नींबू डालकर बस्ती या एनिमा अवश्य लेना चाहिए। आगे भी जब कभी कब्ज मालूम हो, तब बस्ती या एनिमा अथवा मुनक्का आदि का जुशांदा ले लेना चाहिए। कन्दपीड़ासन तथा कब्ज की चिकित्सा में बताई आसनादि सब क्रियाएँ करनी चाहिएँ। खूनी बवासीर के रोगी को बस्ती या एनिमा ठण्डे जल से लेना चाहिए। बवासीर के लिए गणेश-क्रिया अर्थात् शौच के समय बीच की अँगुली गुदा में डाल चारों तरफ घुमाकर उसे खूब साफ करने से बवासीर में बहुत लाभ पहुँचता है। कच्ची मूली तथा मूली का शाक और पक्का पपीता और कच्चे पपीते का शाक भी बवासीर में लाभप्रद है। खाने के साथ-साथ ही पतीते के दूध का फोहा गुदा पर रखने से बवासीर में बहुत जल्दी लाभ होगा। पेडू-स्नान भी अर्श में बहुत लाभकारी है।

१५. मस्तिष्क की निर्बलता

लक्षण—सिर में भारीपन तथा थकान आदि मालूम होना, स्मरण-शक्ति का कमजोर होना, बौद्धिक कार्यों में मन का न लगना आदि।

कारण—उत्तम पौष्टिक आहार की कमी, अधिक बौद्धिक परिश्रम, मानसिक चिन्ताएँ, शरीर का निर्बल होना, आदि।

चिकित्सा—पौष्टिक, सुपच तथा सात्त्विक घृत, दुग्ध, मोटे आटे की रोटी, चावल, फल, मेवे, शाकादि का सेवन करना चाहिए। मानसिक चिन्ताओं को दूर कर सदा प्रसन्न रहने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक बौद्धिक परिश्रम भी नहीं करना चाहिए। शीर्षासन, वृक्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, हलासन तथा चक्रासन करना चाहिए। यदि कब्ज रहती हो तो उसे दूर करनेवाले आसन भी करने चाहिए। प्रातःकाल जलनेती, वस्त्रनेती तथा उज्जायी प्राणायाम करना चाहिएँ। अन्य सब आसनों के करने के पश्चात् सर्वांगासन, उसके पश्चात् शीर्षासन करना चाहिए। शीर्षासन कर लेने पर एक

तोला शुद्ध गाय का घृत, गर्म करके नासिका द्वारा या मुख से पी लेने से शीघ्र लाभ होता है। सिर साबुन से न धोएँ। रात्रि को आधी छटाँक गाय या भैंस के दूध और कुछ पानी में आँवले भिगो रखने चाहिएँ और प्रातः उन्हें मसलकर उससे सिर धोना चाहिए। तेल भी बाजारू नहीं लगाना चाहिए, यह मस्तिष्क को बहुत हानि पहुँचाता है। डेढ़ पाव हरे आँवले का रस या सूखे आँवलों का जुशांदा, पाव-भर हरी ब्राह्मी का रस या सूखी ब्राह्मी का जुशांदा, आध पाव हरे[१] भंगरे का रस या सूखे भंगरे के जुशांदे में सेर-भर शुद्ध तिल्ली का तेल डालकर धीमी आग में पकाएँ। जब पानी का भाग जल जाय और तेल शेष रह जाय तो उसे छानकर एक डिब्बे में डाल दें और उसमें दो तोला नागरमोथा, एक तोला छोटी कपूरकचरी, एक तोला बढ़िया सुगन्धित चन्दन का छिलका जवकूट कर डाल दें और मुँह बन्द कर दें। तीन दिन तक ऊपर छत पर रख दें। फिर छानकर बोतलों में भर दें। यह तेल मस्तिष्क के लिए बहुत ही लाभकारी है। यदि ऐसा तेल न बना सकें, तो शुद्ध सरसों का तेल ही सिर पर लगाया करें। किन्तु बाजार में बने हुए तेलों का प्रयोग कदापि न करें, क्योंकि—जैसे घासलेटी साहित्य मस्तिष्क के लिए हानिकार है, वैसे ही घासलेटी बाजारू तेल भी मस्तिष्क के लिए बहुत हानिप्रद है।

१६. मृगी

लक्षण—मैं अन्धकार में घुस रहा हूँ—ऐसा अनुभव करने के साथ-साथ हाथ-पैरों को इधर-उधर फेंकते हुए बेहोश हो जाना। आँखों का विकृत होना, तथा स्मृति का नष्ट हो जाना।

कारण—मस्तिष्क तथा ज्ञान-तन्तुओं (Nervous Systed) की निर्बलता।

चिकित्सा—एक या दो दिन केवल फलों पर रहें और एक नींबू के रस में ६ माशे शहद मिलाकर प्रातः-सायं पीएँ। बस्ती या एनिमा से पेट साफ रखें। चूँकि यह बीमारी प्रायः मस्तिष्क की निर्बलता के कारण होती है, अतः मस्तिष्क की निर्बलता में बताए सभी उपाय इसके लिए लाभकारी हैं। मृगी के लिए शीर्षासन तथा सर्वांगासन विशेष लाभप्रद हैं। इन उपायों के

---

१. यदि काला भंगरा मिल जाए तो बहुत अच्छा है।

साथ-साथ टब-बाथ लेने से तथा सिर पर मस्तिष्क की निर्बलता में बताए तेल लगाने तथा ब्राह्मी घृत खाने से इस बीमारी में शीघ्र लाभ होता है। उपर्युक्त इलाज के साथ यदि प्याज की एक गाँठ प्रतिदिन रात्रि को कच्ची खा ली जाए तो बहुत शीघ्र लाभ होता है।

मृगी का एक सफल प्रयोग—५ पत्ते करेले के, तीन काली मिर्चें, एक गाँठ लहसन—इनको पीसकर अर्क निकालें, २ बूँद नाक में डालें, दौरे बिल्कुल बन्द हो जाएँगे।

१७. उन्माद (पागलपन)

लक्षण—इसमें मनुष्य को अपने या पराए के हानि-लाभ का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उसे देश, काल, स्थिति आदि का भी कुछ पता नहीं रहता। ज्ञानतन्तुओं के कमजोर होने से उल्टे-सीधे कार्य करना उन्माद का सामान्य लक्षण है।

कारण—मस्तिष्क तथा ज्ञानतन्तुओं की निर्बलता।

चिकित्सा—मृगी रोग में बतलाए सब साधन अपनाएँ।

१८. दाह (जलन)

लक्षण—शरीर में गर्मी तथा जलन प्रतीत होना।

कारण—उष्ण पदार्थों का सेवन, पेट की खराबी, गर्मी में अधिक काम करना, आदि।

चिकित्सा—सर्वांगासन, अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन तथा कब्ज की चिकित्सा में बताए सब आसन उपयोगी हैं। जलनेती, उषःपान और शीतली प्राणायाम करना चाहिए, तथा टब-बाथ लेना चाहिए।

१९. वीर्य-विकार

लक्षण—पेशाब में वीर्य का आना, स्वप्नदोष, क्षुधा का न लगना, शरीर की सब धातुओं का क्षय, आलस्य, शरीर में बल और तेज का अभाव, बद्धकोष्ठता, उदासीनता तथा नेत्र, कर्ण आदि इन्द्रियों की शक्तियों का ह्रास।

कारण—अधिक मैथुन, अप्राकतिक मैथुन, सिनेमा आदि शृंगारिक दृश्यों का देखना, शृंगार-रसप्रधान पुस्तकों का पढ़ना, मानसिक चिन्ता, अधिक

मिर्च-मसाले, चटपटे-खट्टे पदार्थों तथा मादक (नशीले) द्रव्यों का सेवन, पुरुषार्थहीनता, आरामतलबी, अतिनिद्रा आदि वीर्य-विकार के मुख्य कारण हैं। कभी-कभी पैतृक-प्रकृति भी इस रोग का कारण होती है, अर्थात् रज-वीर्य-विकार से युक्त माता-पिता की सन्तान में भी प्रायः यह रोग पाया जाता है।

चिकित्सा—वीर्य-विकारवाले व्यक्ति को सर्वप्रथम अतिमैथुन तथा अप्राकृतिक मैथुन आदि का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। इन कारणों के रहते हुए, चाहे कैसी भी अचूक चिकित्सा क्यों न हो, वीर्य-विकार में कदापि लाभ न होगा। वीर्य-विकार को दूर करने के लिए पेट का हल्का रहना परम आवश्यक है। अतः वीर्य-विकार के रोगी को ऐसे पदार्थ कदापि नहीं खाने चाहिएँ जो बद्धकोष्ठता उत्पन्न करनेवाले हों। कम-से-कम सप्ताह में एक बार बस्ती या एनिमा से पेट अवश्य साफ कर लेना चाहिए। स्वप्नदोष के रोगी को रात्रि को सोते समय हाथ, पैर, मुख तथा मूत्रेन्द्रिय को शीतल जल से अच्छी तरह धोकर सोना चाहिए। यदि स्नान बन्द कमरे में करने की सुविधा हो तो ठण्डे पानी से तौलिया भिगोकर उससे पेट तथा मूत्रेन्द्रिय का अच्छी प्रकार घर्षण करना चाहिए। यदि यौगिक चिकित्सा के साथ-साथ प्रतिदिन रोगी दस मिनट तक टब-बाथ भी ले लिया करे और उसके पश्चात् यौगिक क्रियाएँ कर लिया करे तो वीर्य-विकार बहुत शीघ्र नष्ट हो जायगा। पेट पर दो घण्टे तक चिकनी मिट्टी बाँधने से भी स्वप्नदोष की बीमारी में बहुत शीघ्र आराम होता है। दूध गर्म करते समय एक-दो छुहारे डाल दें। फूल जाने पर छुहारे खाकर ऊपर से धीरे-धीरे करके दूध पी लें।

वीर्य-विकार के लिए उपयोगी यौगिक क्रियाएँ—पद्मासन, सिद्धासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्वपद्मासन, विपरीतकरणी, हलासन, नाभ्यासन, कन्दपीड़ासन, भुजंगासन, शीर्षासन, योगमुद्रा, उड्डियान, नौली आदि क्रियाएँ तथा उज्जायी, लोमविलोम, भस्त्रिका प्राणायाम। यदि वीर्य-विकार के कारण शरीर में जलन होती हो तो भस्त्रिका के स्थान पर शीतली प्राणायाम करना चाहिए।

२०. स्नायविक रोग या नाड़ी-संस्थान की दुर्बलता

लक्षण—शरीर में दाह तथा घबराहट का होना, कभी-कभी शरीर के विभिन्न अंगों में बहुत असह्य वेदना का अनुभव होना, शरीर तथा मस्तिष्क

का हमेशा सुस्त रहना, निद्रा का न आना, आदि।

कारण—पेट की खराबी, अधिक परिश्रम, चिन्तित जीवन तथा ब्रह्मचर्य का अभाव इस रोग के मुख्य कारण हैं। हमारे शरीर में सुषुम्ना आदि की कई प्राणवाहिनी नाड़ियाँ हैं, जिनके द्वारा प्राणवायु का सारे शरीर में संचार होता रहता है जिससे शरीर स्वस्थ और नीरोग बना रहता है। उपर्युक्त नाड़ियों में एक प्रकार का सूक्ष्म रस भी प्रवाहित होता रहता है जोकि उन प्राणवाहिनी नाड़ियों को स्निग्ध तथा लचकीला बनाए रखता है, और उन्हें सुकड़ने तथा अन्दर से शुष्क नहीं होने देता जिससे प्राणवायु उनमें सुगमता से संचार करती है। जब मनुष्य प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से ब्रह्मचर्य का अति मात्रा में भंग कर अपने शरीर को निर्वीर्य बना देता है, तो जहाँ उसका सारा शरीर ओज तथा तेजहीन हो जाता है, वहाँ प्राणवाहिनी नाड़ियों का ओज अर्थात् स्निग्ध रस भी क्षीण हो जाता है। इसी प्रकार मानसिक चिन्ता, अधिक परिश्रम आदि का भी यही परिणाम होता है। इससे उपर्युक्त नाड़ियाँ संकुचित तथा अन्दर से खुश्क हो जाती हैं जिसके कारण इन नाड़ियों में प्राणवायु का सञ्चार भली प्रकार नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप शरीर में घबराहट, आलस्य, दाह, निद्रा का नाश तथा शरीर के विविध अंगों में असह्य वेदना होने लगती है। इतना होने पर भी रोगी ऊपर से स्वस्थ और नीरोग ही दीखता है और उसके हृदय और फेफड़ों आदि में भी कुछ विशेष खराबी मालूम नहीं होती। इसीलिए डॉक्टर लोग उसके हृदय आदि को देखकर उसके वास्तविक रोग का निदान नहीं कर पाते और उस अभागे रोगी को, जिसके शरीर में असह्य वेदना हो रही है, नीरोग समझकर पागल या वहमी कहने लग जाते हैं। इससे वह और अधिक निराश तथा चिड़चिड़े स्वभाववाला बन जाता है, और शीघ्र ही विकराल काल का ग्रास बन जाता है। डॉक्टर लोग इसलिए भी उसे वहमी आदि कहकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं, क्योंकि उनके पास इस रोग का कोई इलाज ही नहीं। अतः इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यौगिक चिकित्सा ही है।

चिकित्सा—रोगी को सबसे पहले अपनी वीर्यनाशक कुटेवों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए, और अपने खान-पान में सुधार करना चाहिए। अधिक परिश्रम और चिन्ता को छोड़कर सदा प्रसन्न रहने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रारम्भ में एक-दो दिन उपवास रखकर केवल नींबू डाले हुए जल

का ही प्रयोग करना चाहिए। फिर तीन दिन तक हरी पत्ती के शाक, फल तथा दलिया आदि हल्का भोजन करना चाहिए। इन चार-पाँच दिनों में कम-से-कम एक समय बस्ती या एनिमा अवश्य लेनी चाहिए। इसके पश्चात् निम्न यौगिक क्रियाएँ तथा प्राणायाम अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रारम्भ कर देने चाहिएँ। आसन—उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन, पादांगुष्ठासन, ताड़ासन, नाभ्यासन, हलासन, सर्वांगासन, शीर्षासन, योगमुद्रा। प्राणायाम—उज्जायी, लोमविलोम। ग्रीष्म ऋतु में अथवा जब शरीर में जलन अधिक प्रतीत हो, तब शीतली प्राणायाम करना चाहिए, और जलनेती भी करनी चाहिए। यदि आसनों के करने से पूर्व दस मिनट तक टब-बाथ अर्थात् पेडू-स्नान तथा मेहन-स्नान कर लिया जाए तो यह रोग बहुत ही शीघ्र दूर हो जाता है।

२१. दिल की धड़कन (कमजोरी)

लक्षण—दिल का धड़कना, थोड़े-से परिश्रम से भी हाँफने लग जाना, हृदय में पीड़ा होना, दिल का हमेशा उदास और चिन्तित रहना।

कारण—अपनी सामर्थ्य से बढ़कर शारीरिक परिश्रम करने से, बिना अनुभवी गुरु से सीखे विधिहीन प्राणायाम करने से, किसी दुःखद घटना के कारण दिल पर भारी सदमा पहुँचने से, अधिक मैथुन से, तथा भोजन के ठीक प्रकार से न पचने पर गैस बनकर दिल में प्रवेश करने से हृदय-रोग हो जाता है।

चिकित्सा—योग के वे हल्के आसन करें जो स्त्रियों के यौगिक व्यायाम प्रकरण में दिए गए हैं, तथा बिना कुंभक के उज्जायी प्राणायाम करना चाहिए। भोजन सुपच और सादा करना चाहिए। हरे शाक और फलों का अधिक प्रयोग किया जाए। ऐसे पदार्थ जिनसे गैसें पैदा होती हो अर्थात् वातप्रधान पदार्थों का सेवन न किया जाए। दिल के रोगी को सदा यह प्रयत्न करना चाहिए कि कब्ज न रहने पाए। बस्ती से भी लाभ उठाएँ, अथवा एनिमा भी ले लेना चाहिए। प्रातःकाल उठकर उषःपान अर्थात् नासिका से जल पीना हृदय-रोगी के लिए बहुत लाभकारी है। जल पीने से पूर्व यदि चार पत्ते तुलसी के खा लिये जाएँ तो और भी अच्छा है।

६ माशा जवासा तथा तीन तोला मुनक्का पीसकर आधा सेर या डेढ़

पाव दूध में मिलाकर पी लिया करें। यदि थोड़ा शहद मिला लिया जाय तो और भी अच्छा है।

जिनका हृदय गैस बनने के कारण कमजोर है, वे यदि अन्य उपाय करते हुए हरे आँवलों को पीसकर उसमें शहद मिलाकर प्रातः ले लिया करें तो बहुत उत्तम है।

हृदय रोग के लिए एक अत्यन्त उपयोगी टोटका—एक खालिस तांबे का पैसा, या पैसे-बराबर खालिस तांबा लेकर उसे अग्नि में खूब तपाएँ कि वह लाल हो जाए। फिर उसे पानी में बुझाकर उसमें छेद कर दें। फिर रेत या नींबू से खूब रगड़कर उसे चमका लें। अब छेद में नीले रंग के रेशम का धागा इतना लम्बा डालें कि पैसा गले की कौड़ी पर, अर्थात् जहाँ दोनों पसलियाँ मिलती हैं, आ जाए। फिर उस नीले रंग का ध्यान करके शुक्रवार के दिन आठ और बारह बजे के अन्दर पहन लें। पैसा हर समय गले में लटका रहे, तथा शरीर के साथ लगा रहे। अढ़ाई-तीन मास के पश्चात् फिर उसे पूर्ववत् तपाकर पानी में बुझा लें। यह हृदय-रोग के लिए बहुत ही उपयोगी टोटका है।

सेव को भाप में पकाकर उसे गाढ़े दूध में मिलाकर खाने से भी हृदय की धड़कन को बहुत लाभ पहुँचता है।

२२. मधुमेह (Diabetes)

लक्षण—पेशाब में शुगर आने लगती है। पेशाब मधु की तरह गाढ़ा हो जाता है, तथा उसकी मात्रा बढ़ जाती है। सिर में दर्द रहता है। अक्सर कब्ज तथा मन्दाग्नि की शिकायत बनी रहती है। रोगी की चमड़ी खुश्क तथा खुरदरी हो जाती है। प्यास भी अधिक लगती है। शरीर में आलस्य बना रहता है। किसी-किसी मधुमेह के रोगी की नजर भी कमज़ोर हो जाती है; मुँह मीठा-मीठा रहता है। किसी-किसी की पीठ में फोड़ा हो जाता है। नींद बहुत कम आती है, इत्यादि उपद्रव रोगी के शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं, जोकि रोगी के जीवन को दुःखमय बना देते हैं। मधुमेह का रोगी जहाँ पेशाब करता है वहाँ चीनी जैसा सफेद पदार्थ जम जाता है। उस जगह पर चींटियाँ तथा मक्खियाँ बैटने लगती हैं।

कारण—भारी, चिकने, मीठे तथा खट्टे पदार्थों के अधिक मात्रा में सेवन

करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, तथा रस पचानेवाली ग्रन्थि कमजोर हो जाती है। इससे मधुर रस भली प्रकार से पचकर शरीर का अंग नहीं बन पाता। अतः वह पेशाब के द्वारा बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। शरीर से परिश्रम न करने, बहुत सोने तथा अधिक दिमागी काम करनेवालों को भी प्रायः यह रोग हो जाता है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के अनुसार सभी प्रकार के प्रमेहों की बहुत समय तक चिकित्सा न करने से वे मधुमेह का रूप धारण कर लेते हैं। प्रमेह में रस, रक्त आदि शरीरस्थ धातुओं का क्षय होने के कारण वायु प्रकुपित होकर कष्टसाध्य मधुमेह को जन्म दे देती है।

चिकित्सा—इस रोग को प्रायः असाध्य समझा जाता है। ऐलोपैथिक आदि कोई भी चिकित्सा इस रोग के समूल नष्ट करने का दावा नहीं करती। केवल एक यौगिक चिकित्सा ही है कि जिसके अन्दर इस भयानक रोग के सर्वथा निर्मूल करने की पूर्ण शक्ति विद्यमान है, बशर्ते कि इसे लगातार कुछ मास तक पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ जारी रखा जाए। यौगिक चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व रोगी को तीन दिन का उपवास इस प्रकार रखना चाहिए। प्रथम दिवस बिल्कुल कुछ न खाएँ; केवल कवोष्ण जल में नींबू डालकर दिन में तीन-चार बार पी लें। दूसरे दिन हरे शाक तथा फलों का रस और आधा पानी मिलाकर अथवा मक्खन-निकले दूध का सेवन करें। तीसरे दिन हरे शाक, फल तथा थोड़े दूध का ही सेवन करें। उपवास के दिनों में दिन में कम-से-कम एक बार योग की बस्ती अथवा एनिमा अवश्य ले लें। इस प्रकार तीन दिन उपवास के पश्चात् योग की निम्न क्रियाएँ अपनी सामर्थ्य तथा सुविधा के अनुसार करना प्रारम्भ कर दें। पहले हल्की, फिर कठिन; क्रम से इन क्रियाओं के समय तथा संख्या को भी बढ़ाते जाएँ।

यौगिक क्रियाएँ

ताड़ासन, पादांगुष्ठासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्तानपादासन, त्रिकोणासन, धनुरासन, नाभ्यासन, पदनमुक्तासन, उड्डियान, नौली, कपालभाती, तथा उज्जायी प्राणायाम। ये क्रियाएँ इस रोग के नष्ट करने में पूर्णतया समर्थ हैं। यह आवश्यक नहीं कि रोगी सभी क्रियाओं को करे। यदि इनमें से रोगी किसी क्रिया के करने में असमर्थ है तो उसे वह छोड़ सकता है। योग के इन आसनों, क्रियाओं तथा प्राणायाम के नित्यप्रति विधिपूर्वक करने से न केवल

यह रोग ही नष्ट हो जाता है, प्रत्युत पेट-सम्बन्धी अन्य समस्त रोग भी दूर होकर भूख खूब लगती है। पाखाना खुलकर आता है। यदि रोग की इन क्रियाओं के करने के साथ-साथ नित्यप्रति सायं-प्रातः अथवा केवल प्रातः दो-तीन मील पैदल घूम लिया करें तो यह रोग बहुत शीघ्र दूर हो जाएगा। इस रोग में दिमागी परिश्रम को जहाँ तक हो सके कम करके शरीर से खूब परिश्रम करना चाहिए, तथा पथ्यापथ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। मधुमेह के लिए एक अत्यन्त उपयोगी आसन—वज्रासन से बैठ जाओ। दोनों मुट्ठियों को बन्द करके नाभि के दोनों ओर सटा दें। फिर माथे को जमीन की तरफ ले-जाकर जमीन पर टिका दें। कम-से-कम पाँच मिनट तक ठहरें।

पथ्यापथ्य

मधुमेह के रोगी को शक्कर आदि मीठे तथा गरिष्ठ पदार्थों का सेवन एकदम बन्द कर देना चाहिए। हरे शाक तथा फल यथेष्ठ मात्रा में सेवन करने चाहिएँ। किन्तु अंगूर आदि बहुत मीठे फलों का भी सेवन नहीं करना चाहिए। काले जामुनों का सेवन मधुमेह के रोगी को बहुत लाभकारी है। इसीलिए वैद्य लोग इस रोग की निवृत्ति के लिए काले जामुन की गुठली के चूर्ण तथा शहद में मकरध्वज मिलाकर सेवन कराते हैं। केवल जामुन की गुठली के चूर्ण में शहद मिलाकर ले लेना भी बहुत लाभकारी है। उर्द, चने आदि गरिष्ठ दालों का सेवन भी कम करना चाहिए। दूध यदि मक्खन-निकला, बिना शक्कर का लिया जाए तो बहुत उत्तम है। यदि दूध को मीठा करना भी हो तो शुगर का सत्त्व अथवा शुद्ध मधु डाल देना चाहिए। लस्सी, पुराने चावल, चोकर-समेत मोटे आटे की रोटी, जौ की फुलियाँ (खीलें), शहद, नींबू आदि पदार्थ इस रोग के मरीज के लिए बहुत लाभप्रद हैं। भोजन की मात्रा थोड़ी हो तथा खूब चबाकर खाना चाहिए। नए चावलों का भात, मैदा की कचौड़ी आदि पदार्थ तथा मांस, मछली आदि पदार्थों को सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

इस प्रकार यदि पथ्यापथ्य का पूरा ध्यान रखते हुए रोगी उपर्युक्त योग के आसन, प्राणायाम आदि क्रियाओं को निरन्तर करता रहेगा तो उसे दो-तीन मास में ही आशातीत लाभ प्रतीत होगा।

जिन लोगों को मधुमेह में पेशाब अधिक आता हो, वे प्रातः एक या दो

तोले काले अथवा सफेद तिलों में थोड़ा-सा गुड़ डालकर भी सेवन कर लिया करें।

२३. यक्ष्मा (तपेदिक)

लक्षण—चित्त में उदासीनता, भूख का न लगना, खाँसी, बुखार का बने रहना, शरीर का कृश होते जाना, थूक के साथ रक्त का आना, निद्रा का नाश, शरीर में आलस्य का बने रहना, थोड़ा-सा परिश्रम करने पर भी शरीर में थकावट का अनुभव होना, खून की कमी, स्त्रियों में रजोधर्म का बन्द हो जाना, रात्रि में पसीना आना, बालों में सूखापन तथा उनका चमक-रहित होना। स्त्रियों के फेफड़े के जिस भाग में यक्ष्मा होता है, उस वक्ष का स्तन छोटा तथा लटका हुआ होता है। आवाज में भारीपन होता है या बिल्कुल बन्द हो जाती है, आदि।

कारण—शरीर के जो मुख्य कार्यवाहक अंग हैं, जैसे—फेफड़े, गुर्दे, यकृत, प्लीहा, जोड़ों तथा रीढ़ की हड्डियाँ—इन्हें जब पर्याप्त पोषण तथा उचित व्यायाम नहीं मिलता तो ये अंग शनैः-शनैः कमजोर तथा विकृत होने लग जाते हैं, तथा यक्ष्मा के कीटाणु अपना मौका पाकर हमला कर देते हैं। कभी-कभी खसरा, इन्फ्लूएन्जा, कुकरखाँसी, मधुमेह आदि रोगों के साथ भी यह रोग पैदा हो जाता है। छाती में किसी प्रकार की चोट लगना भी कभी-कभी तपेदिक रोग का कारण बन जाती है। मानसिक चिन्ताएँ भी इस रोग को उत्पन्न करने का कारण होती हैं।

चिकित्सा—सर्वप्रथम रोगी के आहार और व्यवहार को ठीक बनाना चाहिए। रोगी का आहार सात्त्विक, पौष्टिक और साथ ही सुपच भी होना चाहिए। जहाँ तक हो सके फल, हरी तरकारियाँ, बकरी का दूध, घी, दही आदि सब चीजें क्षय के रोगी के लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं। क्योंकि बकरी ही सब जानवरों में एक ऐसा जानवर है, जोकि क्षय के कीटाणुओं से सर्वथा बची रहती है। मक्खन-निकला हुआ दूध, गधी का दूध, क्रीम, पनीर, मुरब्बे, शहद, हाथ-चक्की का पीसा मोटा आटा और मक्खन के साथ ऐसे भी पदार्थ होने चाहिएँ, जिनमें विटामिन तथा प्रोटीन की मात्रा अधिक हो, जैसे—खजूर, केला, आम, अनार (बे-दाना), रसभरी, अंगूर, नाशपाती, पपीता, खरबूजा, मौसम्बी आदि। शाकों में मेथी, बथुआ, पालक, चौलाई, आलू, मटर, प्याज, लहसुन,

पेठा, जमीकन्द, रतालू, लौकी, परवल, टिण्डा, शलजम, गाजर का ताजा रस, नारियल का पानी आदि। रोगी के रहने का स्थान खुला और हवादार, साफ-सुथरा, स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए जिसमें सूर्य की किरणें भली प्रकार से रोगी को मिल सकें। स्मरण रहे कि सूर्य की किरणों में यक्ष्मा के कीटाणुओं को नष्ट करने की बड़ी भारी शक्ति विद्यमान है। रोगी के कमरे में अधिक भीड़-भाड़ भी नहीं रहनी चाहिए। वातावरण बिल्कुल शांत एवं स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए। रोगी के भोजन में नशीले तथा उत्तेजक पदार्थों का सर्वथा बहिष्कार होना चाहिए।

प्रातः उठकर उषःपान अर्थात् नासिका से थोड़ा जल पी लें। उसके पश्चात् थोड़ा भ्रमण करें

यौगिक व्यायाम—अर्द्ध-उत्तानपादासन, अर्द्ध-पवनमुक्तासन, अर्द्ध शलभासन, अर्द्ध-ताड़ासन (केवल कन्धों तक ही हाथ ले जाना), ताड़ासन, अर्द्ध-पादांगुष्ठासन (केवल कन्धों के सामने तक ही हाथ लाकर फिर वापस नीचे ले जाना), अर्द्ध-त्रिकोणासन (कमर पर हाथ रखकर कमर तक के ऊपरी भाग को दाएँ-बाएँ झुकाना तथा आगे-पीछे झुकाना), अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन (इस आसन में यदि पैरों के अँगूठे न पकड़े जा सकें तो कोई हानि नही)। योगमुद्रा नं० १, उज्जायी तथा कपालभाती प्राणायाम। उपर्युक्त सभी व्यायाम और प्राणायाम स्वच्छ और खुली वायु में सूर्य-किरणों के सम्मुख किए जावें तो रोगी को बहुत शीघ्र लाभ होता है।

स्मरण रहे कि यक्ष्मा के रोगी को शाक यदि बिना उबाले केवल भाप द्वारा पकाकर दिया जाय और उसमें नमक बिल्कुल न डाला जाय, या बहुत अल्प मात्रा में डाला जाए, तो बहुत उत्तम है। यक्ष्मा के रोगी को धूप में भली प्रकार तेल की मालिश कराकर ताजे या कवोष्ण जल से स्नान करवाना अत्यन्त लाभप्रद है। जल यदि कुएँ का हो तो अति उत्तम है। स्नान के पश्चात् यौगिक व्यायाम और उसके पश्चात् कुछ समय ईश्वरोपासाना में भी लगाना चाहिए।

तपेदिक की यज्ञ द्वारा चिकित्सा

यज्ञ द्वारा तपेदिक की चिकित्सा बड़ी सफलतापूर्वक की जा सकती है। आर्यों के धर्मग्रन्थ वेद में यक्ष्मा को यज्ञ दूर करने के अनेक मन्त्र आते हैं।

यथा—

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञाद् यक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।

—ऋग्वेद

हे मनुष्य ! तेरे जीवन को सुखमय बनाने के लिए तुझे यज्ञ की हवि से अज्ञात रोगों तथा राजयक्ष्मा रोग से मुक्त करता हूँ।

यक्ष्मा रोग के लिए हवन-सामग्री—नीम की पत्ती ८० तोला, बड़ी हरड़ ४० तोला, गुग्गुल २० तोला, अकवा २० तोला, मोरपंख ५ तोला, सरसों ५ तोला, बच ५ तोला, देवदारु ५ तोला, अगर ५ तोला, चन्दन ५ तोला, हींग १ तोला। इनको कूटकर प्रातः-सायं रोगी के कमरे में बिना धुएँ के अंगारों में हवन करें या वैसे ही डाल दिया करें। सामग्री में थोड़ा गाय या बकरी का घी, शक्कर भी मिला लें। तपेदिक से सदा बचे रहने के लिए निम्नांकित उपायों का सदा पालन करिए।

शरीर को सदा स्वस्थ तथा बलवान् बनाने के अचूक उपाय

१. सदा पौष्टिक, सात्त्विक, स्निग्ध तथा परिमित आहार करें।
२. प्रतिदिन नियमपूर्वक योगासनादि व्यायाम अवश्य करें।
३. ब्रह्मचर्य-पालन (वीर्य-रक्षा) पर विशेष ध्यान दें।
४. अनावश्यक तथा विलासप्रिय वस्तुओं का परित्याग करें।
५. अपने विचारों को उच्च, पवित्र तथा महान् बनाएँ।
६. आलस्य तथा प्रमाद छोड़कर अपने जीवन को सदा पुरुषार्थमय बनाएँ।
७. उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करें।
८. क्रोधी तथा चिड़चिड़े स्वभाववाले तथा दुर्व्यसनी व्यक्तियों के संग का परित्याग करें।
९. हमेशा सदाचारी तथा सज्जन पुरुषों का संग करें।
१०. ईश्वर-भक्ति शरीर को स्वस्थ रखने की एक अमोघ औषध है।
११. प्रातः सूर्योदय से पहले उठकर खुली तथा ताजी वायु में भ्रमण करें। भ्रमण सारे शरीर में नए रक्त का संचार करता है।
१२. सदा प्रसन्न रहें, शोक और चिन्ता को पास मत फटकने दें।
१३. कुछ समय परोपकार तथा लोक-सेवा में भी लगाएँ।
१४. अपने अन्दर से कमजोरी की भावना को दूर कर दें। अपने को सदा

स्वस्थ तथा बलवान् समझें तथा अनुभव करें।

१५. दीर्घ-श्वसन अर्थात् प्राणायाम अवश्य करें।

१६. शीघ्र सोएँ तथा शीघ्र उठें।

१७. कभी-कभी तेल की मालिश अवश्य कर लिया करें।

१८. ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध, चिन्ता, उदासीनता आदि मानसिक विकारों से सदा दूर रहें।

१९. झुककर बैठने, उठने तथा चलने की आदत को छोड़ दें।

२०. मुख को सदा खुला रखकर बाईं करवट से सीधे (पैर सुकोड़कर नहीं) सोने का अभ्यास करें।

२१. मल-मूत्रादि के वेग को मत रोकें।

२२. मन से सब प्रकार की चिन्ताओं को निकाल दें।

२३. सदा **'जीवेम शरदः शतम्'** इस भव्य भावना को अपने मन में बनाए रखें।

२४. अपना तथा अपनी सन्तान का बाल्यावस्था में विवाह मत करें।

२५. सप्ताह में एक दिन अथवा एक समय उपवास अवश्य करें।

२६. बाजार के बने हुए मिठाई आदि पदार्थों का कम-से-कम प्रयोग करें।

आचार्य श्री भद्रसेन जी

का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

आचार्य भद्रसेन जी भारत के उन गिने-चुने सुप्रसिद्ध विद्वानों में से एक थे जिन्होंने संस्कृत के सुप्रसिद्ध केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण की थी। आपका जन्म पंजाब के एक छोटे-से गाँव में सन् १९०० में हुआ था जो अब पाकिस्तान में है। आपने प्राच्य आर्य शिक्षाप्रणाली के अनुसार विद्याध्ययन किया था। श्री आचार्य जी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा में हुई। आप प्रारम्भ में ही विद्याध्ययन में कुशाग्रबुद्धि थे। इसलिए ढाई-तीन वर्ष के अल्पकाल में उर्दू की पाँच कक्षाएँ पास कर लीं। श्री आचार्य जी को असन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग में प्रवृत्त करनेवाले श्री दीवानचन्द पटवारी थे जो आर्य थे और सदाचार व संयम की साक्षात् मूर्ति थे। पटवारी होते हुए भी उनके आर्यत्व का प्रभाव उनसे सम्बद्ध सभी ग्रामों में फैल गया था। वे अपने निश्चित तीस-बत्तीस रुपए वेतन के अतिरिक्त किसानों व जमींदारों से एक पैसा भी नहीं लेते थे। उनके तथा एक अन्य महानुभाव के आग्रह से श्री आचार्य जी अपने घर से रात्रि को उठकर बिना घरवालों को सूचित किए हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ने लाहौर में आ गए। लाहौर में उन्होंने दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय आदि में संस्कृत तथा हिन्दी का अध्ययन किया। श्री आचार्य जी की प्रारम्भ से ही आर्ष-प्रणाली के अनुसार संस्कृत पढ़ने की तीव्र अभिलाषा थी। आचार्य जी ने लाहौर के अध्ययन-काल में जब समाचार-पत्रों में यह पढ़ा कि कानपुर के वैदिक विद्यालय में उपर्युक्त शिक्षा-प्रणाली के अनुसार पढ़ाया जाता है तो उन्होंने कानपुर जाने की ठानी। श्री आचार्य जी के पास कानपुर तक पहुँचने का किराया भी नहीं था, अतः वे दिन में तो विद्यालय

में पढ़ते थे और सायंकाल लाहौर के बाजारों में घूम-घूमकर वहाँ से निकलनेवाले दैनिक पत्रों 'मिलाप', 'प्रताप' तथा 'बन्देमातरम्' आदि को बेचते थे। जब श्री आचार्य जी के पास कानपुर तक का किराया एकत्र हो गया, तब आप लाहौर से कानपुर आ गए। लगभग दो-ढाई वर्ष कानपुर में अध्ययन करने के पश्चात् श्री आचार्य जी हरदुआगंज साधु आश्रम में पढ़ने के लिए आए, क्योंकि वहाँ प्राच्य प्रणाली के अनुसार पढ़ाया जाता था। वहाँ श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, श्री पं० शंकरदेव जी आदि भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् अध्ययन कराते थे। उन्होंने आचार्य जी की प्रार्थना स्वीकार कर उन्हें प्रविष्ट कर लिया। अमृतसर के संस्कृत-प्रेमी पुरुषों ने पूज्य स्वामी सच्चिदानन्द जी से अपने हरदुआगंज के विद्यालय को अमृतसर ले-जाने की प्रार्थना की।

उपर्युक्त विद्यालय 'विरजानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम' के नाम से अमृतसर आ गया। अमृतसर में यह विद्यालय लगभग तीन वर्ष तक बड़ी सफलतापूर्वक चला। फिर विद्यालय के प्रबन्धकों एवं विद्यालय के गुरुजनों में अनबन हो जाने के कारण वह विद्यालय भी बन्द हो गया। फिर आचार्य जी के गुरुजनों ने ५-६ ब्रह्मचारियों के साथ, जिनके माता-पिता खर्च दे सकते थे, उनको साथ लेकर काशी जाने का निश्चय किया। ऐसी अवस्था में उनके सम्मुख कठिन समस्या आकर उपस्थित हो गई। उन दिनों श्री आचार्य जी के पास काशी में जाकर पढ़ने के लिए धन नहीं था, क्योंकि उनके माता-पिता का बाल्यकाल में ही स्वर्गवास हो चुका था। इतने में ही पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज आश्रम में पधारे। पूज्य जिज्ञासु जी ने आचार्य जी की ओर संकेत करके स्वामी जी महाराज से निवेदन किया—"पूज्य स्वामी जी! यह ब्रह्मचारी बड़ी लगन से पढ़ता है तथा समाज-सेवा की भी इसमें लगन है।" स्वामी जी महाराज ने आचार्य जी से कहा—"भद्र! तुम भी जाकर काशी में विद्याध्ययन करो। तुम्हारे भोजनादि का सब खर्च मैं तुम्हारे पास प्रतिमास भेज दिया करूँगा।"

काशी में सम्पूर्ण पातंजल महाभाष्य, कुछ दर्शन तथा साहित्य के अध्ययन के पश्चात् श्री आचार्य जी को आध्यात्मिक उन्नति के उद्देश्य से योगाभ्यास सीखने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। तब श्री आचार्य जी योगाभ्यास सीखने के लिए श्री परमपूज्य योगीराज स्वामी कुवलयानन्द जी महाराज, संचालक कैवल्यधाम के पास लोणावला चले गए। वहाँ चार वर्ष

योग-दर्शन का अध्ययन करने के पश्चात् आचार्य जी प्राच्य आर्ष-ग्रंथ पढ़ाने गुरुकुल चित्तौड़ आ गए। गुरुकुल में तीन वर्ष पढ़ाने के पश्चात् श्री आचार्य जी अजमेर आ गए। तब से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक अजमेर ही आचार्य जी का कार्यक्षेत्र रहा। लगभग तीस वर्षों तक सक्रिय रूप में आचार्य जी आर्यसमाज की तन, मन, धन से सेवा करते रहे।

अजमेर मे आर्ष-ग्रन्थों की शिक्षा देने के उद्देश्य से उन्होंने 'विरजानन्द वेद विद्यालय' की स्थापना की जहाँ अनेक विद्यार्थियों ने नियमित रूप से उनके आचार्यत्व में आर्ष-ग्रन्थों का अध्ययन किया। ऋषि के मिशन को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से उन्होंने अजमेर में 'जाति भेद निवारक आर्य परिवार संघ' की स्थापना की एवं अनेक वर्षों तक उसके मन्त्री के रूप में कार्य करते रहे। अन्तर्जातीय विवाह का अधिक-से-अधिक प्रचार हो और विवाह गुण-कर्मानुसार हो, इसके लिए उन्होंने एक 'अन्तर्जातीय विवाह पत्रिका' प्रकाशित की एवं उसका सम्पादन किया।

इसके पश्चात् आचार्य जी ने अजमेर में 'यौगिक व्यायाम संघ' की स्थापना की। स्थानीय सैकड़ों व्यक्तियों को उन्होंने योगासनों की शिक्षा दी। बाहर से भी अनेक व्यक्ति उनसे योग सीखने आने लगे। अनेक कठिन एवं असाध्य रोग-ग्रसित व्यक्तियों को आचार्य जी ने योग द्वारा निदान कर रोगमुक्त किया। अपनी यौगिक चिकित्सा द्वारा आचार्य जी ने सैकड़ों नर-नारियों को स्वस्थ एवं नीरोग बनाया।

धीरे-धीरे आपकी ख्याति सारे भारतवर्ष में फैलने लगी। भारतवर्ष के समस्त आर्यसमाजों की ओर से उन्हें वैदिक प्रवचनों के आमन्त्रण मिलने लगे। जो कोई भी उनके प्रवचन सुन लेता था, उनका भक्त हो जाता था। यज्ञों का भी आपने खूब प्रचार किया। अकेले आचार्य जी ने १०० से भी अधिक महायज्ञों का ब्रह्मा के रूप में संचालन किया। अजमेर में उन्होंने हकीम वीरूमल जी आर्यप्रेमी के यजमानत्व में सफलतापूर्वक अनेक वृष्टि-यज्ञ कराए जिससे वह आम जनता में श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने लगे।

अपने जीवनकाल में वे स्थानीय दयानन्द विद्यालय के अध्यापक रहे; दयानन्द अनाथालय के अधिष्ठाता रहे। कई वर्षों तक उन्होंने परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित वैदिक यन्त्रालय में वेदों व ऋषि-लिखित ग्रन्थों का

संशोधन-कार्य किया। वे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की धर्मार्य सभा के सदस्य भी रहे।

श्री आचार्य जी ने लगभग एक दर्जन ग्रंथों की रचना की है। इस समय निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) योग और स्वास्थ्य, (२) प्राणायाम, (३) आदर्श गार्हस्थ्य जीवन, (४) आदर्श की ओर, (५) कठिन तथा असाध्य रोगों की यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा, (६) हम आर्य हैं, (७) योगासन तथा यौगिक चित्रपट, (८) प्रभुभक्त दयानन्द तथा उनके आध्यात्मिक उपदेश, (९) आर्य कर्तव्यादर्श।

निम्न ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं—

(१) वैदिक वाङ्मय वाटिका (केवल संस्कृत में)

(२) वैदिक भक्ति-स्रोत।

(३) विश्व-शान्ति का स्रोत वैदिक धर्म।

राजस्थान सरकार ने श्री आचार्य जी की संस्कृत-सेवाओं से प्रभावित होकर उन्हें तीन वर्ष के लिए १००) रु० मासिक सहायता देना स्वीकृत कर सम्मानित किया था।

सन् १९६५ में आचार्य जी 'वैदिक साधना आश्रम' तपोवन देहरादून में चले गए। वहाँ लगभग एक वर्ष रहे। वहाँ से उनके स्वास्थ्य में अचानक परिवर्तन आया, अतः वे पुनः अजमेर आ गए। तब से वह अजमेर में ही अपने निवास-स्थान 'वैदिक विहार' केसरगंज अजमेर में लेखन-कार्य करते रहे।

दिनांक २७ जनवरी, १९७५ को प्रातः साढ़े आठ बजे अनायास अल्प बीमारी के पश्चात् उनका देहावसान हो गया। उनकी आयु ७५ वर्ष की थी। वे अपने पीछे ६ पुत्र व २ पुत्रियाँ छोड़ गए हैं।

□ □